संस्कृत महाकाव्य परम्परा में रघुवीर चरित महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
की पी-एच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत
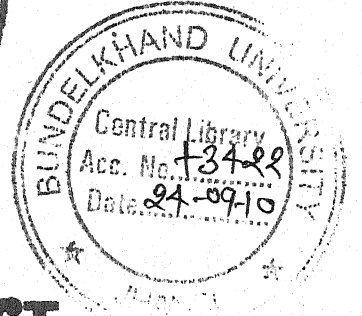
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ0 सुदर्शन सिंह यादव
रीडर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कत)
राजकीय महाविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)

शोधकर्ती
श्रीमती अभिलाषा मिश्रा
एम.ए. (संस्कृत, राजनीतिशास्त्र)
अभिलाषा मिश्रा
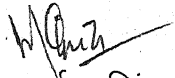
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ0प्र0)

डॉ0 सुदर्शन सिंह यादव

रीडर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष

राजकीय महाविद्यालय झाँसी (उ0प्र0)

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती अभिलाषा मिश्रा एम0 ए0 (संस्कृत) (महोबा) ने मेरे निर्देशन में "संस्कृत महाकाव्य परम्परा में रघुवीरचरितम् महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन" शीर्षक वि अपना शोध–प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है। श्रीमती अभिलाषा की उपस्थिति मेरे यहाँ दो सौ अधिक रही है। परिक्षणार्थ प्रस्तुत यह शोध–प्रबन्ध इनकी अपनी मौलिक कृति है।

(डॉ0 सुदर्शन सिंह यादव)

शोध–निर्देशक

रीडर एवं विभागाध्यक्ष

(संस्कृत)

राजकीय महाविद्यालय झाँसी (उप्र0)

—: आभार :—

मेरे इस शोध प्रबन्ध के निदेशक संस्कृत के मूर्धन्यविद्वान डा0 सुदर्शन सिंह जी यादव प्रवक्ता (संस्कृत) राजकीय महाविद्यालय झोकनबाग झाँसी है। जिनके कुशल निर्देशन में यह महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सका है। उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हुयी ऋद्धावनत् हूँ। उन्हीं की अनुकम्पा का परिणाम है यह शोध ग्रन्थ।

इसी क्रम में हिन्दी, संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान डा0 गया प्रसाद त्रिपाठी पूर्व प्राचार्य अखण्ड इण्टर कॉलेज कबरई के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई अत्याधिक अह्लादित हूँ जिन्होंने समय–समय पर अपना अमूल्य समय देकर मेरी भ्रान्तियों का निवारण किया है और उत्साहवर्धन करते हुये मेरा पथ प्रदर्शन किया है।

अपने पूज्य पिता श्री शिवप्रसाद शास्त्री पूर्व प्रवक्ता अखण्ड इण्टर कॉलेज कबरई एवं श्रद्वेय माता श्रीमती चन्द्रवती मिश्रा का जो सहयोग इस कार्य में प्राप्त हुआ वह चिरस्मरणीय रहेगा। इस शोध कार्य हेतु उन्हीं की प्रेरणा मुझे सम्बल प्रदान करती रही है। मेरे भ्रातद्वय श्री सुरेश कुमार मिश्र एवं श्री देवेन्द्र कुमार मिश्र ने शोध कार्य के सन्दर्भ में अत्याधिक दौड़ धूप करके सन्दर्भ ग्रन्थ मुझे उपलब्ध कराये हैं जिनके अभाव में यह कार्य असम्भव था अतः उनका सहयोग भुलाया नहीं जा सकता मेरे पूज्य पतिदेव श्री राजेश कुमार मिश्र का अनिवर्चनीय सहयोग इस कार्य के मूल में रहा है। जिससे यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका। इसके अलावा मैं उन सभी मित्र, सहयोगियों तथा पारिवारिक स्वजनों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

अन्त में प्रस्तुत शोधग्रन्थ के कम्प्यूटर कम्पोजिंग के लिये श्री नीरज अग्रवाल, अग्रवाल कम्प्यूटर्स, बाँदा एवं श्री रणवीर सिंह ऋचा कम्प्यूटर ग्राफ़िक्स बांदा को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अत्यल्प समय में विशुद्ध कम्प्यूटर कम्पोजिंग कार्य सम्पन्न किया।

अभिलाषा मिश्रा

गीता जयन्ती सं. 2063
1 दिसम्बर 2006

विनयानवत
अभिलाषा मिश्रा
(बाँदा)

प्राक्कथन

महाकवियों, आचार्यो तथा ऋषियों ने संस्कृत–साहित्य की श्रीवृद्वि में अपना अनुपम योगदान अर्पित किया है, जो अतिप्राचीन काल से निर्वाध तथा स्वतन्त्र रहा है। भाषा भाव की अनुगामिनी होती है। इसलिए काव्यानुभूति ही काव्य की भाषा बन जाती है। कवि की इस अभिव्यञंजना में न तो देश, काल, परिस्थिति का बन्धन रहता है और न तो किसी धर्म तथा वर्ग विशेष का। ब्रह्मा ने जिस प्रकार समान दृष्टि तथा भाव से सृष्टि की रचना की है उसी प्रकार कवि ने भी काव्य की रचना उसी स्वतन्त्र भाव से की है। कवि की स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में आचार्य आनन्दवर्धन ने ब्रह्मा और कवि की सृष्टि का एक तर्कपूर्ण अन्तर स्पष्ट किया है, जो निम्नलिखित है–

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मैं रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।

काव्य–जगत् में कवि ही ब्रह्मा है, उसे जैसा अच्छा लगता है, इस विश्व को वैसा ही परिवर्तित कर लेता है।

भारत के अतीत से ज्ञान के साधक ऋषियों ने निज दिव्य भावों द्वारा अनुभूत साक्षात्कृत पदार्थो का उपदेश करके वैदिक विचारधाराओं का ज्ञान प्रवाहित किया तो दूसरी ओर महाकवियो ने अपने सरस भावुक अन्तःस्थल की अनुभूतियों को काव्यों तथा महाकाव्यों के प्रणयन के माध्यम से सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत किया। इसलिए महाकवियों की शाश्वत वाणी सर्वजनहिताय सभी के लिए अनुपालनीय, अनुकरणीय, सेवनीय तथा माननीय है।

इसी दिब्य भाव से अभ्दुत काव्य–जगत् के हितार्थ आदिकाव्य रामायण की सर्वोतकृष्ट रचना का प्रणयन हुआ जो मौलिक उद्भावनाओं तथा प्रतिस्थापनाओं से संवलित उत्कृष्ट रामकाव्यरूप में प्रतिष्ठित तथा मर्यादित हुआ तथा सार्वभौमिक एवं अक्षुण्य सार्वकालिक प्रतिमान् से काव्यलोक को प्रस्फुटित किया। इसीलिए रामकथाश्रित रामायण की रचना ने एक अमिय–धार के अजस्र तथा अमर स्रोत का प्रवाहन किया जिसके ज्ञान का पान कर आदिकाल से आजतक के महाकवियों ने अपनी काव्य सृष्टि की तथा जो सम्पूर्ण लोक में व्यवहत तथा प्रसारित हुई जैसाकि वाल्मीकि रामायण में चित्रित है–

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्व महीतले।

तावद् रामयणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।

रामकथा की विविध आयामीरूप भारत के साहित्यकारों को सदैव आकर्षित तथा मोहित करता रहा है। यही कारण है कि महर्षि वाल्मीकि से लेकर आजतक के साहित्यकारों ने रामकथा को अपने सृजन का उपजीव्य बनाया है। रामचरित देश और काल आधरित रहा है। यहीं इस चरित की सर्वव्यापकता का अभेद्य रहस्य है। महाकाव्यों की अतिसुदीर्घ–परम्परा में आदिकवि महर्षि वाल्मीकिंकृत रामायण से आरम्भ करके महाभारत से यात्रा करती हुइ यह परम्परा कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि महाकवियों द्वारा आगे बढ़ायी जाती हुइ वर्तमानकाल में अक्षुण्य है। इसी श्रृखंलाक्रम में 'रघुवीरचरितम्' के महाकवि मल्लिनाथ ने मूल उत्स से मात्र रस ग्रहण करना ही अभिप्रेत स्वीकारा एवं काव्यरस की धार को जो उन्होंने दिशा दी वह उनकी अपनी योजना है। वे रामकंथाश्रित पूर्ववर्ती अन्य कवियों से प्रभावित तथा अनुप्रेरित हैं; किन्तु उन्होंने अपनी स्वयं की मौलिकता तथा काव्य–कला का बनाये रक्खा है।

वेदों का भाष्य करने वाले आचार्य सायण तथा संस्कृत महाकाव्यों की टीका करने वाले कोलाचल मल्लिनाथ सूरि चौदहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठित ये दोनों नाम ही संस्कृत–साहित्य में आन्ध्र प्रदेश का नाम प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त है। मल्लिनाथ की टीका–सम्पत्ति से यह स्वयमेव प्रतीत होता है कि वे काव्यमर्म के ज्ञाता थे। टीकाओं में प्रयुक्त मंगलाचरण के श्लोकों से ही उनकी काव्य–प्रतिभा प्रस्फुटित दीख पड़ती है। यद्यपि मल्लिनाथ संस्कृत महाकाव्यों के टीकाकार में ही उत्कृष्ट प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं तथापि उनकी जो मौलिक कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं, उनमें 'रघुवीरचरितम्' नामक महाकाव्य मुख्यतम तथा अतिविशिष्ट है। इस महाकाव्य की प्रबन्ध–योजना का अवलोकन कर यह कहा जा सकता है कि टीकाकरण मल्लिनाथ के मन में 'रघुवंश' में श्रीराम के वनवास–सम्बन्धी चरित के संक्षेप में खिन्नता उत्पन्न हुई जिससे उन्होंने रघुवंश का अनुसरण कर उस न्यूनता की पूर्ति 'रघुवीरचरितम्' के निर्माण से किया।

महाकवि मल्लिनाथ की उत्कृष्ट रचना 'रघुवीरचरितम्' की अपेक्षित ख्याति नहीं हो सकी जो एक ही बार प्रकाशित हुई। हो सकता है कि व्याख्याकार के रूप में मल्लिनाथ की अतिप्रसिद्धि हो जाने से इनके मौलिक कर्तव्य की ओर सुधिजनों का ध्यान ही नहीं गया। यह भी सम्भव है कि अपने जीवन के अन्तिम क्षणों मे इस काव्यसृजन में व्यस्त रहते हुए महाकवि ने इसके प्रचार–प्रसार की ओर ध्यान नहीं दिया ओर आगे भी रचना की इच्छा होने के कारण तथा असामायिक मृत्यु के कारण इस महाकाव्य को गौरवस्पद स्थान दिलाने की इनकी कामना की पूर्ति नहीं हुई। इसलिए यह महाकाव्य प्राप्तव्य स्थान नहीं प्राप्त कर सका।

भूमिका
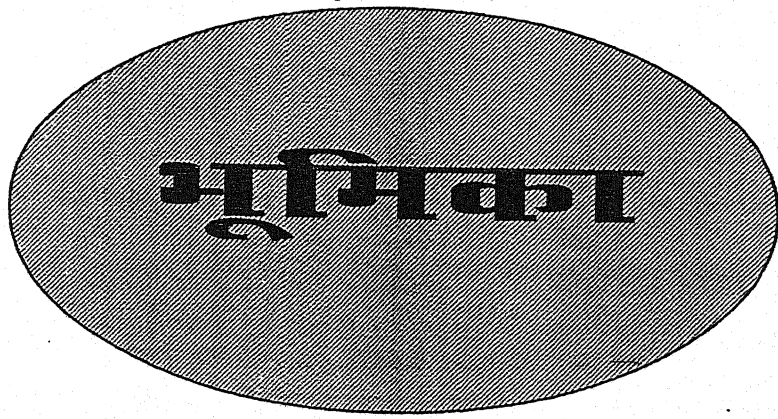
भूमिका

लौकिक संस्कृत–साहित्य में महाकाव्यों की अतिप्राचीन सुदीर्घ–परम्परा है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण से आरम्भ करके महाभारत से होती हुई यह परम्परा कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि महाकवियों द्वारा आगे बढ़ायी जाती हुई वर्तमान काल मे अक्षुण्ण है। इस समय भी संस्कृत–साहित्य में नित्य–नूतन महाकाव्यों की रचना हो रही है तथा महाकाव्य–परम्परा निरन्तर समृद्ध हो रही है।

रामायण तथा महाभारत दोनों आर्ष–महाकाव्य सदैव से ही परवर्ती महाकवियों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं और उनके द्वारा रचित महाकाव्यों के उपजीव्य रहे हैं। रामायण और महाभारत के लघु आख्यानों को लेकर महाकवियों ने अपने पाण्डित्य और काव्यकौशल से बृहत्काय महाकाव्यों की रचनाएं की हैं। संस्कृत–साहित्य का आद्य महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण गार्हस्थ धर्म की धुरी पर घूमता है। दशरथ का आदर्श पितृत्व, कौशल्या का आदर्श मातृत्व, सीता का आदर्श सतीत्व, भरत का आदर्श भ्रातृत्व, लक्ष्मण की अनन्य भक्ति, सुग्रीव का आदर्श बन्धुत्व और सबसे अधिक श्रीराम का आदर्श पुत्रत्व भारतीय गार्हस्थ्य धर्म के ही विभिन्न अंगों के आराधनीय आदर्शो की मधुमय मनोरम अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी विशेष तत्व का अनुसरण, महाकवि मल्लिनाथ सूरि ने 'रघुवीरचरितम्' की रचना में किया है।

काव्यों के प्रतिभाशाली टीकाकार होने के साथ मल्लिनाथ स्वयम् उच्चकोटि के कवि थे। उनकी टीकाओं के प्रारम्भिक श्लोकों से यह प्रमाणित होता है कि उनमें काव्य रचना की प्रतिभा थी। 'रघुवीरचरितम्' उनकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का दर्पण है। रामाश्रित महाकाव्यों में इस महाकाव्य का

अपना एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि इसका प्रणयन संस्कृत–साहित्य के अप्रतिम और विश्रुत टीकाकार कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने किया है। वस्तुतः यह महाकाव्य कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के द्वादश सर्ग का उपबृंहण ही है।

कालिदास ने रघुवंश का वर्णन करते हुए श्रीराम के चरित को जिस तरह बारहवें सर्ग में समेटा है, सम्भवतः उस पर टीका करते हुए मल्लिनाथ को कालिदास के उक्त संक्षिप्त वर्णन से सन्तोष न हुआ और उन्होंने उसी कथानक को लेकर 'रघुवीरचरितरम्' की रचना कर डाली। इस सम्बन्ध में सम्माननीय डा0 प्रभुनाथ द्विवेदी ने उल्लेख किया है–

"रघुवीरचरितस्य प्रबन्धयोजनामवलोक्येदमनुमातुं शक्यतेयत् टीकाकर्तुः मल्लिनाथस्य मनसि रघुवंशे श्रीरामस्य वनवासगतचरितस्य संक्षेपेण खिन्नता संजाता। यतः सः रघुवंशमनुसृत्य तन्न्यूनतायाः पूर्तिः रघुवीरचरितं निर्मायाकरोत्। रघुवीरचरितस्य कर्तृत्वविषये श्रीगणपतिशास्त्रिवर्यैः व्यक्तमभिप्रायं सम्भावनेयं कियद्दूरमनुसरत्यत्र विद्वान्सः प्रमाणम्। तथापि यदि कोलाचलमल्लिनाथसूरि–रेवास्यकर्ता, तेनत्वत्र महाकाव्यनिर्मितावपि स्वव्याख्यातृप्रकृतिः नैव परित्यक्ता। यतः रघुवीरचरितम्, सूत्ररूपेण वर्णितस्य रघुवंशगतरामचरितस्यैव विशदव्याख्यानमस्ति।"

वेदों का भाष्य करने वाले आचार्य सायण तथा संस्कृत–महाकाव्यों की टीका करने वाले कोलाचलमल्लिनाथ सूरि– ये दोनों नाम ही संस्कृत–साहित्य मे आन्ध्रप्रदेश का नाम प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त हैं। चौदहवीं शताब्दी ईसवी में प्रतिष्ठित ये दोनों विद्वान् विजनगर साम्राज्य द्वारा

संरक्षित थे। इन दोनों में से मल्लिनाथ महोदय द्वारा अपनी प्रतिभा का उपयोग मुख्य रूप से टीका के माध्यम से लौकिक संस्कृत–साहित्य का पोषण करने मे ही किया गया है। उनकी टीका सम्पत्ति से यह स्चयमेव प्रतीत होता है कि वे काव्यमर्म के ज्ञाता थे। टीकाओं में प्रयुक्त मगंलाचरण के श्लोकों से ही उनकी काव्य–प्रतिभा प्रस्फुटित दीख पड़ती है। संजीवनी, तरलादि टीकाओं के आरम्भिक श्लोकों मे वे अपने को कवि संज्ञा से विभूषित करते हैं–

'मल्लिनाथ कविः सोऽयं मन्दात्मानुजिवृक्षयाः', मल्लिनाथ कविः सोऽयमेकावल्यामलंकृतौ'' इत्यादि में। बल्लालसेन के द्वारा भी 'भोजप्रबन्ध' में दक्षिण देशवर्ती मल्लिनाथ कवि का उल्लेख किया गया है।

कवि विद्याधर द्वारा विरचित 'एकावली' के प्रथम उन्मेष की बारहवीं कारिका की 'तरल' टीका में मल्लिनाथ अपने द्वारा रचित अधोलिखित श्लोक को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं–

''एतदेव मैत्रीशय्येति चारव्यायते। यथास्मदीयश्लोके चन्द्रोदयवर्णने–

निशाकरकरस्पर्शनिशया निर्वृत्तामना।
अभी स्तम्भादयो भावा व्यज्यन्ते राज्यमानया ।।

डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी ने मल्लिनाथ की महाकाव्यीय रचना के विषय में हस्तलिखित उल्लेख किया है–

''यद्यपि मल्लिनाथसूरिः संस्कृतमहाकाव्यानां टीकाकाररूयोगैव प्रसिद्धेः परां कोटिमधिरोहति तथापि तस्य या मौलिककृतयः आविष्कृताः तासु 'रघुवीरचरितं' नाम महाकाव्यं मुख्यतमतिमहत्वपूर्णंच विराजते।''

डॉ0 ऑफ्रेट महादेव के द्वारा भी अपने 'कैटलाग्स कैटालॉगोरम्' नामक प्राचीन मातृका विवरण ग्रन्थ में मल्लिनाथ विरचित 'रघुवीरचरितम्'

का उल्लेख किया गया है।

सन् 1970 ई0 में महामहोपाध्याय टी0 गणपतिशास्त्री महोदय द्वारा सम्पादित 'रघुवीरचरितम्' प्रकाशित किया गया। शास्त्री महोदय द्वारा यह संस्करण 'रघुवीरचरित' की तीन मातृकाओं को लक्ष्य करके सम्पादित किया गया था। ये मातृकाएँ मलयालम लिपि मे ताड़पत्र पर लिखी गयी थीं। इनमें से एक ही मातृका केवल चौदह सर्ग तक विशुद्ध प्राप्त होती हैं। इस समय 'रघुवीरचरित' की पुनः प्राप्त दो मातृकाएँ विश्वेसरानन्द वैदिक शोध संस्थान की होशियारपुर स्थित हस्तलेख संग्रह में सुरक्षित हैं।

1 च 2 हस्तलेख संग्रहतालिका द्वितीयखण्ड 2015 विक्रमाब्द।

हस्तलेख सं0 225 व 3816

'रघुवीरचरितम्' के प्रकाशित इस ग्रन्थ के आमुख में आदरणीय श्रीगणपतिशास्त्री कहते हैं– "यह 'रघुवीरचरितम्' वनवासादि से राज्याभिषेक से अन्त होने वाले श्रीरामचरित का वर्णन करने वाला अनोखा महाकाव्य है। इसमें प्रकाशित होने वाले साहित्य के गुणों से इसका प्रणेता कोई विशिष्ट कवि है, ऐसा समझा जा सकता है। नाम उसके ग्रन्थ में निवेशित नहीं किया गया है।

डॉ0 ऑफ्रेट द्वारा सम्पादित 'ग्रन्थानामावलि' नामक पुस्तक में 'रघुवीरचरितम्' मल्लिनाथ सूरि द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। वह यदि यही हैं और वह मल्लिनाथ एकावली की तरलटीका तथा रघुवंश आदि की टीका करने वाले से अन्य हो तो उनका चौदहवीं शताब्दी में स्थित यह कृति स्पष्ट हो जाती है; किन्तु इस मल्लिनाथ के कृतित्व में तरल के निर्माण से भिन्न यह निर्मित है, ऐसा समझना चाहिए अन्यथा इसके एक भी पद्य का तरल में उदाहरण युक्ति के अनुरूप नहीं है। यहाँ यह विचारणीय है कि तरल टीका में मल्लिनाथ ने अपने श्लोक का उदाहरण दिया है, वह 'रघुवीरचरितम्' के

प्रस्तुत संस्करण में उपलब्ध नहीं होता। 'रघुवीरचरितम्' में कहीं भी ग्रन्थकर्ता के रूप में मल्लिनाथ का नाम दिखायी नहीं पड़ता। सर्ग के अन्त में रचित पुस्तिका भी ग्रन्थकर्ता के परिचय से रहित है; किन्तु मल्लिनाथ सर्वत्र अपनी टीकाओं मे अपने पाण्डित्य से अपनी विशिष्टता प्रकाशित करते हैं। अतएव यहाँ 'रघुवीरचरितम्' में वहीं मल्लिनाथ अपने नाम का उल्लेख करने के विषय मे क्यों मौन हैं? यह आश्चर्यजनक है। अतः टीकाकार शिरोमणि मल्लिनाथ ही रघुवीररितम् के कर्ता हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते हैं।

'रघुवीरचरितम्' के रचनाकार महाकवि मल्लिनाथ सूरि

'रघुवीरचरितम्' जैसी महान् कृति के रचनाकार के सम्बन्ध में पर्याप्त विमर्श के पश्चात् यह प्रमाणपूर्वक सिद्ध किया जा चुका है कि इस विशाल कृति के प्रणेता महाकवि मल्लिनाथ सूरि के अतिरिक्त ओर कोई नहीं है। वे आगे भी रचना करना चाहते थे, लेकिन असामयिक मृत्यु के कारण वैसा नहीं कर सके। 'रघुवीरचरितम्' के प्रणेता कोलाचल मल्लिनाथ सूरि संस्कृत–साहित्य के उद्भट विद्वान हैं। प्रायः सभी रामाश्रित महत्वपूर्ण महाकाव्यों पर उन्होंने प्रामाणिक व्याख्याएँ लिखकर महान् कार्य किया। उन्होंने लिखा है–

"नामूललिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते।"

सीमित तथा सम्यक् सन्तुलित रीति से अपेक्षित व्याख्या प्रस्तुत करना मल्लिनाथ की विशेषता है। भवभूति ने जिस प्रकार 'उत्तररामचरित' में एक नवीन दृष्टिकोण समर्पित करने का प्रयास किया, उसी प्रकार मल्लिनाथ ने भी 'रघुवीरचरितम्' का प्रणयन करके रामाश्रित काव्यों में एक महत्वपूर्ण श्रृंखला जोड़ने की चेष्टा की है।

यह महाकाव्य सत्रह सर्गो में निबद्ध है जिसमें 1533 श्लोक हैं इसमें श्रीराम के वनवास से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। श्लोक संख्या की दृष्टि से यह प्रायः रघुवंश के ही आकार का है जिसमे 1569

श्लोक हैं।

मल्लिनाथ सूरि का समय चौदहवीं शताब्दी है और यही 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य का रचनाकाल भी है। सम्भवतः मल्लिनाथ ने प्रसिद्व महाकाव्यों पर अपनी टीकायें करने के पश्चात् इस महाकाव्य की रचना अपने जीवन के उत्तरवर्तीकाल मे की होगी। यही कारण है कि उनकी टीकाओं में कहीं भी 'रघुवीरचरितम्' का उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

काव्यशास्त्र की दृष्टि से 'रघुवीरचरितम्' एक विशिष्ट कोटि का महाकाव्य है। इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षण गतार्थ हैं। भाषा प्रसादमयी और प्रांजल है। वर्णन में उत्कृष्टता है और भावों की योजना अत्यन्त सुन्दर है। अलंकारों के चारू–विन्यास से महाकाव्य का दान केवल प्रबन्धगत वैशिष्ट चारूतर हुआ है अपितु वस्तुगत सौन्दर्य भी भव्यता को प्राप्त हुआ है। वर्णन स्वाभाविक है।

राम 'रघुवंश' में उत्पन्न हुए थे। उनके पहले अनेक वीर तथा प्रतापी राजा हो चुके थे। उनमें राम का स्थान उत्कृष्ट तथा सर्वोपरि है। इसको प्रकट करने की भावना से 'रघुवीर' शब्द का चयन महाकवि ने किया।

महाकवि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि के 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य के समीक्षात्मक अनुशीलन हेतु इस महाकाव्य को आधार बनाते हुए शोधच्छात्रा ने शोधप्रबन्ध को भूमिका तथा उपसंहार के अतिरिक्त नौ अध्यायों में विभक्त किया है।

संस्कृत महाकाव्य परम्परा में रघुवीरचरितम् महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

संस्कृत महाकाव्य परम्परा का उद्भव एवं विकास

प्रथम अध्याय

संस्कृत महाकाव्य का उद्भव और विकास 'रघुवीरचरितम्' का महाकाव्यत्व

संस्कृत महाकाव्य का उद्भव और विकास

हमारा अभीष्ट यद्यपि संस्कृत के महाकाव्यों की जानकारी करने तक ही सीमित है, तथापि आनुषांगिक रूप में हमें संस्कृत–भाषा की आदि परिस्थितियों का, यहाँ तक कि विश्व के महाकाव्यों की मूल प्रवृत्तियों का अध यन भी अपनी इस अभीष्ट पूर्ति के लिए करना होगा। संस्कृत के महाकाव्यों और दुनियाँ के इतिहास में महाकाव्यो की पहली श्रेणी हमें मोटे–मोटे ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध न होकर, मनुष्य की मौखिक भावनाओं के रूप में मिलती हैं, जिनकी परम्परा सहस्रों वर्ष से अलिखित रूप में चली आ रही थी। मनुष्य के संस्कृत विचार ही, उसकी विकासशील काव्य प्रतिभा के पहले लक्ष्यबिन्दु हैं।

'रामायण', 'महाभारत', 'इलियड' और 'ओडेसी' आदि ग्रन्थ यद्यपि आज प्रथम महाकाव्य कहे जाते हैं; किन्तु महाकाव्य का जो स्वरूप आज है, उसके मापदण्ड के अनुसार क्या इनको महाकाव्य कहा जा सकता है। बल्कि उक्त ग्रन्थों के रचनाकारों का कदापि यह उद्देश्य नहीं था कि भविष्य में उनकी इन कृतियों को महाकाव्य कहा जायगा; जैसा कि आज भी उनको केवल महाकाव्य कह कर उन पर न्याय नहीं किया जा सकता है।

इसलिए निष्कर्ष यह है कि महाकाव्यों की रचना या उनका स्वरूप, युगीन परिस्थितियों के क्रम में एक जैसा नहीं रहा है और अन्तिम रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि आज महाकाव्य या साहित्य के दूसरे काव्य–नाटक

आदि अंगों के लिए जो परिभाषाएं एंव जो मान्यताएं स्थिर की गयी हैं, भविष्य में भी उन्हीं को स्वीकार किया जायगा।

'रामायण' और 'महाभारत' भी इसीलिए प्रथम महाकाव्य नहीं है। उन्हें हम एक युगविशेष का प्रतिनिधि महाकाव्य अवश्य कह सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में हम दूसरी अनेक बातों के साथ–साथ अभ्दुत वीर–भावना का वर्णन विशेषरूप से पाते हैं। इसलिए यदि हम यह कहें कि ये दोनों ग्रन्थ भारत के बृहद् इतिहास के प्राचीनतम किसी वीर–युग के प्रतिनिधि महाकाव्य हैं, तो उनकी वास्तविकताओं को समझने में आसानी रहेगी।

वाल्मीकि, व्यास, होमर और वर्जिल ने अपने इन ग्रन्थों के लिए प्राचीनकाल से मौखिकरूप में चले आ रहे अनेक आख्यानों और उपाख्यानों का दाय समेटकर उनको समृद्ध एंव क्रमबद्ध किया। इन ग्रन्थों की प्रायः समग्र सामग्री और विशेषरूप से उनकी प्रधान विषयवस्तु, उनके निर्माण से पहले की है। वे पूर्वागत कथाएं 'रामायण' आदि ग्रन्थों में अपनी सिद्धावस्था को प्राप्त हो गयी हैं।[1]

बहुत पुराने समय में सामूहिक नृत्य–गीतों द्वारा मनुष्य अपने जिन ध ार्मिक उत्सवों का आयोजन करता था, अपनी सुदीर्घ–परम्परा में वे गीत–नृत्य एक आख्यान के रूप में स्मरण किये जाने लगे। ये आख्यान–गीत ही ऋग्वेद के संवाद–सूक्त हैं। ऐसे संवाद–सूक्त ऋग्वेद में अनेक हैं, जैसे– यम–यमी (10/11), पुरूरवा–उर्वशी (10/15), अगस्त्य–लोपामुद्रा (1/379), इन्द्र–अदिति (4/18), इन्द्र–इन्द्राणी (10/86), सरमा–प्रणीस (10/51/3) और इन्द्र–मरूत (1/165–170) आदि। वेद–भाष्यकार यास्क ने इन

---

1. डब्ल्यू0एम0 डिक्शन, इंग्लिश एपिक पोएट्री एण्ड हिरोइक पोएट्री, पृ0 27.

संवाद–सूक्तों को आख्यान संज्ञा दी है।[1]

इन संवादात्मक आख्यानों को ही पहले गाथा नाराशंसी भी कहा जाता था; किन्तु अपनी ख्याति के कारण थोड़े ही समय बाद उन्हीं को इतिहास और पुराण भी कहा जाने लगा।[2] ये सारी मान्यताएं वैदिक युग की है।

क्योंकि ये संवाद–सूक्त गद्य पद्यात्मक थे; इसलिए ओल्डेनबर्ग महोदय ने उनके आधार पर यह अनुमान लगाया कि भारतीय महाकाव्यों का प्राचीनतम स्वरूप गद्य–पद्यात्मक था।[3] मैक्समूलर, लेवी और हर्टेल ने उक्त संवाद–सूक्तों को नाटक कहा है।[4] विण्टरनित्स ने इनको प्राचीनतम गाथाएं कहा है। उनके कथानानुसार उनका दाय ग्रहण कर बाद में काव्य, महाकाव्य ओर नाटकों का विकास हुआ।[5]

महाभारतकार ने आख्यान, उपाख्यान, कथा, आख्यायिका, पुराण ओर इतिहास, इन सभी शब्दों को प्राय: समान अर्थ में ही प्राचीन कहानी के रूप में प्रयुक्त किया है।[6]

'रामायण' और 'महाभारत' में जिन विभिन्न आख्यानों–उपाख्यानों का वर्णन हम पाते है।, वे ही संस्कृत के महाकाव्यों के उद्व(2)वरूप हैं और उन्हीं का संकलन, संशोधन और परिवर्द्धन करके 'रामायण' तथा 'महाभारत' का कलेवर निर्मित होकर उनसे महाकाव्यों की एक प्रौढ़–परम्परा का अनुवर्तन हुआ है।

---

1. यास्क, निरूक्त, 11/25
2. अथर्ववेद, 15/6/10, 11, 12
3. ओल्डेनबर्ग, जेड0डी0एम0जी0, वाल्यूम 37 (1883), पृ0 54 एफ0एफ0, वाल्यूम 39 (1885), पृ0 52 एफ0एफ0।
4. विण्टरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, वाल्यूम 1, पृ0 102.
5. वही, पृ0 102–103
6. हॉपकिन्स, दि गेट एपिक ऑफ इण्डिया, पृ0 50.

'रामायण' और 'महाभारत' की शैलियों ओर उनके द्वारा अनुप्राणित काव्य--परम्परा को देखते हुए सहज ही कहा सकता है कि 'महाभारत' की अपेक्षा 'रामायण' में काव्योत्कर्षकारक गुण तथा अन्विति अधिक है। इसलिए महाभारत मुख्यतः इतिहास और गौणतः महाकाव्य है; किन्तु इसके विपरीत 'रामायण' मुख्यतः महाकाव्य ओर गौणतः इतिहास है। अपनी इसी प्रधान भावना के कारण 'महाभारत' ने पुराण शैली को जन्म दिया ओर स्वयं भी पुराणों की श्रेणी में चला गया; किन्तु 'रामायण' का विकास अलंकृत शैली के काव्यों के रूप में हुआ। इसलिए 'महाभारत' को हम संस्कृत के काव्यों, मह।काव्यों ओर दूसरे विषयों के ग्रन्थों का पिता तो मान सकते हैं; किन्तु उसको काव्यों या महाकाव्यों की श्रेणी में भी नहीं रख सकते हैं किन्तु रामायण को हम निश्चित रूप से महाकाव्यों की श्रेणी में भी रख सकते हैं और उसको अलंकृत शैली के उत्तरवर्ती काव्यों का जनक भी कह सकते हैं।[1]

रामायण और महाभारत का दाय

'रामायण' और 'महाभारत' का स्वतन्त्र अस्तित्व और उनकी पारस्परिक स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाने के बाद संस्कृत–साहित्य की सर्वांगींण समृद्धि के लिए उनके द्वारा कितना हित हुआ, इस बात को जान लेने के बाद उनकी सार्वभौम सत्ता का सहज में ही पता लग जाता है। संस्कृत के उत्तरवर्ती काव्य–साहित्य का लगभग अधिकांश भाग इन्हीं दो ग्रन्थों के दाय को लेकर पूरा किया गया। यदि इन दो ग्रन्थराटों से प्रभावित कृतियों को छाँटकर अलग कर दिया जाय तो संस्कृत–साहित्य के काव्य–क्षेत्र में नाममात्र की सुन्दर कृतियाँ बची रह सकेंगी। हमें यह कहते हुए संकोच नहीं होता कि संस्कृत के प्रायः समग्र लक्षण–ग्रन्थ इन्हीं दो महान् कृतियों की सीमा–रेखाओं का विश्लेषण करने के लिए ही रचे गये हैं। संस्कृत के काव्य

1.डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा : आलोचना (त्रैमासिक), अक्टूबर 1951.

शास्त्रियों द्वारा निर्धारित नियमों के भीतर आने में जो अधिकांश दूसरी कृतियाँ पूर्णतः नहीं उतर पाती हैं, उसका एकमात्र कारण यही है कि उस समय ये दोनों ग्रन्थ काव्यशास्त्रियों को अत्याधिक प्रभावित किये हुए थे।

संस्कृत के काव्यकारों ने 'महाभारत' से तो अपनी कृतियों के लिए कथावस्तु चुनी और उसको रामायण की शैली में बाँधकर दोनों ग्रन्थों की स्थिति को स्पष्ट कर दिया। 'रामायण' से रूप–शिल्प और 'महाभारत' से विषयवस्तु लेकर महाकाव्यों की परम्परा आगे बढ़ी। अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ ओर श्रीहर्ष के महाकाव्यों में शिल्प–सम्बन्धी तत्व, अलंकार–योजना, रूपकों, उपमाओं का आधिक्य और प्रकृति–चित्रण सभी का आधार 'रामायण' ही है।[1]

'महाभारत' के पुराणों के अधिक निकट होने के कारण संस्कृत के काव्यकारों ने कुछ कथानक दूसरे पुराणों से भी लिया; किन्तु उस कथानक को काव्यरूप में सुसज्जित करने के लिए 'रामायण' की शैली का ही आश्रय लिया। कुछ ग्रन्थकारों ने 'महाभारत' की शैली पर काव्य लिखने की चेष्टा की थी; किन्तु वे विशुद्ध महाकाव्यों की श्रेणी में नहीं आ सके। ऐसे काव्यों में 'राजतरंगिणी' और 'कथासरित्सागर' को रखा जा सकता है, जिन्होंने स्वयं को एक प्रबन्ध के रूप में विख्यात करना भी चाहा; किन्तु उनकी स्थिति आज दूसरे ही रूप में विश्रुत है।[2]

---

1. डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप–विकास, पृ0 139
2. इन दोनों महाकाव्यों की प्रेरणा से संस्कृत मे जितनी कृतियों का निर्माण हुआ उनकी सूचियों के लिए देखिए–बी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 383–384, अनुवादक डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी (1956) तथा फादर कामिल बुल्के, रामकथा, पृ0 179–208 (1950)

महाकाव्यों का वर्गीकरण

संस्कृत–साहित्य में श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' तक, अर्थात् बारहवीं शताब्दी तक कितनी ही महाकाव्य कृतियों का निर्माण हुआ। ये सभी महाकाव्य कृतियाँ एक जैसी शैली और एक जैसे ढंग की नहीं है। मेक्डोनेल महोदय ने 'महाभारत' को तो लोक–महाकाव्य (पापुलर एपिक), रामायण को अनुकुत महाकाव्य (आर्टिफिशल एपिक) और बाद के महाकाव्यों को अलंकृत महाकाव्य कहा है।[1]

डॉ0 दासगुप्ता ने पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा को कि 'रामायण' और 'महाभारत' तो 'एपिक' है और बाद के महाकाव्य 'कोर्ट एपिक' , तथा इस धारणा को भी कि संस्कृत काव्य–साहित्य प्रारम्भ से ही आडम्बरपूर्ण ओर रूपशिल्प से रहित था, खण्डित करके यह स्पष्ट किया है कि बाद के महाकाव्यों मे यह बात ठीक–ठीक नहीं उतरती। पाश्चात्यों ने आर्नेट (अनुकृत) कहकर जिन महाकाव्यों को कलात्मक भी कहा है, वे वास्तविक रूप से 'एपिक ऑफ आर्ट' या 'आर्टिफिशल' (अलंकृत) महाकाव्य हैं।[2]

डॉ0 शम्भूनाथ सिंह का एक शोधग्रन्थ हाल ही में प्रकाशित हुआ है, जिसका नाम है[3] 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप–विकास'। इस ग्रन्थ के प्रथम तीन अध्यायों में बड़ी खोजपूर्ण सामग्री के आधार पर संस्कृत महाकाव्यों का सप्रमाण श्रेणी–विभाजन किया गया है। उसमें एक चार्ट इस प्रकार दिया गया है[4] –

---

1. मैक्डोनेल, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 326
2. डॉ0 एम0एन0 दासगुप्ता, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, वाल्यूम 1, इण्ट्रोडक्शन, पृ0 14–15
3. हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी (1956)
4. वही, पृ0 93.
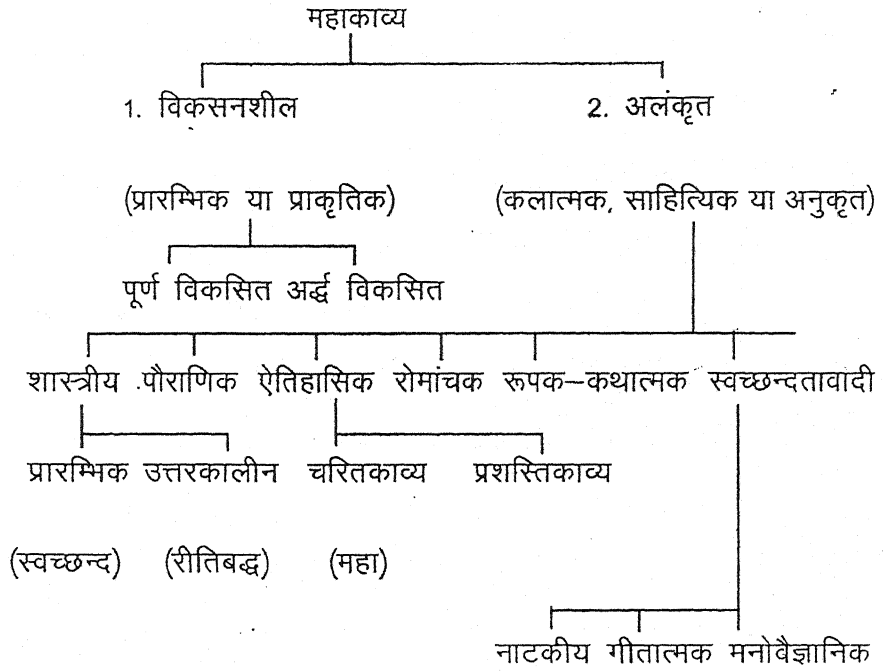
विकनशील महाकाव्यों में यद्यपि 'महाभारत' और 'रामायण' दोनों की गणना की जा सकती है; किन्तु प्रधानतया 'महाभारत' को विकसनशील महाकाव्य और 'रामायण' को अलंकृत महाकाव्य भी कहा जा सकता है। अलंकृत शैली के शास्त्रीय महाकाव्यो में पहली श्रेणी मे अश्वघोष और कालिदास के सभी महाकाव्य तथा कुमारदास का 'जानकीहरण' रखे जा सकते हैं। दूसरी श्रेणी के शास्त्रीय काव्य रीतिबद्ध महाकाव्य है; जिनमें भारवि का 'किरातार्जुनीय' वाक्पति राज 'गउडव हो', रत्नाकर का 'हरविजय', शिवस्वामी का 'कफ्फिणाभ्युदय', मंखक का 'श्रीकण्ठचरित' आदि की गणना की जा सकती है। तीसरी अलंकृत शैली के वे महाकाव्य हैं, जिन्हें शब्द–चमत्कारप्रधान की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें भट्टि का 'भट्टिकाव्य', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित', 'धनंजय का 'द्विसन्धान', सन्ध्याकरनन्दी का 'रामचरित', विद्यामाधव का 'पार्वती–रूक्मिणीय' और हरिदत्त सूरि का 'राघवनैषधीय' आदि प्रमुख है।

अलंकृत शैली के पौराणिक महाकाव्यों मे पहली गणना 'महाभारत'

की भी की जा सकती है। इसी शैली में जिनसेन का 'आदिपुराण', गुणभद्र का 'उत्तरपुराण', जटासिंहनन्दि का 'वरांगचरित', क्षेमेन्द्र की 'रामायणमंजरी', 'भारतमंजरी' और 'दशावतारचरित', हेमचन्द्र का 'त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित', अमरचन्दसूरि का 'बालभारत', मल्लिनाथ सूरि का 'रघुवंशचरितम', वेंकटनाथ का 'यादवाभ्युदय', जयद्रथ का 'हरचरितचिन्तामणि', कृष्णदास कविराज का 'गोविन्दलीलामृत', नीलकण्ठ दीक्षित का 'शिवलीलार्णव', यशोधर का 'यशोधरचरित', अमरचन्द्र का 'पणानन्द', हरिश्चन्द्र का 'धर्मशर्माभ्युदय', अभयदेव सूरि का 'जयन्तविजय' ओर वाग्भट्ट का 'नेमिनिर्वाण' आदि महाकाव्यों की गणना की जा सकती है।

अलंकृत शैली के ऐतिहासिक महाकाव्यों में अश्वाघोष का 'बुद्धचरित', बाण का 'हर्षचरित', पद्यगुप्त का 'नवसाहसांकचरित', विल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित', कल्हण की 'राजतरंगिणी', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित', अमरसिंह का 'सुकृतसंकीर्तन', बालचन्द्र सूरि का 'वसन्तविलास' और जयचन्द्र सूरि का 'हम्मीरमहाकाव्य' उल्लेखनीय है।

अलंकृत शैली के रोमांचक महाकाव्यों में सोमदेव का 'कथासारित्सागर', पद्यगुप्त का 'नवसाहसांकचरित', वाग्भट्ट का 'नेमिनिर्वाणकाव्य', वीरनन्दि का 'चन्द्रपभचरित', सोमेश्वर का 'सुरथोत्सव', भवदेवसूरि का 'पार्श्वनाथचरित' और मुनिभद्रसूरि का 'शान्तिनाथचरित' प्रमुख है।

महाकाव्यों का यह श्रेणी–विभाजन पूर्णतया ओर अंशतया दोनों प्रकार से है, क्योंकि एक ही महाकाव्य–ग्रन्थ में प्रधानतया एक शैली और अंशतया अनेक श्रेणियाँ मिली–जुली है। 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ एंव कालिदास, अश्वाघोष, भारवि तथा माघ जैस कवियों की रचनाएं ऐतिहासिक, पौराणिक, अलंकृत शास्त्रीय, रीतिबद्ध ओर रामांचक आदि अनेक दृष्टियों का एक साथ परिचय देती है। इसलिए प्रधानतया उनकी एक श्रेणी होने पर भी

गौणतया उनको दूसरी श्रेणियों में भी परिगणित किया गया है।

संस्कृत की सुदीर्घ–परम्परा की भूमिका का और उसकी मूलभूत प्रवृत्तियों का समीक्षण करने के बाद महाकवि कालिदास से उसका अभ्युत्थान युग आरम्भ होता है। इस अभ्युत्थान युग की सीमा लगभग 12वीं शताब्दी तक जाती है। इस बीच भी यद्यपि कुछ ऐसी कृतियों का निर्माण हुआ, जिनको इस अभ्युत्थान युग की प्रतिनिधि कृति नहीं कहा जा सकता; फिर भी बहुत उच्चकोटि की जिन कृतियों का निर्माण इस युग में या इन शताब्दियों में हुआ, उनकी तुलना में फिर दूसरी कृतियाँ नहीं रची गयीं।

महाकाव्य : पाश्चात्य दृष्टिकोण

अंग्रेजी में 'एपिक' शब्द संज्ञा और विशेषण दोनों हैं, जिसका अर्थ है : वह कविता, जिसमें एक या एक से अधिक वीरों की वीरता का वर्णन हो, और जो मुखाग्र सुनायी जा सके। यह शब्द ग्रीक–भाषा के 'एपीकोस' (Epikos) से बना है। 'एपोस' (Epos)शब्द भी ग्रीक–भाषा का है, जिसका अर्थ वहाँ 'गीत' लिया गया है। अंग्रेजी–भाषा में इसका प्रयोग उसी रूप में 1835 ई0 से हुआ। उसके अनुसार 'एपिक' वह कविता है, जो अलिखित हो। सम्प्रति 'एपिक पोइट्री' की महाकाव्य के अर्थ में लिया जाता है। आंग्ल विद्वानों के मतानुसार महाकाव्य का पहला गुण वर्णनात्मक है; जिसका आकार बड़ा हो, जिसमें सुन्दर विचार सुन्दरता से वर्णित हो और साथ ही जिसका विषय भी महत्वपूर्ण हो।

पश्चिम में कविता का अभ्युदय भजन और जातीय कहानी–किस्सों से हुआ। वर्णनात्मक कविता का उदय पहले ग्रीस में हुआ; ऐसी वर्णनात्मक कविताएं पश्चिम मे तब लिखी गयी जब होमर और हेसियड का लोग नाम

---

1. डिक्शन, इंग्लिश एपिक पोएट्री ऐण्ड हिरोइक पोएट्री तथा सरस्वती (भाग 37, खण्ड 1, 1936) में प्रकाशित कुंवर राजेन्द्र सिंह का लेख, महाकाव्य (पृ0 310–315) पर आधारित

सुन पाये थे। इस प्रकार की कविता का ाअरम्भ लिपि के अभ्युदय से भी पहले हो चुका था, जब वह गा–गा कर सुनायी जाती थी। इसको गाने वाले पेशेवर लोग थे और उन्हीं की परम्परा से ऐसी कविता दूसरी पीढ़ियों तक पहुँची। इस प्रकार की कविता का सम्प्रति कोई भी चिन्ह शेष नहीं है।

ग्रीस के पहले महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' हैं, जिनके रचियता का नाम होमर था। होमर के जन्मकाल या उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में ठीक–ठीक पता नहीं चलता। होमर के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि आज भले ही उनके नाम से या उनके जन्मस्थान के नाम से कितने ही शहर अपने को सौभाग्यशाली समझ रहे हों; किन्तु यह निश्चित था कि किसी भी दूसरे प्रभावशाली कवि को इतनी कठिनाइयों मे जीवनयापन नहीं करना पड़ता। हिरोडोटस (500 ई0पू0) के कथनानुसार होमर का समय चार सौ वर्ष पूर्व अर्थात् 900 ई0पू0 बैठता है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि होमर का महाकाव्य अकेले उसके हाथ की रचना नहीं है, क्योंकि एक तो तब तक लेखनकला का इतना विकास नहीं हो पाया था और दूसरे बड़े आकार की रचना बिना लिखे कैसे रची ज़ा सकती थी। होमर के दोनों महाकाव्यों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि उनकी भाषा–शैली एक युग की नहीं है।

इन दोनों महाकाव्यों का प्रभाव पश्चिमी देशों की उत्तरवर्ती काव्य–प्रवृत्ति पर अवश्य पड़ा। रोम वाले उनका अनुकरण लगभग 170–239 ई0 तक करते रहे। 150 वर्ष पश्चात् बर्जिल की लिखी हुई वह कविता इस प्रसंग में उद्धरणीय है, जिसको अपनी मृत्यु के समय उसने जला देने के लिए कहा था; किन्तु वह बादशाह अगस्टन के आग्रह पर सुरक्षित रह गयी थी।

पाश्चमी विद्वानों ने प्राच्य साहित्य के तीन महाकाव्य माने हैं. 'रामायण', 'महाभारत' और 'शाहनामा'।

आरिस्टाटिल के मतानुसार महाकाव्य का आकार इतना होना चाहिए जो एक दिन में पढ़ा जा सके; जबकि एक दूसरे विद्वान् का कथन है कि महाकाव्य में केवल एक ही वर्ष की घटनाएँ होनी चाहिए।

पाश्चात्यों के मतानुसार पहले गीतिकाव्य और उसके बाद महाकाव्य रचे गये। उनके कथनानुसार गीतों में बिखरे हुए अनेक व्यक्तियों के अनेक भावों को एक अच्छे कवि ने अपनी काव्यमीय भाषा मे बाँध कर उन्हीं गीतों को काव्य का रूप दे दिया; किन्तु भारत के सम्बन्ध में यह मन्तव्य ठीक नहीं उतरता।

प्रो0 डिक्सन के अनुसार राष्ट्रीय कविता ही सच्चा महाकाव्य सिद्ध होती है। प्रो0 डिक्सन की पुस्तक में एक परिच्छेद 'अकृत्रिम महाकाव्य' पर है। व्योउल्फ ने प्राचीनकाल में अंग्रेजी–साहित्य का एक हजार वर्षो का इतिहास था। वह भी महाकाव्यों की कोटि मे रखा गया। आख्यायिकाओं को भी उन्होंने महाकाव्य में परिगणित की।

यद्यपि ग्रीस देश में होमर से पूर्व भी कवि हुए; जिन्होंने सर्वप्रथम भाषा का स्वर–संक्रमण किया और महाकाव्य के ढंग की षट्पदी आकार मे कविताएँ लिखीं और उन्हीं का दाय समेट कर होमर ने अपने महाकाव्यों की रचना की। पश्चिम की दृष्टि से यह बात सही साबित हो; किन्तु पूरब में, विशेषतः भारत में, महाकाव्यो का उदय कुछ दूसरे ही ढंग से हुआ।

पाश्चात्य महाकाव्यों का श्रेणी–विभाजन

संसार के महाकाव्यों की आधार–भित्ति यद्यपि एक जैसे प्रतिमानों पर आधारित नहीं है; फिर भी मोटे रूप से उनकी तुलना करने पर हमें बहुत से

ऐसे तथ्य उनमें देखने को मिलते है; जिनसे हमें विश्वास होता है कि उनके भीतर से एक जैसी चिन्ताधारा और एक जैसी प्रेरणा के भाव बोल रहे हैं।

पाश्चात्य दृष्टिकोण से महाकाव्य (एपिक) के प्रधान दो भेद हैं: विकसित महाकाव्य (एपिक ऑफ ग्रोथ) और अलंकृत महाकाव्य (एपिक ऑफ आर्ट) विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों मे अनेक हाथों से संशोधित, सम्पादित, परिवर्द्धित एवं संस्कृत होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर सका है। उसका आधार प्राचीन गाथाएँ होती हैं। अलंकृत महाकाव्य वह है, जिसमें एक ही व्यक्ति का काव्य कौशल दर्शित है। इसमें भी प्रथम श्रेणी के काव्य जैसी समग्रताएँ विद्यमान् रहती हैं; किन्तु उसकी अपेक्षा इसमें एक ही हाथ का कौशल रहता है। विकसित महाकाव्यों में ग्रीक के महाकवि होमर का 'इलियड' तथा 'ओडेसी', अथच संस्कृत का 'महाभारत'; और अलंकृत महाकाव्यो में लैटिन–भाषा के कवि बर्जिल का 'इनीड' ओर संस्कृत–भाषा की कृति 'रामायण' को उद्धृत किया जा सकता है।

कालिदास के पूर्ववर्ती विलुप्त महाकाव्य

संस्कृत मे उपलब्ध महाकाव्यों की परम्परा की यद्यपि कालिदास के ग्रन्थों से मानी जाती है; किन्तु कालिदास से भी बहुत पहले इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। स्फुट कविताओं तथा स्फुट काव्यों का अस्तित्व तो ओर भी पहले का है। काव्यों और महाकाव्यों के पुरातन अस्तित्व को प्रकट करने वाली ये कृतियाँ यद्यपि आज जीवित नहीं है; किन्तु उनके अस्तित्व को बताने वाले प्रबल साक्ष्य आज भी विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं।

'महाभारत' के शान्तिपर्व में गार्ग्य को 'देवर्षिचरित' का कर्ता बताया

गया है।[1] यदि यह कथन सही हो तो चरितविषयक ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों का निर्माण बहुत प्राचीन समय में ही होने लग गया था। ये गार्ग्य, वैयाकरण, निरूक्तकार या आयुर्वेदज्ञ गार्ग्य ही थे या उनसे भिन्न– इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; किन्तु इतना निश्चित है कि वे 'महाभारत' से पहले हुए।[2]

संस्कृत के विद्यार्थी के लिए वैयाकरण पाणिनि का परिचय कोई नया नहीं है; किन्तु एक अद्वितीय वैयाकरण के अतिरिक्त वे सिद्धहस्त काव्यकार भी थे, इस बात को कम लोग जानते हैं, अथवा जानकर भी ध्यान में नहीं लेते। उन्होंने एक 'जाम्बवतीविजय' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसमें 18 सर्ग थे। ग्रन्थ के सम्बन्ध मे सूचनाएँ मिलती हैं।[3]

व्याडि, पाणिनि के समकालीन थे। संग्रहकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि है। उन्होंने 'बालचरित' नामक एक महाकाव्य का निर्माण किया था। उनके सम्बन्ध में महाराज समुद्रगुप्त का कथन है कि 'व्याडि रसतन्त्र के आचार्य, महाकवि, शब्दब्रह्मैकवाद के प्रवर्तक, पाणिनि–सूत्रों के व्याख्याता ओर मीमांसकों में अग्रणी थे। उन्होंने 'बालचरित' लिखकर 'भारत' और व्यास को जीत लिया। महाकाव्य के क्षेत्र मे व्याडि का ग्रन्थ प्रदीपभूत था।[4] समुद्रगुप्त के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि व्याडि ने 'महाभारत' से भी बड़ा महाकाव्य लिखा था। व्याडि के काव्यकार होने की पुष्टि 'अमरकोष'

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 210/21
2. भवदत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग 1, खण्ड 3, पृ0 168
3. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का लेख, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग 1, खण्ड 1, कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ0 85
   सीताराम जयराम जोशी तथा विश्वनाथ शास्त्री की संयुक्त पुस्तक, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 97; युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, खण्ड 1, पृ0 161–165
4. कृष्णचरित, श्लोक 16,17

की एक अज्ञातनाम टीकाकार की टीका से होती है। उसमे लिखा है कि'भट्टिकाव्य' के 12वें सर्ग के सदृश व्याडि के काव्य मे भी 'भाषासमावेश' नामक एक भाग या अध्याय था।'[1] शब्दयास्त्रविद् व्याडि के महाकाव्य में इस प्रकार का अध्याय होना उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

महाराज समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' मे वार्तिककार वररूचि कात्यायन को 'स्वर्गारोहण' नाम काव्य का रचियता बताया गया है। उनकी प्रशंसा में कहा गया है कि ऐसे सुन्दर काव्य को लिखकर कात्यायन ने स्वर्ग को पृथिवी पर उतार दिया। अपने रूचिर कवित्व कर्म के कारण पृथिवी भर में उनका कवित्स–यश फैला।[2] दूसरे श्लोक में कहा गया है कि दाक्षीपुत्र वार्तिककार कात्यायन केवल केवल व्याकरण की रचना कर ही विरमित नहीं हो गये थे; बल्कि उस कवि–कर्म–दक्ष ने एक काव्यकृति का भी निर्माण किया था।[3]

वररूचिकृत काव्य की पुष्टि 'महाभाष्य' के उद्धत श्लोकों से भी होती है।[4] 'शाईधरापद्धति', सदुक्तिकर्णामृत' और 'सुभाषितमुक्तावलि' आदि ग्रन्थो में उद्धत श्लोकों मे 'वररूचि के कविकर्म के प्रमाण सुरक्षित हैं।

---

1. अमरकोश–टीका, राजकीय हस्तलेख पुस्तकालय मद्रास में सुरक्षित प्रति; देखिए – ओरियण्टल जर्नल, मद्रास, 1932, पृ0 353ण

2. यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रूचिरेणैव ख्यातो वररूचिः कविः।। –कृष्णचरित।

3. न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्योऽपि भूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः।। –कृष्णचरित

4. महाभाष्य, 4/3/101.

'महाभाष्य' में 'भ्राज' संज्ञक श्लोकों का उल्लेख मिलता है।[1] कैयट[2] हरदत्त[3] और नागेशभट्ट[4] के मतानुसार ये 'भ्राज' संज्ञक शलोक वार्तिककार कात्यायन की रचना ठहरते हैं। ये श्लोक सम्प्रति विलुप्त हो गये हैं। इन श्लोकों में से एक श्लोक महाभाष्य के प्रथाह्निक में उद्धृत मिलता है।

'महाभाष्य' में तित्तिरि प्रोक्त श्लोकों का भी उल्लेख मिलता है।[5] यह तित्तिर, वैशम्पायन का जेठा भाई एवं उसी का शिष्य था। उसका दूसरा नाम चरक भी था। इसी चरक द्वारा प्रोक्त 'चारकश्लोकों' का निर्देश 'काशिकावृत्ति'[6] और अभिनव शाकटायनकृत 'चिन्तामणिवृत्ति'[7] में भी मिलता है।[8]

इसी प्रकार सायण ने भी माधवीया 'धातुवृत्ति' में उख प्रोक्त 'औखीय' स्फुट श्लोकों का उल्लेख किया है।[9] तित्तिर या चरक तथा उख प्राचीन व्यक्ति मालूम होते हैं, क्योंकि पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में भी उनका नामोल्लेख हुआ है।[10]

महाभाष्यकार के रूप में पतंजलि के असामान्य व्यक्तित्व का परिचय मिलता है; किन्तु उन्होंने भी एक महाकाव्य की रचना की थी, यह बात कम प्रचलित है। महाराज समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' की प्रस्तावना में तीन श्लोक इस आशय के उद्धृत हैं, जिनसे पता चलता है कि 'महाभाष्य' के रचयिता

---

1. महाभाष्य, 1/1/1
2. महाभाष्यप्रदीप (नवाहिक), पृ० 34 निर्णय सागर का संस्करण
3. पदमंजरी, भाग 1, पृ० 10.
4. महाभाष्यप्रदीपोद्योत (नवाह्नि), पृ० 33, निर्णयसागर का संस्करण
5. महाभाष्य, 4/2/65
6. काशिकावृत्ति, 4/3/107.
7. चिन्तामणिवृत्ति, 3/1/171.
8. भगवद्दत, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग 1, पृ० 175
9. माधवीया धातुवृत्ति, पृ० 52, काशी संस्करण।
10. अष्टाधायी, 4/3/102; 4/3/107

पतंजलि ने चरक में धर्मानुकूल कुछ योग सम्मिलित किये; योग की विभूतियों का निदर्शक, योगव्याख्यानभूत 'महानन्द' नामक महाकाव्य की रचना की। सम्भवतः यह महाकाव्य मगध सम्राट् महानन्द से सम्बद्ध रहा होगा।

इसी प्रकार विलुप्त महाकाव्यों, काव्य–ग्रन्थों या स्फुट कविताओं के सम्बन्ध की अनेक सूचनाएं प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त हो सकती हैं। औखीय या तैत्तिरीय श्लोक, बहुत सम्भव है, काव्य–विषयक न रहे हों; किन्तु जिस रूप में उनके सम्बन्ध की सूचनाएं दी गयी हैं। उनसे तो यही विदित होता है कि उनमें कविबुद्धि एवं काव्यत्व के गुण भरपूर हैं।

प्रशस्तियों की काव्य–प्रवृत्तियाँ

संस्कृत–साहित्य की प्राचीनतम काव्य–प्रवृत्तियों के जीवित प्रमाण आज हमें प्रस्तर–पुस्तिकाओं पर उत्कीर्ण मिलते हैं। उनमें रूद्रदामन् का गिरनार–शिलालेख (150 ई0), तथा इसी समय का पुलुमावि का नासिक शिलालेख प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति (345 ई0), वीरसेन का उदयगिरि–गुफा का अभिलेख (470 ई0), वत्सभट्टि की मन्दसौरप्रशस्ति (437 ई0), रविशान्ति का हरहा–अभिलेख (555 ई0) और वासुल की मन्दसौर–प्रशस्ति (छठी शताब्दी) आदि ऐसे ही प्रमाण है।, जिनमें संस्कृत की पूर्वागत काव्य–परम्परा के सूत्र ग्रथित हैं।

संस्कृत के इन अज्ञातनामा या अपरिचित काव्यकारों के सम्बन्ध में कुछ छिट–पुट प्रकाश आर्केलौजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एपिग्राफिया इण्डिका, इण्डियन इंस्क्रिप्शन्स, गुप्ता इंस्क्रिप्शन्स, विभिन्न प्रदेशों के गजेटियर, अथवा एशियाटिक सोसायटी बंगाल, बिहार, बम्बई, उड़ीसा आदि के जर्नल्स या प्रोसीडिंग्स में पड़ चुका है; किन्तु उन पर विस्तार से खोज करने की आवश्यकता अभी पूर्ववत् बनी है।

सन् 1903 ई0 में स्व0 बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने 'प्राचीन लेखमणिमाला'[1] के नाम से विभिन्न दानपत्रों, अन्तर्लेखों, शिलाखण्डों, प्राचीन हस्तलिखित पोथियों, कई इतिहास ग्रन्थों और विशेषतया डॉ0 कीलहार्न के विद्वत्तापूर्ण लेख के आधार पर अपनी इस पुस्तक का निर्माण किया था। इस पुस्तक में 716 लेखों का संग्रह है। इस पुस्तक को देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि संस्कृत के कितने ही निर्माताओं का नाम तक आज हमें विदित नहीं है।

संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार सम्पूर्ण काव्य–साहित्य दो भागों में विभक्त है: दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक एंव रूपकों की गणना आती है ओर श्रव्य काव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य तथा चम्पू की। पद्यकाव्य पुनः महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्ताकाव्य–तीन भेदों मे विभाजित है, और गद्यकाव्य कथा – आख्यायिका आदि में। चम्पू–काव्य का कोई भेद नहीं है। वह गद्य–पद्यमिश्रित होता है।

महाकाव्यों की परम्परा का विकास

महाकाव्यों की परम्परा को सामन्यतः तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी के अन्तर्गत वे महाकाव्य रखे जा सकते हैं, जो विशुद्ध संस्कृत मे लिखे गये, जैसे कि कालिदास, माघ, श्रीहर्ष आदि के ग्रन्थ तथा दूसरी श्रेणी में पालि तथा प्राकृतिक–भाषा के महाकाव्य आते हैं ओर तीसरी श्रेणी के महाकाव्य अपभ्रंश में है।, जिनसे हिन्दी–साहित्य मे काव्य परम्परा का प्रवर्तन हुआ।

ऐततिहासिक दृष्टि से संस्कृत महाकाव्यों की लम्बी–परम्परा को हमने तीन विभिन्न युगों में विभाजित किया है। पहला उद्धव–युग कालिदास से पहले, दूसरेअभ्युत्थान युग कालिदास से लेकर श्रीहर्ष तक और तीसरा

---

1. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1903.

ह्रासयुग तेरहवीं शती से अब तक। अन्तिम दो परिशिष्ट इन्हीं तीन युगों मे समा जाते हैं; किन्तु उनको अलग से इसलिए लिख दिया है कि विषय की दृष्टि से एक प्रकार की सामग्री एक साथ एक स्थान पर सिलसिलेवार पढ़ी जा सके।

महाकाव्यों के पहले अभ्युदय–युग के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा चुका था। दूसरे अभ्युत्थान–युग से पहले इस सामग्री को जोड़ने की आवश्यकता इसलिए हुई कि महाकवि कालिदास से पहले की परिस्थितियों को पूरी तरह जान लेने के बाद ही हम महाकाव्यों के उत्कर्ष की परम्परा में प्रवेश करें।

अभ्युत्थानःमहाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास से संस्कृत के काव्य–साहित्य का अभ्युदय और साथ ही उसकी समृद्धिशाली–परम्परा का आरम्भ होता है। कालिदास सर्वथा असामान्य प्रतिभा को लेकर जन्मे थे। उनके इस असामान्य व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र उनकी कृतियों मे समाहित है। उनकी उज्जवल कीर्ति आज देश–काल की परिधियों को तोड़कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्व को प्राप्त कर रही है। वे आज विश्वकवि के उच्चासन पर सुशोभित है।

महाकवि के यशस्वी जीवन और उनकी भारती का गुणगान करने में जितनी उत्सुकता भारतीय विद्वानों को हो रही है, उससे किसी भी अंश में विदेशी विद्वान पीछे नहीं रहे है। उनको कुछ ने बंगाली, कुछ ने काश्मीरी ओर कुछ ने मालव सिद्ध करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी ईसवी तक विभिन्न तिथियों में उनकी काल–सीमाओं को रखा गया है

डॉ0 हार्नली और डॉ0 फर्गुसन प्रभृति कुछ विद्वान् कालिदास को, नरपति यशोवर्धन का राजकवि सिद्ध कर, छठी शताब्दी में रखते है। और

यशोवर्धन को हूण–विजेता के नात 'विक्रमादित्य' विरूदधारी कहते है।; किन्तु यह मत अब ग्राह्य नहीं है।

शक–विजेता 'विक्रमादित्य' का विरूद धारण करने वाले एवं मालव–संवत् को विक्रम–संवत् में परिवर्तित करने वाले सम्राट् चन्द्रगुप्त (375–413 ई0) को कालिदास का आश्रयदाता सिद्ध करने वाले विद्वानों में डॉ0 स्मिथ, मेक्डानल, कीथ, भण्डारकर आदि प्रमुख हैं। इनसे भी पहले वैदिक धर्म और संस्कृत के पुनरूद्धारक गुप्तयुग में कालिदास केस्थितिकाल को रखने के सम्बन्ध में मैक्समूलर विस्तार से चर्चा कर चुके थे।

कुछ विद्वानों का कथन है कि रघु के दिग्विजय के अवसर पर जिन देशों एवं स्थानों का वर्णन कालिदास ने अपने 'रघुवंश' में किया है, ठीक उन्हीं देशों पर समुद्रगुप्त ने भी विजय किया। समुद्रगुप्त का दिग्विजय–विस्तार रघु के दिग्विजय–विस्तार का अविकल रूप है। कालिदास के महाकाव्य में स्पष्टतया गुप्त–साम्राज्य के 'स्वर्णयुग' का आखों देखा हाल वर्णित है।[1]

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई0 पूर्व में मानने वाले विद्वानों की संख्या भी कम नहीं है।[2] 'विक्रमादित्य' का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय (समुद्रगुप्त) से जोड़कर कालिदास को कुछ विद्वानों ने बौद्ध महाकवि अश्वघोष के बाद रखा है;[3] किन्तु कालिदास की कृतियों के अन्तःसाक्ष्य का विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता है कि वे विक्रमीय संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के समकालीन एवं अश्वाघोष से पहले ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए।[4]

---

1. उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास 2, पृ0 100.
2. जी0सी0 झाला, कालिदास : ए स्टी; के एम0 सम्भवकेकर, दि डेट ऑफ कालिदास–कालिदास ग्रन्थावली
3. डॉ0 भोलाशंकर व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 77
4. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 94–96

उक्त दोनों पक्षों के विद्वानों की युक्तियों का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन करके हमारी राय मे दूसरे अभिमत के विद्वानों ने कालिदास को ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी मे रखने के लिए जो तर्क और प्रमाण दिये है।, वे अधिक विश्वसनीय हैं।

महाकवि कालिदास के जन्म एवं जीवनी के सम्बन्ध में जिस प्रकार मतभेद रहा है, उनकी कृतियों के सम्बन्ध में भी कुछ कम विवाद नहीं है। कुछ दिन पूर्व कालिदास नामधारी दूसरे व्यक्तियों की कृतियों को महाकवि के नाम, और यहाँ तक कि महाकवि की मूल कृतियों को दूसरे के नाम जोड़ देने के सम्बन्ध में काफी लम्बा विवाद रहा है। इधर विद्वानो की गवेषणाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'नलोदय', 'राक्षसकाव्य', श्रृंगारतिलक', प्रभृति काव्य–कृतियों; 'श्रुतबोध' नामक छन्द–विषयक ग्रन्थ, 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिष–ग्रन्थ और 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत महाकाव्य आदि के रचयिता महाकवि कालिदास न होकर कालिदास–नामधारी दूसरे ही व्यक्ति थे।[1]

इसी प्रकार कुछ लोगों के कथनानुसार 'ऋतुसंहार' और 'मालविकाग्निमित्र' इन दो ग्रन्थों पर मल्लिनाथ की टीका न होने के कारण वे कालिदासकृत नहीं हैं, किन्तु आधुनिक खोजों के आधार पर कालिदास की कृतियों को नामावली और उनका क्रम इस प्रकार है : 'ऋतुसंहार', 'कुमारसंभव' (आदि भाग), 'मालविकग्निमित्र', 'कुमारसंभव' (अन्तिम भाग), 'विक्रमोर्वशीय', 'मेघदूत', 'रघुवंश' और 'अभिज्ञानशाकुन्तल' ।[2]

महाकवि कालिदास की काव्यकला के सम्बन्ध में मेक्डोनेल महोदय

---

1. रामनाथ अय्यर, जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, पृ0 263 (1955)
2. आर0डी0 कर्मकर, दि क्रोनोलाजिकल आर्डर ऑफ कालिदासाज वर्क्स, प्रोसीडिंग्स ऑफ सेकेण्ड ओरियण्टल कान्फ्रेंस, पृ0 238.

का कथन है कि 'उनके भाव–सामंजस्य मे कहीं भी विरोधी भावनाएं नहीं आने पायीं। उनके प्रत्येक आवेग मे कोमलता है। उनके प्रेम का आवेश कभी भी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करता। उन्होंने प्रेमी को सदा ही संयत, ईर्ष्यारहित एवं घृणावियुक्त रूप में चित्रित किया है। कालिदास की कविता मे भारतीय प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप समाविष्ट है। उनके काव्य में ऐसा सामंजस्य है, जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।[1]

महाकवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण और उनकी प्रतिभा से निःसृत अमृतकणों का पान करना आदि ऐसी बातें है।, जिनको न तो इतिहास से मापा जा सकता है और न ही उनके सम्बन्ध में अविश्वास की धारणा प्रकट की जा सकती ह। महाकवि का यही काव्य–कौशल उनके व्यक्तित्व का वास्तविक परिचायक है, उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय, यथेष्ट नहीं है। उसी को हम विश्वकवि के शब्दों में यो कह सकते हैं :

"भारतीय शास्त्रों में नर–नारी का संयत–सम्बन्ध कठिन अनुशासन के रूप में आदिष्ट है और वही कालिदास के काव्यों में सौन्दर्य के सामानों से सुसंगठित हुआ है, यह सौन्दर्य श्री, ह्री और कल्याण से उद्भावित है, गम्भीरता की ओर से विश्व का आश्रयस्थल है। वह त्याग से परिपूर्ण, दुःख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निश्चित है"[2]

महाकवि कालिदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले बौद्ध महाकवि अश्वघोष का नाम आता है। कालिदास और अश्वाघोष के सम्बन्ध में विद्वानों का यह विवाद बहुत समय से चला आ रहा

---

1. ए०ए० मैक्डोनले, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० 353.
2. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्राचीन साहित्य, पृ० 39, अनुवादक–रामदहिन मिश्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1933

है कि दोनों में कौन पहले था। इस विवाद का अभी तक सुनिश्चित हल नहीं निकला है। यहाँ अश्वघोष को कालिदास के बाद रखने में हम किसी सम्प्रदायविशेष का अनुगमन नहीं कर रहे हैं। हमारे सामने इन दो महाकवियों के सम्बन्ध में जो सामग्री विद्यमान है उसी के आधार पर हम ऐसा कर रहे हैं।

महाकाव्यों का उत्कर्ष : 12वीं शताब्दी तक

अश्वघोष

क्षेमेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने कालिदास और अश्वघोषविषयक विवाद में बड़ी सूक्ष्मता से दोनों महाकवियों के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात, अश्वघोष को कालिदास का परवर्ती सिद्ध किया है,[1] तथापित दूसरे विद्वान् अश्वघोष को ही प्रथम महाकवि सिद्ध करते हैं।[2]

अश्वघोष अयोध्या के निवासी थे और उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था।[3] सम्भवतः ये ब्राह्मण से बौद्ध हुए, क्योंकि इनकी कृतियों में वैदिक धर्म, ब्राह्मण धर्म और बौद्धधर्म की अनेक सामंजस्यपूर्ण बातों का पता चलता है। अश्वघोष बौद्ध थे और बौद्धधर्म एंव बौद्ध–दर्शन के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा की बेजोड़ छाप है; किन्तु उनके व्यक्तित्व का वास्तविक मूल्यांकन उनकी काव्यकृतियों में सुरक्षित है। वे दार्शनिक, संगीतज्ञ और इससे बढ़कर कवि थे।

अश्वाघोष कनिष्क (78 ई0) के समकालीन और बौद्ध–न्याय के शून्यवादी सम्प्रदाय के पिता आचार्य नागार्जुन से पहले, प्रथम शताब्दी ईसवी में हुए।[4] चीनी एवं तिब्बती–परम्पराओं के अनुसार इन्हें कनिष्क का सभा–पण्डित,

---

1. चट्टोपाध्याय, डेट ऑफ कालिदास, पृ0 82–106 (1926)
2. डॉ0 भोलाशंकर व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 59 (2012 वि0)
3. आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेकस्य भिक्षोराचार्यभदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्वादिनः कृतिरियम्–सौन्दरनन्द की पुष्पिका
4. डॉ0 चाउ सिआंग, चीनी बौद्धधर्म का इतिहास, पृ0 100

गुरू एवं आत्मीय माना गया है। सम्राट कनिष्क द्वारा आयोजित चौथी बौद्ध संगीति (1000 ई0)[1] के ये आचार्य थे। इस संगीति का वर्णन इनके काव्य मे बड़े अच्छे ढंग से किया गया है।[2]

अश्वघोष की जिन कृतियो के सम्बन्ध में सभी विद्वान् एकमत है। उनके नाम है। : 'बुद्धचरित', 'सौन्दरनन्द' और शारिपुत्रप्रकरण' । इनमें आदि की दोनों कृतियाँ महाकाव्य है। 'बुद्धचरित' के तिब्बती अनुवाद के आधार पर अनूदित डॉ0 जॉन्सटन के अनुवाद मे इसका पूरा विश्लेषण है।[3] तीसरी नाट्यकृति है, जिसको एच0 लूडर्स्र ने मध्य एशिया से प्राप्त किया।[4]

इन तीनों कृतियों मे कुछ कृतियाँ ऐसी भी है, जिनको अश्वाघोषकृत कहने मे विद्वानों मे मतभेद रहा है; किन्तु तिब्बती तथा चीनी–परम्परा मे जो अश्वाघोष के नाम से एक प्राणहोकर जुड़ी हुई है। इन कृतियों के नाम है : 'सूत्रालंकार', 'महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह', 'वज्रसचिकोपनिषद्', और 'गण्डीस्तोत्रगाथा'। ये चारों कृतियाँ हस्तलेखों के रूप मे आज भी चीन–तिब्बत में सुरक्षित है, जिनको पहले –पहल सप्तम शताब्दी के चीनी पर्यटक इत्सिंग ने प्रचारित किया था।

'सूत्रांलकार' का चीनी अनुवाद भिक्षु कुमारजीव ने 405 ई0 में किया।[5] इधर मध्य एशिया मे इस ग्रन्थ की जो दूसरी अनूदित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनके आधार पर एच0 लूडर्स ने 'सूत्रालंकार' का आचार्य कुमारलत की

---

1. आजकल : बौद्धधर्म के 2500 वर्ष, दिसम्बर, 1956
2. बुद्धचरित, अध्याय 28
3. बिल्लोथिका इण्डिका, पृ0 126, 1939
4. आजकल : बौद्धधर्म के 2500 वर्ष, पृ0 159
5. डॉ0 चाउ सिआंग कुआंग, चीनी बौद्धधर्म का इतिहास, पृ0 102

कृति ठहराया है।

छठी शताब्दी में वर्तमान सुप्रसिद्ध अनुवादक भारतीय बौद्ध भिक्षु परमार्थ द्वारा अनूदित बौद्धदर्शन–विषयक 'महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह' की एक प्रति चीनी–भाषा में उपलब्ध है।[1] इसके दो अंग्रेजी अनुवाद ती0 सुजुकी और रिचर्ड्स ने किये हैं। इन अनुवादकद्वय ने उक्त कृति को अश्वघोषकृत सिद्ध किया है, और इसके आधार पर यह भी सिद्ध किया है कि महायान–सम्प्रदाय की माध्यमिक शाखा के पहले शून्यवादी आचार्य अश्वघोष थे। विण्टरनित्स और तकाकुरा इसको किसी दूसरे ही विद्वान की कृति बताते हैं; किन्तु डॉ0 चाउ की आधुनिकतम गवेषणा के अनुसार 'महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र' के रचयिता अश्वघोष ही थे, जिस पर 712 ई0 के चीनी भिक्षु फात्सांग ने 'ता–शांग–चि–हिन–लन–शु' नामक टीका लिखी, जो मूल ग्रन्थ से अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई।[2]

'वज्रसूची' नामक तीसरे ग्रन्थ का चीनी अनुवाद दशवीं शताब्दी के लगभग हुआ। इस सम्बन्ध मे चीनी–परम्परा में दो विश्वास प्रचलित है; कोई इसे अश्वाघोष की कृति मानते है। ओर कोई धर्मकीर्ति की। इस ग्रन्थ को वेवर महोदय ने उपलब्ध करके 1860 ई0 में जर्मनी से प्रकाशित किया था। इस व्याख्यान–ग्रन्थ का लेखक लोकमान्य ने अश्वघोष को ही बताया है।[3]

'ग़ण्डीस्तोत्रगाथा' एक गीतिकाव्य है। इसमें स्रग्धरा छन्द में लिखी हुई 29 गाथाएँ हैं। ई0 एच0 जोह्नस्टन ने इसके अश्वाघोषकृत होने में सन्देह प्रकट किया है; किन्तु विण्टरनित्स का कथन है कि रूप और विषय की दृष्टि

---

4. आजकल : बौद्वधर्म के 2500 वर्ष, पृ0 175.
2. डॉ0 चाउ का उक्त ग्रन्थ, पृ0 19.
3. लोकमान्य तिलक, गीतारहस्य, पृ0 561

से यह सुन्दर रचना अश्वाघोष के अनुरूप हैं।[1]

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त, हमने अश्वाघोष की जिस 'शारिपुत्र प्रकरण' नाटक कृति का उल्लेख किया है, उसको एच0 लूडर्स ने मध्य एशिया के तुर्फान नामक स्थान से प्राप्त किया था। यह प्रकरण–रचना उन्हे ताड़पत्रों पर लिखी हुई मिली। इसी ताड़पत्र की पौथी में 'प्रबोधचन्द्रोदय' और 'अन्यापदेशी' दो खण्डित नाट्य कृतियाँ भी संलग्न थीं। इनको कुछ विद्वानों ने अश्वघोषकृत ही साबित किया है। कीथ ने इनको 'हेरटेरा हामा' (गणिका रूपक) कहा है।[2] इन दोनों कृतियों के अश्वघोषकृत होने में सन्देह है।

अश्वाघोष की प्रतिभा के परिचायक उनके दो महाकाव्य 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' के सम्बन्ध में यद्यपि म0म0 हरप्रसाद शास्त्री ने 'सौन्दरनन्द' की रचना पहले बतायी है; किन्तु कुछ विद्वानों ने उनके भीतरी साक्ष्यो का अनुशीलन करके यही सिद्ध किया कि 'बुद्धचरित' की रचना पहले हुई,[3] ओर यही मत सम्प्रति मान्य है।

डा़0 चाउ का कथन है कि 'बौद्ध महाकवि अश्वाघोष के महाकाव्य का नाम 'बुद्धचरित–काव्य–सूत्र' है। धर्मरक्ष–प्रणीत उसके चीनी अनुवाद ने चीनी बौद्धधर्म को ही नहीं, चीनी–साहित्य को भी विशद रूप से प्रभावित किया है।"[4]

संस्कृत की काव्य–परम्परा में कालिदास और अश्वघोष की कृतियाँ अपना–अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं। संस्कृत–साहित्य की महाकाव्य–परम्परा के अध्येता के लिए अश्वघोष का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि वे कवि

1. विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ0 266
2. डा0 कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ0 88
3. डॉ0 कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 22
4. डॉ0 चाउ, चीनी बौद्धधर्म का इतिहास, पृ0 3 भूमिका

थे, वरन, इसीलिए भी है कि कालिदास की कवित्व–प्रतिभा के अध्ययन के लिए अश्वघोष का वही महत्व है जो शेक्सपीयर की नाट्य प्रतिभा के अध्ययन के लिए मालों की नाट्य कृतियों का।[1]

बुद्धघोष

महाकवि अश्वघोष के बाद महाकाव्यों की परम्परा कुछ शताब्दियों तक विच्छित्र रही। बौद्धाचार्य बुद्धघोष ने दस सर्गो की एक काव्यकृति 'पद्यमचूड़ामणि' नाम से लिखी। पालि लेखकों और बौद्धधर्म के व्याख्याकारों मे नागसेन, बुद्धदत्त, बुद्धघोष ओर धम्मापाल का उल्लेखनीय स्थान रहा है। बुद्धघोष का बौद्धधर्मविषयक ग्रन्थों में पहला ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्ग' है, जिसको उन्होंने सिंहली में लिखा था। 'महावंश' और अठकथाएँ भी उनके नाम से प्रचलित है।[2]

ये ब्राह्मण बौद्ध हुए। काव्यविषयक इनके उक्त ग्रन्थ पर कालिदास और अश्वघोष की कृतियों का प्रभाव है। बौद्धग्रन्थों के विवरणानुसार ये 387 ई0 में त्रिपिटकों के पालि अनुवाद को लाने के लिए लंका भेजे गये थे। उन्होंने कई बौद्ध–ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की; कुछ का अनुवाद किया और कुछ पर टीकाएँ लिखी। उनके ग्रन्थ का 488 ई0 चीनी–भाषा में अनुवाद हो चुका था। इस दृष्टि से उनका स्थितिकाल 400 ई0 में बैठता है।[3]

भीम या भीमक

बुद्धघोष के बाद महाकवि भीम या भीमक ने 27 सर्गो की एक कृति 'रावणार्जुनीय' या 'अर्जुनरावणीय' लिखी जिसका प्रभाव आगे चलकर भट्टि के 'रावणवध' और हलायुध के 'कविरहस्य' पर पड़ा। इस ग्रन्थ के अस्तित्व

---

1. डॉ0 भोलाशंकर व्यास, संस्कृत कविदर्शन, पृ0 70
2 आजकलः बौद्धधर्म के 2500 वर्ष पृ0 156
3. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 104–105

का हवाला 'काशिकावृत्ति' (600 ई0) में उद्धत है, जिससे प्रतीत होता है कि भीमक का स्थितिकाल पांचवीं शताब्दी के आस पास था।[1]

भर्तृमेंठ

एक महाकाव्य के रचयिता भर्तृमेंठ हुए। उन्होंने 'हयग्रीववध' लिखा जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। सूक्ति–संग्रहों एवं सुभाषित ग्रन्थों में उनके श्लोक मिलते हैं। राजशेखर का कथन है कि पुराकाल में उत्पन्न वाल्मीकि कवि ही अवान्तर जन्म में भर्तृमेठ से भवभूति ओर भवभूति से राजशेखर नाम से हुए।[2] कल्हण ने लिखा है कि मेंठ नामक एक महाकवि स्वनिर्मित एक महाकाव्य 'हयग्रीववध' को तत्कालीन राजा मातृतगुप्त के सम्मुख पढ़ने की अभिलाषा से काश्मीर आये थे। भर्तृमेंठ ने अपनी कृति को अन्त तक पढ़ कर सुना दिया; किन्तु राजा से इसके सम्बन्ध में महाकवि ने जब एक भी शब्द नहीं सुना तो उसे राजा की गुणग्राहिता, काव्यरसिकता पर अविश्वास हुआ और निरूत्साहित होकर महाकवि जब अपनी पुस्तक को वेष्टन मे समेटने लगा तो राजा ने 'टपकता हुआ काव्यामृत पृथ्वी पर न गिरने पावे', ऐसा सोचकर उस पुस्तक के नीचे स्वर्णपात्र रख दिया। राजा द्वारा किये गंये इस सम्मान से सन्तुष्ट होकर महाकवि को अपनी रचना के उपलक्ष्य मे उपलब्ध बहुमूल्य पारितोषिक व्यर्थ–सा लगने लगा।[3]

भर्तृमेंठ का वास्तविक नाम अविदित है। 'मेंठ' शब्द महावत का पर्यायवाची है। सुभाषित–ग्रन्थों में 'हस्तिपक' नाम से जो रचनाएं मिलती हैं, उन्हें भी भर्तृमेंठ की ही कहा जाता है। धनपाल ने इनको 'मेंठराज' कहकर स्मरण किया है, इसलिए उनकी कविता में हाथियों के प्रति विशेष प्रेम का परिचय मिलता है।[4]

---

1. वही, पृ0 105
2. राजशेखर, बालरामायण
3. राजतरंगिणी, 3/260–262
4. सदुक्तिकर्णामृत

मातृगुप्त ओर भर्तृमेंठ का सम्बन्ध बहुत समय तक बना रहा। मातृगुप्त स्वय कविता करते और भर्तृमेंठ से कविताएँ सुनते थे। भर्तृमेंठ की ही भांति मातृगुप्त के कवियश को सुरक्षित रखने वाला उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध न होकर उद्धरण रूप मे ही स्फुट कविताएँ विभिन्न संग्रहों एवं सूक्तिग्रन्थों में मिलती है। ऐसी भी एक काश्मीरी श्रुति–परम्परा है कि मातृगुप्त ने भरत के 'नाट्यशास्त्र' पर एक पाण्डितत्यपूर्ण टीका लिखी थी। नाट्यशास्त्र–विषयक उनके रचे हुए कुछ उपलब्ध श्लोकों को देखकर सहज ही उनके उर्वर मस्तिष्क का परिचय मिल सकता है।

मातृगुप्त

काश्मीर के राजा हिरण्य की निःसन्तान मृत्यु हो जाने के कारण चक्रवर्ती विक्रमादित्य हर्ष ने अपने गुणग्राही, ईमानदार और सेवापरायण राजकवि मातृगुप्त को हिरण्य राजा के उत्तराधिकार की राजगद्दी पर अधिष्ठित किया था।[1] विक्रमादित्य हर्ष और मातृगुप्त के सम्बन्धों की चर्चाएँ 'राजतरगिंणी' मे विस्तार से वर्णित है।[2] मातृगुप्त ने पांचवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काश्मीर पर राज्य किया था। यही समय भर्तृमेंठ का भी है और 'शकारि' विक्रमादित्य का इतिहास–सम्मत स्थितिकाल भी यही है। राजतरगिंणीकार का कथन है कि अपने कृपालु स्वामी विक्रमादित्य का देहान्त सुनकर मातृगुप्त ने भी राज्य त्यागकर वैराग्य ले लिया था।[3] इनकी प्रशंसा में लिखा हुआ है कि "परस्पर यथोचित स्वाभिमान रखने वाले तथा उदारहृदय मातृगुप्त ओर प्रवरसेन, तीनों राजाओं की कथा त्रिपथगा गंगा के विक्रमादित्य समान परम पवित्र है।"[4]

---

1. कल्हण, राजतरंगिणी, 3/166; 3/189; 3/327
2. वही, 3/125, 128, 129,130,131
3. वही, 3/290
4. वही, 3/323

डॉ0 भाऊदाजी जैसे विद्वानों ने यहाँ तक सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि कालिदास ओर मातृगुप्त अभिन्न थे; किन्तु इन असंगतियों को आधुनिक शोधों ने सर्वथा असत्य साबित कर दिया है।[1]

भारवि

संस्कृत की विकसित महाकाव्य–परम्परा का सफल प्रतिनिधित्व हमें कालिदास ओर अश्वघोष के बाद भारवि की कृति में मिलता है। चालुक्यवंशीय राजा पुलकेशी के ऐहोल में उपलब्ध एक शिलालेख में भारवि का नाम लिखा हुआ मिलता है।[2] इस शिलालेख का समय 634 ई0 है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में निर्दिष्ट तथ्यों ओर इसके प्रमाणों का विश्लेषण करने पर विद्वानों ने पता लगाया है कि भारवि पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन (615 ई0) के सभापण्डित एवं त्रावणकोर के निवासी थे।[3] अतः उनका स्थितिकाल छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध या सातवीं शताब्दी के आरम्भ में बैठता है।

भारवि की कवित्वकीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने वाला उनका एकमात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीय' है, जिसकी गणना संस्कृत की बृहत्त्रयी (किरात, माघ, नैषध) में की गयी है। कालिदास के परवर्ती प्रमुख महाकाव्यों के सम्बन्ध में, जिनका आरम्भ 'किरातार्जुनीय' से होता है, विद्वानों का कथन है कि कालिदास की कला में भावपक्ष तथा कलापक्ष का जो समन्वय पाया जाता है, पश्वाद्धावी महाकाव्यों में उसका स्थान केवल कलापक्ष ने ले लिया और

---

1. इन दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध में विस्तार के लिए देखिए– 'मातृगुप्त ओर भर्तृमेंठ' शीर्षक लेख, साप्ताहिक धारा, 7 जुलाई 1957
2. येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
   स विजयतां कविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।। – ऐहोल शिलालेख
3. एन0सी0 चटर्जी, होम ऑफ भारवि, प्रोसीडिंग्स ऑफ ओरियण्टल कान्फ्रेस 1944; डॉ0 व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 119

इसलिए उनमें महाकाव्यत्व नाममात्र के लिए रह गया है।[1]

फिर भी भारवि का महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है। उनके महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है। व्याकरण के नियमों के साथ–साथ काव्य–नियमों का ऐसा सुन्दर निर्वाह कम काव्यों में दिखायी देता है। कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व–दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारिव ने वीररस का बड़ा हृदयग्राही चित्रण ओर अलंकृत काव्यशैली का सफल वर्णन किया है। 'अर्थ–गोरव' भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है।

भट्टि

महाकाव्यों के क्षेत्र में भारवि के बाद भट्टि का क्रम आता है। महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य 'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' की रचना सौराष्ट्र की वैभवशाली नगरी वलभी के नरेश श्रीधरसेन के राज्यकाल में की थी। अपने महाकाव्य ग्रन्थ की पुष्पिका में उन्होंने अपने आश्रयदाता श्रीधरसेन को बड़ा प्रजावत्सल ओर उन्हीं के आश्रय मे अपने काव्यग्रन्थ की रचना का उल्लेख किया है।[2]

उपलब्ध शिलालेखों मे श्रीधरसेन के नाम से वलभी मे चार राजाओं का होना पाया जाता है, जिनमें एक शिलालेख 326 वि० का लिखा हुआ मिलता है।[3] इससे ज्ञात होता है कि वलभी–राज्यकाल का आरम्भ इसी समय हुआ। द्वितीय श्रीधरसेन के नाम से उपलब्ध एक शिलालेख में भट्टि नामक किसी विद्वान् को भूमिदान करने का वर्णन है। निश्चय ही यही श्रीधरसेन भट्टि के आश्रयदाता एवं प्रशंसक थे, जिनका समय छठीं शताब्दी

1. डा० व्यास; संस्कृत कवि–दर्शन, पृ० 117
2. काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
   कीर्तिरतो भवन्तान्नृपस्य तस्य क्षेमकरः क्षिपतो यतः प्रजानाम्।। –रावणवध, 22/35
3. दि कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भण्डारकर, वाल्यूम, पृ० 228

का उत्तरार्द्ध या सातवीं शताब्दी का आरम्भ था, और जिसको भट्टिकाव्य का स्थितिकाल भी माना जाना चाहिए।[1]

कुछ समय पूर्व मन्दसौर–प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि से भट्टिकवि का सम्बन्ध जोड़ कर उनको गुप्तकालीन सिद्ध किया गया था एंव 'भर्तृ' प्राकृत रूप की कल्पना कर भर्तृहरि ओर भट्टिकवि को अभिन्न बताया गया था; किन्तु इन भ्रमपूर्ण धारणाओं का अब सर्वथा निराकरण हो चुका है।[2] डॉ0 हलट्स ने इन भ्रान्तियों का भरपूर विरोध किया है।[3] कुछ इतिहासकारों का अभिमत है कि भट्टिकवि वलभीसेन श्रीधरसन द्वितीय के राजकुमारों के गुरू थे ओर इन्हीं राजपुत्रों की शिक्षा के लिए भट्टिकवि ने काव्यमयी भाषा में अपने इस व्याकरणपरक महाकाव्य की रचना की थी।[4]

अपने इस विलक्षण ग्रन्थ की विशेषताओं के बारे में महाकवि ने स्वयं कहा है कि 'मेरा यह प्रबन्ध वैयाकरण के लिए तो दीपक के समान है; किन्तु दूसरों के लिए अन्धे के हाथ के आरसी जैसा है।[5] इसका कारण यह है कि काव्य–रसिकों की अपेक्षा व्याकरप्रेमियों के लिए 'भट्टिकाव्य' की उपयोगिता अधिक है। यदि कहा जाय कि काव्य की सुकोमल प्रकृत को व्याकरण के निर्मम हाथों से इस काव्य में ऐसा मसल दिया गया है कि वह महाकाव्य की जगह व्याकरण–ग्रन्थ ही बन गया, तो अनुचित न होगा।

---

1. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग 1, पृ0 106 (1968)
2. कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 175–177 तथा जे0आर0ए0 एस0, पृ0 395–397 (1904) पृ0 435 (1809)
3. एपिग्राफिया इण्डिका, पृ0 12
4. डॉ0 व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 142
5. दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
   हस्तादर्श इवान्धानां भवेद्व्याकरणादृते।।

महाकवि कालिदास से लेकर भट्टि तक की परम्परा की विशेषताओं एवं विभिन्नताओं का विश्लेषण करते हुए डॉ० व्यास ने लिखा है कि भारवि में कालिदासोत्ता काव्य की पाण्डित्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति ओर कलात्मक सौष्ठव का एक पक्ष दिखायी देता है, भट्टि में दूसरा । भरवि मूलतः कवि है, जो अपनी कविता को पण्डितों की अभिरूचि के अनुरूप सजाकर लाते हैं; भट्टि मूलतः वैयाकंरण तथा अलकांरशास्त्री हैं, जो व्याकरण ओर अलंकारशास्त्र के सिद्धान्तों को व्युत्पित्सु सुकुमारमति राजकुमारों तथा काव्य–मार्ग के भावी पथिकों के लिए काव्य के बहाने निबद्ध करते हैं। भारवि तथा भट्टि के काव्यों का लक्ष भिन्न–भिन्न हैं। इनके लक्ष्य में ठीक वही भेद है, जो कालिदास तथा अश्वघोष में। कालिदास रसवादी कवि है।, तो भारवि कलावादी कवि; अश्वघोष दार्शनकि उपदेशवादी कवि हैं, तो भट्टि व्याकरणशास्त्रोपदेशी कवि।[1]

कुमारदास

कुमारदास भट्टि के अनुवर्ती महाकवि हैं। उनके स्थितिकाल का अब तक प्रामणिक निराकरण न हो सकने के कारण उन्हें महाकवि माघ के आस–पास रखा जा सकता है। सिंहल की अनुश्रुति के अनुसार सिंहल में नौ वर्षो (517–526ई0) तक राज्य करने के उपरान्त राजा मौग्गलान कुमारदास ने कालिदास की चिता पर आत्मघात किया। किंवदन्ती यह भी है कि कुमारदास के निमन्त्रण पर कालिदास सिंहल गये थे; किन्तु इन अनुश्रुतियों का ऐतिहासिक मूल्यांकन अभी विवादास्पद है। इनका सम्भावित स्थितिकाल सातवीं–आठवीं शताब्दी माना जा सकता है। इन्होंने 25 सर्गो के 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसके अब 15 सर्ग ही उपलब्ध हैं। इस काव्य मे राम–कथा का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण है।

---

1. डॉ० व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 140

कुमारदास के सम्बन्ध में राजशेखर (नवम शताब्दी) की एक श्लेषोक्ति है कि 'रघुवंश' की विद्यमानता में 'जानकीहरण' करने की कुशलता या तो रावण में ही थी, या कुमारदास में देखी गयी।[1]

माघ

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालों मे महाकवि माघ का नाम आता है।

माघ के सम्बन्ध में उनके महाकाव्य से हमें इतना ही विदित होता है कि उनके पिता का नाम दत्तक सर्वाश्रय था। उनके पितामह सुप्रभदेव, वर्मलात नामक किसी राजा के मन्त्री थे;[2] सम्भवतः वे वलभीनरेश थे। ये जाति के श्रीमाली ब्राह्मण थे।

'भोजप्रबन्ध' एवं 'प्रबन्धचिन्तामणि' आदि ग्रन्थों में माघ को ध् ारानरेश भोज का परममित्र तथा राजकवि बताया गया है, जो उक्त ग्रन्थों की अप्रामाणिकता के कारण विश्वसनीय नहीं है। माघ की पूर्वसीमा का हवाला 'शिशुपाल' की एक श्लोक देता है, जिसमें श्लेषोक्ति द्वारा राजनीति की तुलना 'शब्द–विद्याा' (व्याकरण) से की गयी है।[3] माघ–काव्य के टीकाकरण मल्लिनाथ और वल्लभदेव ने उक्त श्लोक से यह आशय निकाला है कि उसका संकेत 'काशिकावृत्ति' एवं 'न्यास' नामक व्याकरणग्रन्थों की ओर है। 'कशिकांवृत्ति' की रचना वामन एंव जयादित्य ने 650 ई0 मे की। इस दृष्टि से माघ की समयस्थिति इसके बाद होनी चाहिए। दूसरे

---

1. जानकी कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
   कविः कुमारदाश्व रावणश्व यदि क्षर्मा।।
2. सर्वाधिकारी सुकृताधिकार......................कविवंशवर्णन1।
3. अनुत्सूत्रपदन्यासा सदवृत्तिः सन्निबन्धना।
   शब्दविद्येव नो भति राजनीतिरपस्पशा।। 2/112।

'न्यास' नामक व्याकरणग्रन्थ को कुछ विद्वानों ने जिनेन्द्रबुद्धि विरचित 'काशिकावृत्तिन्यास' से माना है, जिसकी रचना सातवीं शताब्दी मे हुई।[1] किन्तु जिनेन्द्रबुद्धिकृत 'न्यास' नामक टीका से भी पूर्व एक न्यासग्रन्थ का उल्लेख बाण ने किया है।[2] काणे महोदय भी इस न्यासग्रन्थ को माघ द्वारा निर्दिष्ट मानते हैं और माघ को जिनेन्द्रबुद्धि का पूर्ववर्ती मानते हैं।[3]

माघ का स्थितिकाल आठवीं शताब्दी से पहले है। इस सम्बन्ध में पहला प्रमाण तो राष्ट्रकूटों के राजा नृप तुंग (814 ई0) द्वारा विरचित कन्नड़–भाषा के ग्रन्थ श्रकविराजमार्ग' मे है।[4] सोमदेव के 'यशस्तिलकचम्पू' (959) में माघ का नाम उल्लिखित है।[5] इसी भाँति 'ध्वन्यालोक' (850ई0) मे भी 'शिशुपालवध' के दो श्लोक उद्धत हैं। इसके अतिरिक्तमाघ के पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा श्रीवर्मल का 625 ई0 का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है। श्रीवर्मल और वर्मलात एक ही थे।[6]

इन सभी प्रमाणों से विदित है कि महाकवि माघ का स्थितिकाल 650–700 ई0 के बीच था। वे भट्टि के लगभग 50 वर्ष बाद 675 ई0 में हुए।[8]

महाकवि माघ की कवित्व–कीर्ति का अमर स्मारक उनका

---

1. इण्डियन एण्टक्वेरी 1912, पृ0 235; जे0बी0बी0आर0ए0एस0, वाल्यूम 13, पृ0 18.
2. कृतगुरूपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि– हर्षचरित
3. काणे, हिस्ट्री ऑफ अलंकार लिटरेचर, पृ0 36.
4. पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
5. ध्वन्यालोक, 3/53, 5/26
6. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 108
7. पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
8. डॉ0 व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 163

'शिशुपालवध' या 'माघकाव्य' है। माघ शब्दार्थवादी कवि थे।[1] उनकी इस महाकाव्यकृति के अध्ययन से पूर्णतया विदित होता है कि माघ व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्धन्याय, वेद, पुराण, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र और संगीत आदि अनेक विषयों मे पारंगत थे।[2]

माघ के कवित्व में कालिदास के भाव, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी की कला और भट्टि की व्याकरणपरक पाण्डित्यशैली– सभी का सामंजस्य है; वैसे इनमें स किसी भी एक पक्ष का पूर्ण निर्वाह माघ ने नहीं किया है। तुलनात्मक दृष्टि से, एक पग आगे बढ़कर श्रीहर्ष को भी साथ ले लिया जाय तो कहा जायगा कि कालिदास के बाद काव्य के क्षेत्र मे जिन सुन्दर एवं सजीव भावों का समावेश माघ की कविता में हैं, वे भारवि, भट्टि, श्रीहर्ष और दण्डी के काव्यों मे उतनी सजगता से दर्शित नहीं हुए हैं।[3]

रत्नाकर

महाकाव्यों की उन्नत प्रणयन–परम्परा मे महाकवि माघ के बाद रत्नाकर का स्थान आता है; किन्तु रत्नाकर की कविख्याति पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा कुछ धुंधली प्रतीत होती है। रत्नाकर काश्मीरी थे। उनके पिता का नाम अमृतभानु था। रत्नाकर काश्मीरदेशीय 'बालबृहस्पति' का विरूद धारण करने वाले नरपति चिप्पट जयापीड (779–813 ई0) के सभापण्डित थे।[4] काश्मीर के विद्याप्रेमी एवं विद्वत्सेवी राजाओं मे जयापीड

---

1. शिशुपालवध, 2/86
2. डॉ0 व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन, पृ0 175.
3. अधिशासी अधिकारी, नगरपालिका श्रीमाल (मीनमाल) की ओर से प्रकाशित एवं प्रचारित 17 अप्रैल 1958 के 1171 म्प। 58 संख्यक एक परिपत्र से ज्ञात हुआ है कि वहाँ की सरकार महाकवि माघ के सम्बन्ध मे एक प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहती है। यदि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका तो संस्कृत–साहित्य की दिशा में यह महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध होगा।
4. कल्हण, राजतरंगिणी, 4/486.

का स्मरणीय स्थान है। विद्वत्प्रेमी राजाओं मे जयापीड का स्मरणीय स्थान है। 'राजतरंगिणी' मे लिखा हुआ है कि जिस प्रकार गुप्त हुई वितस्ता नदी को महर्षि कश्यप् ने फिर से काश्मीर में प्रकट किया था, उसी प्रकार सम्पूर्ण विधाओं के उद्भवस्थल उस काशमीर देश में विलुपतप्राय विधाओं को जयापीड राजा ने पुरूज्जीवित किया था। उनकी सतुति–सम्बन्धी एक श्लेषोक्ति मे कहा गया है कि अत्यन्त कृतार्थ तथा सद्गुणों को बढ़ाने वाले श्री जयपीड महाराज एवं कृत्य–प्रत्ययों का विधान करने वाले तथा गुणवृद्धि के विधायक महामुनि पाणिनि में कौन–सा अन्तर है?[1]

रत्नाकर के विपुल ज्ञान तथा गुणग्राही आश्रयदाता के साथ–साथ दीर्घ आयु भी प्राप्त की थी। उनकी कवित्वकीर्ति का प्रकाश महाराजा अवन्तिवर्मा (885–884 ई0) के समय में हुआ; जिसकी सूचना इतिहासकार कल्हण देते हैं।[2] अपने महाकाव्य का प्रणयन इन्होंने अवन्तिवर्मा के ही समय में किया।[3] इनके महाकाव्य का नाम 'हरविजय' है। इसमें 50 सर्ग एवं 4,320 के लगभग श्लोक हैं। संस्कृत के महाकाव्यों में सर्वाधिक बृहत्काय होने से इस महाग्रन्थ का अपना विशिष्ट स्थान है। महाकवि माघ के व्यक्तित्व को रत्नाकर की यह कृति एक परोक्ष चुनौती थी। बृहत्काय की अद्भुत विशेषताएं समेटे हुए है। इसमे शैवदर्शन, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, इतिहास, पुराण, नाट्य, संगीत, अलंकारशास्त्र और चित्रकाव्य प्रभृति अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है।[4] अपने इस प्रबन्ध–ग्रन्थ के सम्बन्ध में महाकवि का यह कहना है कि 'वह महाकवियों का प्रणम्य,

---

1. नितांत कृतकृत्यस्य गुणवृद्धिविधायिनः।
   श्रीजयपीडदेवस्य पाणिनेश्व किमन्तरम्? राजतंरगिणी, 4/635
2. मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
   प्रथां रत्नाकरश्वगात्सामग्राज्येऽवंतिवर्मणः।। वही, 5/39
3. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 11
4. सी0 श्रीवर्ममूर्ति, आर्ट टिट–विट्स फ्रामरत्नाकर्स 'हरविजय', कृष्णास्वामी आयंगर का0 वाल्यूम, पृ0 425–435.

बालकवि का निर्देशक और कवि को महाकवि की श्रेणी मे पहुंचा देने वाला महाग्रन्थ है[1]—कदाचित् उसकी अहम्मन्यता का विज्ञापन न होकर ग्रन्थ की वास्तविकता का परिचय देता है।

शिवस्वामी

काश्मीर के ही दूसरे महाकवि शिवस्वामी ने 'कप्फिणाभ्युदय' नामक महाकाव्य का निर्माण किया; इनके पिता का नाम भट्टार्कस्वामी था। ये शैवमतावलम्बी थे। 'राजतरंगिणी' के पूर्वोक्त निर्देश के अनुसार शिवस्वामी, रत्नाकर के ही आस—पास और काश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के राज्यश्रित महाकवि सिद्ध होते हैं।[2] अतः इनका स्थितिकाल नवम शताब्दी का आरम्भ है। इनके महाकाव्य का कथानक बौद्धों के अवदानों से एवं उसका कथा—शिल्प भारवि, माघ की काव्यशैली से प्रभावित है।[3]

अभिनन्द

इसी समय काश्मीर मे एक तीसरे महाकवि अभिनन्द हुए जिनकी काव्यप्रतिभा बिखरे हुए उद्धरणों के रूप में आज जीवित है। काश्मीर के शतानन्द के पुत्र अभिनन्द ने 36 सर्गो में एक 'रामचरित' महाकाव्य लिखा था, जिसका उल्लेख भोज (1000ई0) और महिमभट्ट (1100) ने किया है। इस दृष्टि से अभिनन्द का स्थितिकाल नवम शताब्दी निर्धारित किया जाना चाहिए।[4]

---

1. महाकर्वेः प्रतिज्ञां श्रृणुत कृत—प्रणयों मम प्रबंधे।
   अपि शिशुरकविः कविः प्रभवात् भवत्ति कविश्व महाकविः क्रमेण।।—हरविजय
2. कल्हण, राजतरंगिणी, 5/39
3. पंजाब विश्वविद्यालय सीरीज सं0 26, 1937 में लाहौर से प्रकाशित
4. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 111

शंकुक

इसी युग में काश्मीर मे एक शंकुक नामक महाकवि भी हुए। महाकवि शंकुक मम्मट और उत्पलक (900 ई0) दोनों भाइयों के समकालीन विद्वान् थे। इन दोनों भाइयों के महायुद्ध के वर्णन मे 'विद्वन्मानससिन्धु' ख्यात से विभूषित महाकवि शंकुक ने 'भुवनाभ्युदय' महाकाव्य की रचना की थी।[1]

क्षेमेन्द्र

महाकाव्यों के क्षेत्र में काश्मीरदेशीय कवि और काव्यशास्त्री क्षेमेन्द्र के 'दशावतारचरित' का उल्लेखनीय स्थान है। क्षेमेन्द्र ने स्वयं को 'व्यासदास' लिखा है।[2] इसके कदाचित् दो कारण है : प्रथम तो यह कि इन्होंने महामति भगवान् व्यास की भाँति अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और दूसरे इनकी कृतियों की यह खास विशेषता रही है कि उनमें नीति एंव शिक्षापरक लोक व्यवहारोंपयोगी विचारों की प्रधानता ही सर्वत्र अवलोकित है।

काश्मीर के तत्कालीन ख्यातिप्राप्त काव्यशास्त्री विद्वान अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र के गुरू थे।[3] काश्मीर के राद्वय–अनन्त (1028–1063 ई0) तथा लश (1063–1089 ई0) के राज्यकाल में क्षेमेन्द्र वर्तमान थे। अतः इनका स्थितिकाल 11वीं शताब्दी है।

मंखक

क्षेमेन्द्र के ही समकालीन एंव एकदेशीय महाकवि मंखक हुए। प्रसिद्व काव्यशास्त्री रूय्यक इनके गुरू थे और ये दोनों (गुरू–शिष्य) काश्मीर के राजा जयसिंह (1129–1150 ई0) के सभापण्डित थे। इनके महाकाव्य का नाम 'श्रीकण्ठचरित' है। इस काव्यग्रन्थ के वर्णन बड़े

---

1. कल्हण, राजतरंगिणी, 4/705
2. दशावतारचरित, 10/41
3. क्षेमेन्द्र, बृहत्कथामंजरी, 19/37

सजीव एवं रोचक है। इसके सुन्दर पद–विन्यास और भावों की कोमलता देखते ही बनती है।

हरिशचन्द्र

मंखक के बाद महाकाव्यों के क्षेत्र में महाकवि हरिश्चन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। संस्कृत–साहित्य मे हरिशचन्द्र के नाम के अनेक ग्रन्थकार हुए हैं। एक हरिशचन्द्र का उल्लेख बाण के 'हर्षचरित' में हुआ है;[1] किन्तु ये काव्यकार न होकर गद्यकार थे। एक हरिशचन्द्र ने 'जीवधरचम्पू' की रचना नवम शताब्दी में की थी। एक तीसरे हरिशचन्द्र 'चरकसंहिता' नामक आयुर्वेद–ग्रन्थ के टीकाकार या संस्कर्ता हुए, जो साहसांक नामक राजा के प्रधान वैद्य के रूप में विख्यात थे। 'कर्पूरमंजरी' में भी एक हरिश्चन्द्र का नाम आता है।[2] एक हरिशचन्द्र वे हुए, जिनका उल्लेख वाक्पतिराज (800 ई0) ने भास, कालिदास और सुबन्धु की कोटि में किया है।[3] कुछ विद्वान प्रयाग की अशोकप्रशस्ति के लेखक हरिषेण से हरिशचन्द्र की एकता स्थापित करते हैं।[4] हरिशचन्द्र नामधारी इन सभी व्यक्तियों का हमारे अभिप्रेत जैन महाकवि हरिशचन्द्र से कोई समानता अथवा एकता का सम्बन्ध नहीं है।

जैन महाकवि हरिशचन्द्र के सम्बन्ध मे इतना तो निश्चित–सा है कि ये नोमकवंशीय कायस्थ जाति के थे और इनके पिता का नाम

---

1 बाणः पदबन्धीज्जवली हारी कृतवर्णकस्थितिः।
भट्टारहरिशचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।।– हर्षचरित

2. क्षेमेन्द्र, कर्पूरमंजरी–विदूषकः – उज्जुअं एव्व ता किं ण भणह, अम्हाणं चंडिआ, हरिअंद णंदिअंद कोट्टिसहालप्पहुदीणं पि पुरदो सुकइ त्ति (प्रथम जवनिका)।

3. वाक्पतिराज, गौडवहो–
भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे ज जस्स रहुआरे।
सोबंधवे अ वंधम्मि अ आणंदो।।

4. इण्डियन कल्चर, वाल्यूम 8, पृ0 208

आर्द्रदेव एवं माता का नाम रथ्यादेवी था।[1] इन्होंने 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य लिखा, जिसका जैन–साहित्य मे वही आदर है, जो संस्कृत में 'माघकाव्य' और 'नैषधकाव्य' का है।[2] जैन–साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् श्री नाथूराम प्रेमी का कथन है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' के कर्ता का नाम हरिश्चन्द्र न होकर हरिचन्द्र था। वे कायस्थ–कुलात्पन्न थे एंव उनके पिता आर्द्रदेव सम्भवतः राज्य कर्मचारी थे।[3]

इनके इस महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति 1287 वि0 की लिखी हुई है। वाग्भटकृत 'नेमिनिर्वाण' काव्य पर इसकी स्पष्ट छाप है।[4] इस दृष्टि से इतिहासकारों ने इनका स्थितिकाल 11वीं शताब्दी निर्धारित किया है।[5]

हेमचन्द्र

12वीं शताब्दी मे रचित कुछ कम प्रसिद्ध महाकाव्यों में हेमचन्द्र, माधवभट्ट, चण्डकवि और बिल्वमंगल आदि के ग्रन्थों की प्रासंगिक चर्चा उल्लेखनीय है। हेमचन्द्र (1088–1172 ई0) अनहिलनाद (गुजरात) के राजा जयसिंह और उनके उत्तरधिकारी कुमारपाल के आश्रित कवि थे। उन्होंने 'द्वयाश्रयकाव्य'[6] ओर 'त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित' नामक दो महाकाव्यों की रचना की।[7]

चालुक्यनरेश सिद्धराज जयसिंह (1092–1143ई0) की आज्ञा पर हेमचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धहेम' का निर्माण किया था। डॉ0

---

1. उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 148,
2. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ0 566 (द्वितीय संस्करण 1956)
3. वहीं, क्रमशः
4. जैनहितैषी (पत्रिका) भाग 15, अंक 3–4
5. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ0 329 (1956) तथा म0म0 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 2, पृ0 329
6. संस्कृत सीरीज बम्बई से सं0 60, 69, 76 में प्रकाशित
7. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 114–115

जैकोबी और डॉ0 बूलर ने इनकी जीवनी लिखी है,[1] जिससे विदित होता है कि इनका जन्म धुंधक (अहमदाबाद) में 1088 ई0 मे हुआ था। इनका जन्म का नाम चांगदेव था। जब ये 1098 ई0 में जैनसाधु हुए तब इनका नाम सोमदेव रखा गया और उसके बाद वि0 1166 (1111ई0) में इनका हेमचन्द्र नामकरण हुआ। ये वज्रशाखानुयायी देवचन्द्र के शिष्य थे। इनके 'त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित' से प्रकट होता है कि ये चालुक्य कुमारपाल राजा के बड़े श्रद्धालु थे।[2] इस राजा का राज्यकाल 1099–1130 वि0 (1142–1173 ई0) था।[3] इन्हीं के समय हेमचन्द्र का स्वर्गवास हुआ।[4]

जैन आचार्य हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित' एक विशालकाय ग्रन्थ है। उसका कथाशिल्प 'महाभारत' की तरह है। उसमें काव्यत्मकता भी अधिक है। हेमचन्द्र ने उसको महाकाव्य कहा है। उसकी संवादशैली, उसके लोकतत्वों और उसमे अवान्तर कथाओं का समावेश उसकी पौराणिक शेली के महाकाव्यों की कोटि मे ले जाते हैं। याकोबी महोदय ने भी उसको रामायण–महाभारत की शैली में रचे गये एक जैन महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया है।[5]

माधवभट्ट

कविराज माधवभट्ट अवन्तपुरी के कदम्ब राजा कामदेव (1182–1197 ई0) के सभापण्डित थे। 'कविराज' इनकी राजसभा से उपलब्ध सम्मानसूचक ख्याति थी। इन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' के कथानक के आधार पर 13 सर्गो का एक महाकाव्य 'राघवपाण्डवीय' लिखा, जिसकी परम्परा मे आगे हरिदत्तसूरिकृत 'राघवनैषधीय', चिदम्बरकृत 'राघवपाण्डवीययादवीय',

---

1. ऍन्साइक्लोपीडिया ऑर्प रिलीजन, एथिक्स, ज़िल्द 6, पृ0 591
2. काव्यनुशासन (निर्णयसागर प्रेस का संस्करण) की भूमिका, पृ0 2–3
3. वही, पृ0 3,5
4. कन्हैयालाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग 1, पृ0 157 (1938)
5. डॉ0 जैकोबी, स्थविरावलीचरित, इण्ट्रोडक्शन, पृ0 24 (दूसरा संस्करण)

विद्यामाधवकृत 'पार्वती–रूक्मणीय' ओर वेंकटाध्वरिकृत 'यादवराघ्वीय' आदि अनेक ग्रन्थो का निर्माण हुआ।[1] 'पारिजातहरण' नामक एक दूसरे महाकाव्य का कर्ता भी माधवभट्ट को बताया गया है।[2]

चण्डकविः बिल्वमंगल

12वीं शताब्दी मे ही चण्डकवि ने 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य लिखा, जो केवल आठ सर्गो मे ही अपूर्ण उपलब्ध होता है।[3] जोनराज ने इस ग्रन्थ पर टीका लिखी है। 12वीं शताब्दी मे वर्तमान मालावारवास्तव्य श्रीकृष्ण लीलांशुक या बिल्वमंगल नामक कवि ने दशन, व्याकरण, काव्य, काव्यशास्त्र आदि विषयों पर श्रेष्ठतम कृतियों का निर्माण किया। इन्होंने 12 सर्गो की एक महाकाव्यकृति पर 'श्रीचिह्नकाव्य' की भी रचना की थी।[4]

वाग्भट

12वीं शताब्दी में ही जैनकवि वाग्भट ने 'नेमिनिर्वाण' महाकाव्य लिखा। वाग्भट नामक चार ग्रन्थकारों का उल्लेख श्रद्धेय श्रीनाथूरामजी प्रेमी ने अपने इतिहास–गन्थ में किया है।[5] ये चार वाग्भट हैं क्रमशः 'अष्टांगहृदय' के कर्ता, 'नेमिनिर्वाण' के कर्ता, 'वाग्भटालंकार' के कता और 'काव्यानुशासन' के कर्ता। जैन कवियों के प्रसंग मे इन चारों का उल्लेख किया जा चुका है।

'नेमिनिर्वाण महाकाव्य के 15 सर्गो मे जैन तीर्थकर भगवान्

---

1. चन्द्रशेखर पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ0 114–115
2. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 115
3. म0म0 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा द्वारा अजमेर से प्रकाशित
4. वी0 वरचाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 113
5. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य का इतिहास, पृ0 329 (1956)

नेमिनाथ का चरित वर्णित है। इस ग्रन्थ की कुछ हस्तलिखित प्रतियो की पुष्पिका से विदित होता है कि उसके कर्ता वाग्भट प्राग्वाट या परिवाटवंशीय छाहयु (या बाहड़) के पुत्र थे ओर अहिच्छत्रपुर मे पैदा हुए थे।[1] यह अहिच्छत्रपुर वर्तमान नागोद का ही पुराना नाम था।[2] 'वाग्भटालंकार' मे 'नेमिनिर्वाण' के कई उद्धरण है। 'वाग्भटालंकार' की रचना 1179 वि0 मे हो चुकी थी। इसलिए 'नेमिनिर्वाण' के रचियता वाग्भट का समय इससे पूर्व होना चाहिए। कुछ इतिहासकारों ने इन्हे हेमचन्द्र का समकालीन माधुर्य एवं प्रसादगुणोपेत कविता का रचयिता बताया है;[3] किन्तु निश्चित रूप से इनकी पूर्वावधि निर्धारित करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण हमारे पास नहीं है। इस महाकाव्य पर भट्टारक ज्ञानभूषण की एक 'पंजिका' टीका भी उपलब्ध है।

श्रीहर्ष

12वीं शताब्दी मे लिखे गये महाकाव्यो की परम्परा का अवसान श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' मे जाकर होता है। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में उसके रचयिता ने आत्मपरिचय–सम्बन्धी जो विवरण दिया है, उससे विदित होता है कि श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहरि ओर माता का नाम मामल्लदेवी था।[4] इनके काव्य से यह भी विदित होता है कि ये कान्यकुब्जेश्वर के सभा–पण्डित ओर अतिशय सम्मान के पात्र थे, क्योंकि महाराज कान्यकुब्जेश्वर प्रतिदिन इन्हें अपने हाथ से आसन और पान के दो बीड़े दिया करते थे।[5]

---

1. जैन हितैषी, भाग 11, अंक 7–8 तथा भाग 15, अंक 3–4
2. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग 2 पृ0 329
3. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 146
4. श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं।
   श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लवदेवी च यम्।। नैषधचरित, प्रतिसंगति
5. ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।। नैषधचरित, 22/153

श्रीहर्ष कान्यकुब्जेश्वर विजयचन्द्र और जयचन्द्र दोनों के सम्मानित राजकवि रहे हैं। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि इन्हें प्रतिदिन जो सम्मान दिया जाता था। उसके पात्र विजयचन्द्र थे;[1] किन्तु जयचन्द्र के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध एवं चिरन्तन साथ होने के कारण इस सम्मान का सम्बन्ध विजयचन्द्र से न होकर जयचन्द्र के साथ ठीक बैठता है।[2] ये कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र वही इतिहासप्रसिद्ध जयचन्द्र थे, जिनकी पुत्री संयागिता का अंपहरण वीरवर पृथ्वीराज ने किया था और जिसकी यशस्वी कथा के परिचायक 'पृथ्वीराजविजय' ग्रन्थ का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। जयचन्द्र का स्थितिकाल (1156–1193 ई0) ही श्रीहर्ष का स्थितिकाल है।

ऐसी अनुश्रुति है कि अपने पिता के विजेता 'न्यायकुसुमांजकिल' के रचयिता सुप्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य को श्रीहर्ष ने शास्त्रार्थ मे पराजित कर पिता के अपमान का बदला लिया था। इनके महाकाव्य में इस विषय का संकेत मिलता है।[3] ऐसी भी एक अनुश्रुति है कि अलंकारशास्त्री मम्मट इनके मामा थे।

श्रीहर्ष के महाकाव्य का नाम 'नैषधचरित' है। इस महाकाव्य के अध्ययन से विदित होता है कि विभिन्न विषयों पर श्रीहर्ष ने आठ ग्रन्थ ओर लिखे, जिसके नाम है। : 'स्थैर्यविचारप्रकरण'[4], 'विजयप्रशस्ति'[5], 'खण्डनखण्डखाद्य'[6],

---

1. डॉ0 व्यास, संस्कृत कवि–दर्शन
2. पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
3. श्रीहर्ष, नैषधचरित, 14/88, 89,90
4. वही, 4
5. वही, 5/138
6. वही, 6/113

: 'गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति'[1], 'अर्णववर्णन'[2], 'छिन्दप्रशस्ति'[3], 'शिवभक्तिसिद्धि'[4], और 'नवहसांकचरित',–चम्पू।[5],

'नैषधचरित' श्रीहर्ष के उत्कृष्ट काव्य–कौशल का ज्वलन्त प्रमाण है। माघ के बाद रचे गये ग्रन्थों की दो श्रेणियां हैं: चित्रकाव्यों की प्रथम श्रेणी और चरितकाव्यों की द्वितीय श्रेणी। चित्रकाव्यों की प्रथम श्रेणी मे 'नलोदय', 'युधिष्ठिरविजय', 'राघवपाण्डवीय', और 'राघवयादवीय' प्रमुख है। इसी प्रकार चरितकाव्यों की द्वितीय श्रेणी मे वाक्पतिराज का 'गउडवहो', मंखक का 'श्रीकण्ठचरित', विल्हण का 'विक्रमांगदेवचरित' ओर पद्मगुप्त का 'नवसाहसांकचरित' उललेखनीय है। महाकवि श्रीहर्ष का 'नैषधचरित' द्वितीय श्रेणी के चरितकाव्यों मे शीर्षस्थानीय ग्रन्थ है।

श्रृंगार की विभिन्न दशाओं के चित्रण मे श्रीहर्ष की कवित्व–प्रतिभा चरमसीमा को स्पर्श करती है। उनके काव्ययश का अवलोकन कुछ संकुचित दृष्टि के आलोचकों से न हो सका। इसी प्रकार उनकी उत्कट श्रृंगार – भावना को लक्ष्य करके कुछ विद्वानों ने उसमे अश्लीलता का दोषारोपण किया।[6] किन्तु उनके काव्य को पढ़कर उन पर लगायी गयी ये आपत्तियाँ निरर्थक प्रतीत होती हैं।

श्रीहर्ष की पद–रचना , भाव–विन्यास, कल्पना–चातुर्य और प्रकृति–पर्यवेक्षरण आदि सभी विषयों मे एक मौलिक सूझ–बूझ दिखायी देती है। प्रणय पक्ष का ऐसा समर्थ, संयत ओर ह्दयग्राही चित्रण थोड़े ही महाकाव्यकार करने में सफलता प्राप्त कर सके हैं। इस महाकाव्य को, उसकी अनेक विशेषताओं के कारण, 'वृहत्त्रयी' मे रखा गया हैं 'वृहत्त्रयी'

1. वही, 7/110
2. वही, 9/160
3. वही, 17/222
4. वही, 18/154
5. वही, 22/151
6. कीथ, ए हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर, पृ0 140 तथा दासगुप्ता, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 330

में रखा गया पहला ग्रन्थ भारवि का 'किरातार्जुनीय', दूसरा माघ का 'शिशुपालवध' और तीसरा श्रीहर्ष का 'नैषधचरित' है।

शैली स्वरूप और समय की दृष्टि से

संस्कृत–साहित्य की सुदीर्घ महाकाव्य–परम्परा को शैली, स्वरूप और समय की दृष्टि से हम प्रधान तीन युगों में विभाजित कर सकते हैं। संस्कृत के महाकाव्यों का पहल उद्भव–युग कालिदास के आगमन से पहले ही पूरा हो जाता है, जिसकी दिशाएं और सम्भावनाएं 'रामायण' तथा 'महाभारत' मे पर्यवसित है। महाकवि कालिदास के उदय के साथ–साथ संस्कृत महाकाव्यों का दूसरा अभ्युत्थान–युग आरम्भ होता है, जिसकी सीमा श्रीहर्ष तक पहुंचती है। श्रीहर्ष से पूर्व और कालिदास के बाद के ये द्वादश शतक समय संस्कृत–साहित्य की अभूतपूर्व एंव आशातीत उन्नति के परिचायक है।

महाकाव्यों के निर्माण की दृष्टि से इन द्वादश शताकें के बीच यद्यपि ऐसी कृतियां भी रची गयी, जिनका महत्व बहुत ही न्यून है; किन्तु उन बहुसंख्यक उच्चतम कृतियों की गणना के बीच इन अहेतुक कृतियों की छोटाइयां सर्वथा छिप जाती है। इस दृष्टि से यह युग अच्छी कृतियों के ही निर्माण का युग माना जाता है।

संस्कृत के इतिहासकार विद्वानों एवं अध्येताओं ने इस युग का विशेष गुणगान 'मध्यकाल' के नाम से किया है। संस्कृत–साहित्य को इस सुन्दर युग की देन का श्रेय कदाचित् तत्कालीन भारत की राज–काज व्यवस्था को दिया जा सकता है। विशेषतया कुषाणयुग और गुप्तयुग के विवेकशील विद्याप्रेमी राजाओं की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से इस बीच, संस्कृत का इतना समृद्ध वागंमय निर्मित होकर हमें उपलब्ध हुआ है। साहित्य के अतिरिक्त

कला–कौशल, संस्कृति, सभ्यता आचार–विचार और धर्मकर्म के क्षेत्र में भी भारत का यह समय बहुत उन्नत रहा है।

महाकाव्यों के क्षेत्र में श्रीहर्ष के बाद इतने ऊँचे दृष्टिकोण नहीं दिखायी देते, या बहुत ही कम मात्रा मे दिखायी देते हैं, जितने कि हम इससे पूर्व देख चुके हैं। संस्कृत के महाकाव्यकारों मे जो स्फूर्ति, आत्मप्रेरणा, अतुल उत्साह ओर गति–गवेषणा की तीव्रता श्रीहर्ष के समय तक बनी रही, आगे वह क्रमशः क्षीण होती गयी। उनके बाद भी महाकाव्यों का एक बहुत बड़े पैमाने पर निर्माण होता रहा; किन्तु उनमे उतनी सर्वागीणता एवं उतना स्वाभाविक प्रवाह न आ सका। महाकाव्यों की इस परम्परा की पर्यवसिति सत्रहवीं शताब्दी मे जाकर होती है।

महाकाव्यों की इस परम्परा का विकास लगभग सत्रहवीं शताब्दी तक बना रहा। उसके बाद भी दक्षिण, उत्तर और पश्चिम (काश्मीर) मे कुछ विद्वानों का ध्यान इस दिशा में रहा अवश्य, और आज भी यह सर्वथा विलुप्त नहीं हो पाया है; किन्तु 13वीं शताब्दी के बाद इस क्षेत्र मे जो भारी गतिरोध ा और अवनति का सिलसिला शुरू हुआ, वह दूर होने की बजाय बढ़ता ही गया।

तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक के महाकाव्य–निर्माण का अध्ययन करते हुए हम देखेंगे कि उनको बनाये रखने का अधिकांश श्रेय दक्षिण के राजपरिवारों और कश्मीर के पण्डितों को है। इस बीच रची गयी कृतियाँ बहुत सारी तो हस्तलिखित पोथियों के रूप में विभिन्न ग्रन्थागारों में सुरक्षित है, जिनके सर्वांगीण अध्ययन की न तो सुविधा है और न ही उतने साधन उपलब्ध है। कुछ कृतियां नाममात्र को ही सूची–ग्रन्थों में दिखायी देती है और जो थोड़ी सी प्रकाशित भी हो चुकी है, उनका प्रचार–प्रसार सभी लोगों तक नहीं है। इसलिए बहुत सम्भव है कि देखी न जाने के कारण, इस

बीच की कुछ कृतियाँ भ्रान्ति–जनक हों; फिर भी उनके सम्बन्ध में इतिहासकार विद्वानों ने जो सूचनाएं संकलित की है, अपनी बुद्धि से पूरा परीक्षण करने पर मैं उनका सिलसिला इस प्रकार बाँध कर क्रमशः यहाँ दे रहा हूँ।

13वीं शताब्दी के महाकाव्य

पुरी के कृष्णानन्द ने 15 सर्गो मे 'सह्रदयानन्द', काश्मीरदेशीय कवि जयरथ ने 32 प्रकाशों (सर्गो) में 'हरिचरितचिन्तमणि', जैनकवि अभयदेव ने 19 सर्गो मे 'जयन्तविजय' , अमरसिंह ने 11 सर्गो में 'सुकृतसंकीर्तन' (1222 ई0) की रचना कर 13वीं शताब्दी में महाकाव्यों की परम्परा का प्रर्वतन किया। अमरसिंह, राजा वीरधवल (1220 ई0) के मन्त्री वस्तुपाल के आश्रित कवि थे। मन्त्री वस्तुपाल बड़े ही विद्वत्प्रेमी व्यक्ति थे। उन्हीं के दूसरे प्रशंसक कवि श्री बालचन्द्रसूरि ने 14 सर्गो का 'वसन्तविलास' (1240 ई0) महाकाव लिखा। राजा वीरधवल के आश्रिम कविद्वय मे सोमेश्वर ने तो 15 सर्गो मे 'सुरथोत्सव' ओर अमरचन्द्र (अमर सिंह) ने 44 सर्गो में 'बालभारत' नामक दो महाकाव्यों की रचना की।

इसी बीच चन्द्रप्रभसूरि ने 18 सर्गो मे 'पाण्वचरित' (1250 ई0), वीरनन्दि ने सर्गो में 'चन्द्रप्रभचरित' सर्वानन्द ने 7 सर्गो में 'जादूगरचरित' आदि महाकाव्य लिखे। इस अन्तिम महाकाव्य में 1256 ई0 के दुर्भिक्ष में गुजरातवासी जगद नामक लिखे। इस अन्तिम महाकाव्य में क1256 ई0 के दुर्भिक्ष में गुजरातवासी जगद नामक जैनमुनि द्वारा की गयी अकाल–पीड़ितों की सहायता का विस्तार से वर्णन है।

14वीं शताब्दी में महाकाव्य

चोहानवंशीय राजा हम्मीर की प्रशंसा में नयनचन्द्र (1310 ई0) ने 17 सर्गो में 'हम्मीरमहाकाव्य' मालावार निवासी वासुदेव ने लगभग 21 काव्य

लिखें, जिनमें 'युधिष्ठिरविजय' और 'नलोदय' प्रसिद्ध हैं। वारंगल के राजा प्रताप रूद्रदेव (1294–1335 ई0) के आश्रित कवि अगस्त्य ने लगभग 74 काव्य कृतियों का निर्माण किया था, जिनमे से आज कुछ ही उपलब्ध हैं। इनका रचा हुआ 20 सर्गो का 'बालभारत' नामक महाकाव्य अधिक प्रसिद्ध है। दाक्षिणात्य कवि वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक (1298–1369 ने संस्कृत और तमिल–भाषा में विभिन्न विषयों पर लगभग 120 ग्रन्थ लिखे थे। वे राँची के निवासी थे। राँची उन दिनों विद्धज्जनों की प्रसिद्ध नगरी मानी जाती थी। वेंकटनाथ ने 24 सर्गो का 'यादवाभ्युदय' महाकाव्य लिखा, जिस पर अप्पयदीक्षित (1600 ई0) के बाद में एक विछत्तापूर्ण टीका लिखी।

विजयनगर के बुक्क प्रथम (1343–1379 ई0 के द्वितीय पुत्र कम्पन की विदुषी पत्नी गंगादेवीकृत एक अपूर्ण महाकाव्य 'मथुराविजय' या 'वीरकंपरायचरित उपलब्ध है। गंगादेवी का समय 1380 ई0 था। इसी प्रकार साकल्यमल्ल या मल्लाचार्य ने भी 14वीं शताब्दी में रामकाव्य की परम्परा मे 'उदाराघव' नामक 18 सर्गो का एक महाकाव्य लिखा, जिसके कि सम्प्रति नौ ही सर्ग उपलब्ध है। इसका कथानक 'रामायण' से उद्धत है।[1]

15वीं शताब्दी के महाकाव्य

वत्सगोत्री कोमटि यज्वन् के पुत्र विद्यारण्य के शिष्य और अन्दकी के राजा पेद्दकोमटि वेगभूपाल (1403–1420 ई0) के आश्रित कवि वामभट्ट बाण ने 30 सर्गो में रघुनाथचरित और 8 सर्गो का 'नलाभ्युदय' दो महाकाव्य लिखे। वामनभट्ट, गद्यकार बाणभट्ट से सर्वथा पृथक व्यक्ति हुए, कुछ इतिहासकारें की भ्रान्तियों से जिनको अभिन्न रूप में पहिचाना गया थां

सुप्रसिद्ध काश्मीरी विद्वान कल्हण की 'राजतरगिणी' की परम्परा मे जोनराज (1450 ई0 और जोनराज के शिष्य श्रीवर ने 'जैनराजतरंगिणी'

1. फादर कामिल बुल्के, राककथा उद्धव और विकास, पृ0 185 (1950)

तथा प्राज्यभट्ट ने 'राजबलिपताका' आदि ग्रन्थों को लिखकर इतिहासपरक 'राजबलिपताका' आदि ग्रन्थों को लिखकर इतिहासपरक महाकाव्यों की निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया।

विजयनगर के राजाओं के आश्रित कवि राजनाथ द्वितीय 'डिंडिम कवि सार्वभौम' की उपाधि से अपने समय के स्वनामधन्य विद्वान् थे। विजयनगर के राजाओं के वीर सेनापति साल्व नरसिंह के परम मित्र थे। इस सेनापति की प्रशंसा में राजनाथ ने 1430 ई० के लगभग 13 सर्गो की एक महाकाव्य कृति 'सालवाभ्युदय' के नाम से लिख कर अपने मैत्रीभाव एवं गुणग्राहकता का परिचय दिया।

16वीं शताब्दी के महाकाव्य

विजयनगर के कवि राजनाथ द्वितीय के पौत्र राजनाथ तृतीय ने 1540 ई० के लगभग 20 सर्गो में 'अच्युतरायाभ्युदय' नामक अपना महाकाव्य विजयनगर के कृष्णदेव के भाई राजा अच्युतराय (1530–1542 ई०) की प्रशंसा में लिखा। मालावार के निवासी उत्प्रेक्षावल्लभ ने भी 39 पद्धति (अध्याय) का एक अपूर्ण 'भिक्षाटनकाव्य' नामक महाकाव्य लिखा। इनका सम्भावित स्थितिकाल सोलहवीं शताब्दी है। इसी समय मयूरगिरि के राजा नारायण शाह के आश्रित रूद्र कवि ने 1596 ई० में 20 सर्गो का एक 'राष्ट्रोढवंश' नामक बृहत् महाकाव्य लिखा। महाकवि चन्द्रशेखरकृत 20 सर्गो का महाकाव्य 'सुर्जनचरित', डॉ० चन्द्रधर शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित (1952 ई०) हो चुका है। यह महाकाव्य बूंदीनरेश राव सुर्जन पर आधारित है। चन्द्रशेखर उन्हीं के संभा–पण्डित थे।

17वीं शताब्दी के महाकाव्य

17वीं शताब्दी संस्कृत के महाकाव्य–निर्माण की अन्तिम शताब्दी है। इस शताब्दी के पूर्वापेक्षया अधिक कृतियाँ लिखी गयी है। तंजोर–नरेश

अच्युत (1577–1640 ई0) के उत्तराधिकारी राजा रघुनाथ के प्रधानमन्त्री दीक्षित के पुत्र यज्ञनारायण दीक्षित ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा मे 16 सर्गों में 'रघुनाथभूपविजय' महाकाव्य लिखा, जिसका दूसरा नाम 'साहित्यरत्नाकार' भी है। रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित के पुत्र राचूड़ामणि दीक्षित तंजोर के राजा रघुनाथ के आश्रित कवि थे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक अच्छे ग्रन्थ लिखे, जिनमें 10 सर्गो की कृति 'रूक्मिणी–कल्याण' अधिक प्रसिद्ध है। इन्हीं राजा रघुनाथ की विदुषी पत्नी रानी रामभद्रांबा ने अपने पति के पराक्रमों पर 12 सर्गो की एक कृति 'रघुनाथाभ्युदय' नाम से लिखी। इन राजा रघुनाथ को भी उच्चकोटि का कवि बताया जाता है। तंजोर के ये राजा बड़े विद्वत्सेवी एवं विद्याप्रेमी प्रतीत होते हैं। उनकी राजसभा में एक आशु कवियत्री मधुरवाणी भी रहा करती थी।

मधुरवाणी नामक एक दाक्षिणात्य कवयित्री एवं संगीतज्ञा के महाकाव्य ग्रन्थ का पता हाल ही में लगा है। यह ग्रन्थ तैलंग–भाषा में तालपत्रों पर लिखा हुआ बंगलोर में मिला है। ग्रन्थ का नाम है– 'रामायण'। इसमें 14 सर्ग ओर 1500 श्लोक है।

ग्रन्थ की पुष्पिका से पता चलता है कि मधुरवाणी तंजोर के रघुनाथ नायक (1614–1662 ई0) के दरबार में रहती थी। उसी की प्रेरणा से यह महाकाव्य लिखा गया। मधुरवाणी वीणा बजाने में अत्यन्त प्रवीण थी। संस्कृत ओर तैलंग–भाषा में कविता करने की उसमें अद्भुत प्रतिभा विद्यमान थी। वह आशु–कवयित्री भी थी। वह आधी घड़ी में 100 श्लोक अर्थात, एक मिनट में आठ श्लोकों से अधिक रच लेती थी।

'रामायण' का संस्कृतानुवाद करने के अतिरिक्ता उसने 'कुमारसम्भव' ओर 'नैषधचरित' का भी छायानुवाद किया था और चम्पू–विषयक एक

गीति–ग्रन्थ भी लिखा था। इस सभी विवरणों से विदित होता है कि मधुरवाणी 17वीं शताब्दी की विख्यात संगीतज्ञा एंव महाकवयित्री हुई।[1]

अप्पय्यदीक्षित के पौत्र नीलकण्ठ दीक्षित, मदुरा के राजा तिरुमल नायक के प्रधान सचिव, 1613 ई0 में पैदा हुए थे। वे गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेंकटेश्वर मखिन् के शिष्य थे ओर उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक उच्चकोटि के ग्रंन्थों का निर्माण किया था। उन्होंने 22 सर्गो का एक महाकाव्य 'शिवलीलावर्णन' भी लिखा। एक जैन दार्शनिक कवि मेघविजयगणि ने 1671 ई0 के लगभग 9 सर्गो का 'सप्तसन्धान' महाकाव्य लिखा। इस विभिन्न विषयों के पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ में एक साथ प्रत्येक श्लोक के सात–सात अर्थ निकलते है।, जो कि जैनों के तीर्थकर महात्माओं : वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ , नेमिनाथ, महावीर स्वामी और कृष्ण तथा बलदेव के जीवनचरित्रों पर समान रूप से घटित होते हैं। इस काव्य की प्रेरणा धनंजय, कविराज आदि के द्विसन्धान–पद्वति के काव्यों से उपलब्ध है। इन्हीं मुनीश्वर ने जैनदर्शन पर भी अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। एक दूसरे जैन विद्वान् देवविमलगणि ने 17 सर्गो में 'हीरसौभाग्य' नामक महाकाव्य 1700 ई0 में लिखा था। शाहशाह अकबर ने इन्हें 'जगद्गुरू' की उपाधि से सम्मानित किया था।

चक्र कवि ने 17वीं शताब्दी में वाल्मीकीय 'रामायण' के दाय पर एक 8 सर्गो की 'जानकीपरणिय' रचना लिखी।[2] इसी प्रकार अद्वैत नामक कविकृत 1608 ई0 की एक 'रामलिंगामृत' हस्तलिखित महाकाव्य कृति[3] ओर मोहन 1750 ई0 की एक 'रामचरित' नामक हस्तलिखित महाकाव्य

---

1. उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 328–330, मानसरोवर प्रकाशन महल, फीरोजाबाद, 1957
2. त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में प्रकाशित
3. इण्डिया ऑफिस कैटलाग, ग्रं0 सं0 3920 (लन्दन)

कृति का भी पता लगता है।[1]

इस प्रकार, वेदमन्त्रों की कवित्व–भावना से लेकर 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे उपजीव्य ग्रन्थ ओर उसके बाद महाकवि कालिदास का अभ्युत्थान युगः महाकाव्यों की परिणति की अन्तिम परिस्थितियाँ, इन सबका अध्ययन कर, संस्कृत के महाकाव्यों की इतनी विस्तृत परम्परा का परिचय समाप्त होता है। इसके बाद आगे के परिशिष्ट में इस विषय की कुछ नवीन सूचनाएं प्रस्तुत की जा रही हैं।

परिशिष्ट 1

ऐतिहासिक महाकाव्य

संस्कृत के महाकाव्यों की जिस परिणति पर्यवसिति को सत्रहवीं शताब्दी तक हम पहले दिखा चुके है। ऐतिहासिक महाकाव्यों की भी अन्तिम सीमा वही है; किन्तु इतिहास – निर्माण की दृष्टि से और असाधारण दिलचस्प विषय होने के अभिप्राय से यहाँ हम उनके सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से थोड़ा विचार करने की आवश्यकता समझ रहे हैं।

संस्कृत–साहित्य में जो भी ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध ग्रन्थ देखने को मिलते है।, उन सब में पहली बात तो यह दिखायी देती है कि उनमें ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा भाषा–सौष्ठव एंव वर्ण–वैचित्रय को प्रमुखता दी गयी है, जबकि होना इसके विपरीत चाहिए था। इन इतिहासप्रधान ग्रन्थों को लिखने वाले अधिकांश ग्रन्थकार राज्याश्रित थे, और उन सभी में कवित्वभावना तथा अपने आश्रयदाता राजाओं को सन्तुष्ट करने की धारणा थी। जो बातें आश्रयदाता राजाओं को अरूचिकर प्रतीत होती थी, वे सत्य होने पर भी काट दी जाती थी।

---

1. वही, ग्र0सं0 3917

फिर भी , इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में इतिहास विषय की महत्ता को प्राचीनकाल से ही स्वीकार किया जाने लगा था। यास्क (700 ई0 पू0) के निरूक्त' में ऋचाओं के स्पष्टीकरण के लिए ब्राह्मण–ग्रन्थों तथा प्राचीन अनार्यों की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' कहकर उल्लेख किया गया है। 'निरूक्त' से यह भी विदित होता है कि वेदार्थ के निरूपण करने वाले प्राचीनतम वेदव्याख्याकारों में एक सम्प्रदाय इतिहासकारों का भी था, जिसका 'इति ऐतिहासिकाः' कहकर बार–बार स्मरण किया गया है। 'निरूक्त' में भी पुराण और इतिहास को वेदों के समकक्ष माना गया है।[1]

देवर्षि नारद जब सनत्कुमार के पास ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये तो सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने अपी अधीत विद्याओं में इतिहास–पुराण को पंचम वेद के रूप में बताया।[2] इतिहास की आवश्यकता ओर उसके सर्वतोभावी प्रभाव का उल्लेख करते हुए आचार्य कौटिल्य (400 ई0पू0) ने कहा कि अथर्ववेद और इतिहास दोनों वेद हैं। इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र ओर अर्थशास्त्र, सभी का समावेश हो जाता है।[3] आचार्य कौटिल्य के इस मन्तव्य से पुराण–व्यतिरिक्त इतिहास के स्वतन्त्र अस्तित्व का भी पता चलता है।

संस्कृत–साहित्य में इतिहास–विषयक सामग्री प्रायः चार रूपों में उपलब्ध होती है। कुछ ग्रन्थकारों ने अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु वे ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। दूसरी प्रकार

---

1. यास्क, निरूक्त 4/6
2. छान्दोग्योपनिषद्, 7/1
3. अथर्ववेदेतिहासवेदी च वेदाः। पश्चिमं (अहर्भाग) इतिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। अर्थशास्त्र, 2/4

की ऐतिहासिक सामग्री हमें दानपत्रों , अन्तर्लेखों , प्रशस्तियों आदि में मिलती है। तीसरी प्रकार की सामग्री 'रामायण', 'महाभारत' एंव पुराण आदि महाग्रन्थों में उपलब्ध होती है और चौथी प्रकार की यथेष्ट सामग्री काव्यपरक इतिहास ग्रन्थों में संकलित हे। यहाँ हम केवल काव्यपरक इतिहास ग्रन्थों की ही चर्चा करेंगे।

ऐतिहासिक महाकाव्यों में पहला नाम पालि के वंशग्रन्थों का आता है। पालि–साहित्य मे वंश–ग्रन्थ की वही स्थिति हे, संस्कृत–साहित्य में जो स्थिति अष्टादश महापुराणों तथा 'महाभारत' एवं 'राजतरंगिणी' आदि पोराणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों की है; बल्कि संस्कृत के इन पुराण–इतिहास की कोटि में परिगणित होने वाले विपुल काव्यग्रन्थों की अपेक्षा पालि के वंशग्रन्थों में जो सामग्री संगृहीत है, उसमें अधिक संगति, अधिक स्पष्टीकरण और अधिक सत्यता दिखायी देती है। ये वंशग्रन्थ संख्या में बारह हैं; किन्तु उनमें 'दीपवंश' , 'महावंश', 'शासनवंश', और 'ग्रन्थवंश' सर्वोत्कृष्ट इतिहास है।

'दीपवंश' लंकाद्वीप की प्राचीन शासन–परम्परा को बताने वाला एकमात्र पहला ग्रन्थ है, वरन् पालि–साहित्य ओर बौद्धधर्म की विकास–परम्परा का क्रमबद्ध इतिवृत्ति जानने के लिए उसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। विद्वानों का मत है कि 'दीपवंश' में काव्यत्व गुण उतने नहीं है, जितना कि इतिहास की दृष्टि से उसका महत्त्व है।1 'महावंश', 'दीपवंश' के ही दाय को लेकर रचा गया; किन्तु उसमे अपेक्षया काव्यत्व गुण अधिक है। उसको एक विशुद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य ओर परवर्ती काव्य–महाकाव्यों का जनक भी कहा जा सकता है। 'शासनवंश' में बुद्ध–परिनिर्णाण से लेकर उन्नसवीं शताब्दी तक के बौद्धधर्म के विकास की क्रमबद्ध स्थितियों का इतिहास वर्णित है। इसी प्रकार 'ग्रन्थवंश'

---

1. मैक्समूलर, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, जिल्द 10 (1), पृ0 15 (भूमिका); रायस डेविड्स; बुद्दिस्ट इण्डिया, पृ0 274; डॉ0 गायगर : महावंश, पृ0 12–20

पालि–साहित्य के इतिहासाकार एंव पालि–साहित्य के अध्येता के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।[1]

वाणभट्ट (7वीं शतांब्दी) का 'हर्षचरित' इस विषय का उद्धरणीय ग्रन्थ है, जिसमें एक ओर तो बाण और हर्ष की जीवन–घटनाएँ और दूसरी ओर तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों, रीति–रिवाजों और राज–काज–सम्बन्धी व्यवस्थाओं का ऐतिहासिक ढंग से चित्रण किया गया है। आठवीं शताब्दी में लिखा गया कनकसेन वादिराज का 'यशोधरचरित' ऐतिहासिक एंव धार्मिक दोनों दृष्टियों से अच्छां ग्रन्थ है।

सिन्धुराज के ज्येष्ठ भ्राता राजा मुंज (970 ई0) तथा राजा भोज (1005–1054 ई0) के आश्रित कवि पद्यगुप्त या परिमल ने 18 सर्गो का महाकाव्य भोज की प्रशंसा में 'नवसाहसांकचरित' लिखा। ये कालिदास के प्रशंसक एवं उनकी शैली के अनुकर्ता होने के कारण 'परिमलकालिदास' के नाम से भी प्रख्यात है।[2] 'नवसाहसांकचरित' में काव्यशास्त्रक` नियमों के साथ–साथ ऐतिहासिक विवरणों को प्रस्तुत करने का ढंग बड़ा अच्छा और साथ साथ ऐतिहासिक विवरणों को प्रस्तुत करने का ढंग बड़ा अच्छा और साथ ही सच्चाइयों के अधिक समीप है। इसी कोटि का 18 सर्गो में दूसरा महाकाव्य जयेष्ठकलश के पुत्र विल्हण ने 1085 ई0 मे 'विक्रमांगदेवचरित' नाम से लिखा। 1050 ई0 में अध्ययन के बाद उसने अपनी जन्मभूमि काश्मीर छोड़ दी थी, ओर 1070 ई0 के लगभग वह अनहिलनाद के चालुक्यराजा त्रैलोक्यमल का दरबारी पण्डित रहा। वहाँ से कुछ समय बाद वह कल्याण के विक्रमादित्य चतुर्थ का आश्रित हुआ। इन्हीं के चरित पर इस महाकाव्य का निर्माण हुआ है।[3] इस महाकाव्य मे यद्यपि अनेक अनैतिहासिक ओर काल्पनिक घटनाओं का भी समावेश है; फिर भी उसकी मुख्य घटनाएँ और उसके मुख्य चरित विशुद्ध ऐतिहासिक है।[4]

1. उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, पृ0 576–581.
2. वी0 वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 112
3. वही, पृ0 112–13
4. डॉ0 बूलर, विक्रमांकदेवचरितम्, इण्ट्रोडक्शन, पृ0 3

इसी परम्परा में राजपुरी के राजा सोमपाल की प्रशंसा में लिखित काश्मीर के कवि जल्हण (12वीं शती) के 'सोमपालविजय' का भी उल्लेखनीय स्थान है।

ऐतिहासिक महाकाव्य के क्षेत्र में लिखी हुई सर्वाधिक प्रोढ़कृति कल्हण की 'राजतरंगिणी' हे। अपनी इस महानतम कृति का निर्माण कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती 11 इतिहास–ग्रन्थों के परिशीलन के फलस्वरूप किया था। काश्मीर के राजा जय सिंह (1127–1149 ई0) के राज्यकाल में 'राजतरंगिणी' का निर्माण हुआ। 'राजतरंगिणी' विशुद्ध महाकाव्य है, अथवा जैसाकि उसके सम्बन्ध में सुना जाता है कि वह विशुद्ध इतिहास–ग्रन्थ हे, इस सम्बन्ध में विद्वानों की अलग–अलग धारणाएँ है। 'राजतरंगिणी' यद्यपि प्रधानतया एक इतिहास है, तथापि उसकी काव्यात्मकता के लिए लेखक का इतना प्रयास है कि उसको, इस दृष्टि से, इतिहास की अपेक्षा महाकाव्य ही कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।[1]

कल्हण ने अपने इस नये ढंग के महाग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती कुछ ऐसे इतिहासकारों तथा इतिहास–ग्रन्थों का भी हवाला दिया है, जो सम्प्रति वर्तमान नही है। उसका कहना है कि सुव्रत नामक एक कवि हुए, जिन्होंने अति विस्तृत इतिहास ग्रन्थों का संक्षेप किया था। सुव्रत कवि प्रचुर–पाण्डित्य वाले थे। उन्होंने यथार्थ वृत्त लिखे; किन्तु उनकी पाण्डित्यपूर्ण और शुष्क वाणी का प्रभाव पाठकों पर न पड़ा। इसलिए उनकी कृतियाँ विलुप्त हो गयी।[2] आगे उन्होंने लिखा है कि 'कविवर' क्षेमेन्द्र ने सुव्रत कवि के बाद एक इतिहास–ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम था 'नृपावली'। यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से उत्तम रचना थी; किन्तु ग्रन्थकर्ता की असावधानी के कारण उसका कोई भी अंश निर्दोष न बच सका।'[3] इसी

1. एस0एन0 दासगुप्ता और दे, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, वाल्यूम 1, पृ0 359
2. राजतरंगिणी, /11, 12
3. वही, 1/13

प्रसंग में वह कुछ और भी इतिहासकारों एवं कवियों का परिचय देते हुए कहता है कि 'महाव्रती' अर्थात, पाशुपतव्रत–दीक्षायुक्त हेलाराज नाभक ब्राह्मण कवि ने 12 हजार श्लोकों के 'पाथिवावली' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसी के आधार पर पद्यमिहिर कवि ने अपने ग्रन्थ में अशोक के पूर्वज लव आदि आठ राजाओं का उल्लेख किया था। इसी प्रकार छविल्लाकर नामक महाकवि ने अपने ग्रन्थ में उन 52 नरेशों में से अशोक से लेकर अभिमन्युपर्यन्त पांच राजाओं का उल्लेख किया।'[1]

महाकवि कल्हण के ये आंखो देखे वर्णन पूर्णतया सत्य है, और इस दृष्टि से यह मानने में तनिक भी सन्देह की गुंजाइश नहीं रह जाती कि संस्कृत–साहित्य मे इतिहास विषय पर ग्रन्थ–निर्माण की परम्परा का अभाव था।

रघुवीरचरितम् का महाकाव्यत्व

'रघुवीरचरितम्', कोलाचल मल्लिनाथ सूरि का अप्रतिम तथा सुन्दर महाकाव्य है जिसमें कवि ने अपनी प्रतिभा से महाकाव्य के विभिन्न लक्षणों के सन्निवेश से रचना की है। 'साहित्यदर्पण' में उल्लिखित महाकाव्य के लक्षणों का कवि ने अनुसरण किया है, जो निम्नलिखित है–

"सर्गबन्धो महाकांव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।315।।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवाभूपाः कुलजाबहवोऽपिवा।। 316।।
श्रृंगारवीरशान्तानामेकोंऽगीररस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेनाटकसंघयः।।317।।
इतिहासोद्भवं वृत्त्मन्यद्धा संजानाश्रयम्।
चत्वारस्तस्यवर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।

1. वही, 1/16–20

आदौनमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।

एकवृत्त्मयैः पद्यैरवासनेऽन्यवृत्तकैः।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।320।।

नानावृत्तमयः क्वापिसर्गः कश्वन दृश्यते।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।

संध्यासूर्यैन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।322।।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।

रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।।323।।

वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अभी इह।

कर्वेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।324।।

संर्गेति– जिसमें सर्गो का निबन्धन हो वह 'महाकाव्य' कहलाता है। इसमें एक देवता या सद्वंश क्षत्रिय – जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हो– नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। श्रृगांर , वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है। अन्यरस गौण होते हैं। सब नाटक सन्धियाँ रहती है। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्धसज्जन सम्बन्धिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आर्शीवाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होता है। कहीं खेलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन होता है। इसमें बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमे प्रत्येक में एक ही छन्द होता है, किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द का होता है। कहीं–कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी

चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्यान्ह, मृगया (शिकार), पर्वत, ऋतु (छहो), वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यश्र, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसम्भव) अथवा चरित्र नायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है– जैसे भट्टि। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रक्खा जाता है। सन्ध यंगानीति– सन्धियों के अंग यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। अवसाने यहाँ बहुवचन की विवक्षा नहीं है– यदि एक या दो भिन्न वृत्त हो तो कोई हर्ज नहीं। जलक्रीडा, मधुपानदिक सागोपांग होना चाहिए। महाकाव्य के उदाहरण जैसे– रघुवंशादिक।

आस्मिन्निति– आर्ष (ऋषिप्रणीत) काव्य में सर्गो का नाम आख्यान होता है। जैसे– महाभारत में।

प्राकृतैरित– प्राकृत काव्यों में सर्गो का नाम श्राश्वास होता है। इसके स्कन्धक या कहीं गलितकछदन होते हैं। यथा– सेतुबन्धः। यथा–

वा मम– कुवलयाश्वरितम्।
अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन्सर्गाः कुऽवकामिधाः।
तथापभ्रंशयोग्यनिच्छन्दांसि विविधान्यपि।
यथा– कर्णपराक्रमः।
भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थपवणैः पद्यैः सन्धिसामग्रधवर्जितम्।।
यथा– भिक्षाटनम्, आर्याविलासश्व।

अरिमन्निति – आर्ष (ऋषिप्रणीत) काव्य में सर्गो का नाम 'आख्यान' होता है। जैसे– महाभारत में।

प्राकृतैरति– प्राकृत काव्यों में सर्गो का नाम आश्वास होता है। इसमें सकन्धक या कहीं गलितकछ दन होते हैं। जैसे सेतुबन्ध। अपभ्रंश भाषा के काव्यों में सर्गो का नाम कुडवक होता है औरछन्द भी अपभ्रंश के योग्य अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे– कर्णपराक्रम।

भाषेति– संस्कृत, प्राकृतादि भाषा आदि विभाषा के नियमानुसार बनाया गया एक कथा का निरूपक, पद्यबद्ध, सर्गमय ग्रन्थ– जिसमें सब सन्धियाँ न हो– काप्य कहलाता है।

उपर्युक्त वर्णित महाकाव्य के लक्षणों का परीक्षण तथा मूल्यांकन 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में करना अत्यन्त आवश्यक है जिससे इसका महाकाव्यत्व तथा महाकवि के काव्य–कला पर यथोचित प्रकाश पड़ सके। अतः निम्नलिखित विन्दुओं पर इस महाकाव्य का काव्यलक्षणानुसार वर्णन किया जा रहा है–

(1) महाकाव्य का नायक या धीरोदात्वादि गुणों से युक्त सद्ववंश क्षत्रिय हो–

'रघुवीरचरितम् के नायक भगवान के अवतार रघुवीर है। वे रघुवंश के परमवीर भी है।

(2) महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम से या चरित्र नायक के नाम से हो–

'रघुवीरचरितम्' का नामकरण रघुवीर के नाम से है। रघुवंश में अनेक प्रतापी राजा हुए लेकिन श्रीराम उनमें परमवीर थे। इसलिए महाकवि मल्लिनाथ ने इस महाकाव्य का नामकरण 'रघुवीरचरितम्' किया।

(3) सर्गों की संख्या आठ से अधिक हो। वे न बहुत बड़े, न छोटे हों–

'रघुवीरचरितम्' 17 सर्गों में निबद्ध हे। प्रत्येक सर्ग यथोचित हैं। कोइ सर्ग न तो बहुत छोटा है और न बड़ा। कुल श्लोकों की संख्या 1533 है। इस तरह प्रत्येक सर्ग कीऔसत श्लोक संख्या 90 है, जो यथोचित है।

(4) महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी हो–

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य की कथा विभिन्न पूर्ववर्ती रामाश्रित महाकाव्यों से सम्बद्ध तथा प्रभावित है। आदिकवि वाल्मीकिकृत वाल्मीकिरामायण ऐतिहासिक है तथा कवि कालिदासकृत 'रघुवंश' भी रामायण सम्बन्धित ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें राम का चरितगान किया गया है उसी प्रकार हमारा महाकाव्य भी उन्हीं से प्रभावित ऐतिहासिक है जिसमें रामपक्षीय तथा रावणपक्षीय चरित्रों का विशद् वर्णन किया गया हे जो ऐतिहासिक घटनाओं तथा प्रसंगों के परिप्रेक्ष्य में है।

(5) श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस अंगी होता है, अन्य रस गौण होते हैं–

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य में शान्त रस अंगी है, क्योंकि सम्पूर्ण महाकाव्य में शान्तरस की बहुलता है। वीर तथा श्रृंगार रस काव्य में अंगी रस के रूप में अभिव्यक्त है, क्योंकि इनका प्रयोग किन्हीं–किन्हीं प्रसंगों में किया गाय है। इसके अतिरिक्त युद्धादि प्रसंगों में कहीं–कहीं भयानक ओर वीभत्स रस का चित्रण है। काव्य लगभग पूर्णतया शान्त रस से परिवेष्टित है जिसका विशद् वर्णन इस शोधप्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

(6) महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होता है; किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है, कहीं सर्ग में अनेक छन्द होते हैं–

प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि ने 26 छन्दों का प्रयोग किया है जिसका विशद विवेचन इस शोधप्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया गया है। हमारे कवि ने मात्रिक एंव वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णिक छन्द में सम तथा अर्द्धसम का प्रयोग किया गया है। कवि यथासम्भव एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करता है।

(7) आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु निर्देश–

इस महाकाव्य के प्रारम्भ में उत्तरकोशल राज्य के उत्तरधिकारी राजकुमार राम अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा को शिरोधार्य कर चौदह वर्ष का वनवासी जीवन बिताने के उद्देश्य स विन्ध्य क्षेत्र को पारकर दण्डकारण्य के आश्रम में सीता और लक्ष्मण के साथ पहुँचे। आश्रमवासी ऋषि–महार्षि तथा मुनिवृन्द राम के आगमन से प्रफुल्लित चित्त उनके स्वागत के लिए पधारे। राम ने इस प्रकार ऋषियों को अपनी ओ आते हुए देखकर अपने धनुष की प्रत्यंचा ढीली कर सुशीलतापूर्वक साधु समाज को प्रणाम किया। ऋषि समाज ने राम के साथ–साथ सीता ओर लक्ष्मण की मंगल कामना की। श्रीरघुवीर ने इसी प्रकार भरद्वाज जैसे तनोनिष्ट ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त किया। आरम्भ में ही वर्ण्यविषय का निर्देश हो जाता है जब राम वनवास के लिए दण्डकारण्य प्रवेश करते हैं तथा चित्रकूट में कुटी बनाकर निवास करने लगते हैं तथा आगे की कथा को इसी क्रम में कवि गति प्रदान करता है।

(8) अपहरण प्रसंग

महाकाव्यों में अपहरण की घटनाएँ भी आती है। 'रघुवीरचरितम्' में सीता के अपहरण की घटना हुई जिस घटना की धुरी पर सम्पूर्ण काव्य का वर्णन घूमता रहता है। शूर्पणखा के नाक–कान काट जोन की अप्रत्यासित घटना से क्रोधित रावण मारीच को कंचन मायामृग बनाकर भेजता है। सीता को षड़यन्त्र द्वारा अकेली पाकर रावण उनका हरण करता है और लंका में अशोकवाटिका में रखता है। प्रतिक्रियास्वरूप इसी के दुष्परिणाम का फल राम–रावण युद्ध घटित हुआ जिसका एकमात्र कारण सीताहरण ही है।

(9) अतिमानवीय शक्ति के कार्यव्यापार का वर्णन

'रघुवीरचरितम्' के रघुवीर भगवान के साक्षात् अवतार है। इसलिए वनवास में अहिल्या उद्धार आदि प्रसंगों में तथा युद्ध आदि प्रसंगो में वे अतिमानवीय कार्यव्यापार करते हैं। इन्द्र, वरूण, अग्नि, ब्रह्म, विष्णु, महेश आदि वैदिक देवगण प्रसंगानुसार प्रकट होकर श्रीराम को आशीर्वाद देते हैं। जिसका वर्णन इस शोधप्रबन्ध के 'कथावस्तु' शीर्षक में किया गया है। 'रघुवीरचरितम', का महाक़वि रघुवीर को भगवान् का अवतार मानता है।

(10) महाकाव्य की कथा का मुख्य उद्‌देश्य धर्म तथा न्याय की रक्षा तथा अधर्म और अन्याय का विनाश

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य का मुख्य उद्‌देश्य धर्म तथा न्याय की स्थापना करना तथा अधर्म और अन्याय का विनाश करना है। जब राम दण्डकारण्य में ऋषियों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं तो ऋषियों ने अपना कष्ट उन्हें सुनाया कि राक्षसों के उपद्रव से यहाँ के निवासी अत्यन्त पीड़ित हें, उसे दूर करने में आप ही समर्थ हैं। हमलोग आपके शरणागत हैं। उन्होंने राक्षसों द्वारा मारे गये यत्र–तत्र बिखरे तपस्वियों के एकत्रित अस्थि पर्वत का

राम को प्रत्यक्ष कराया। तपस्वियों के इस विकट परिस्थिति का अवलोकन कर द्रवीभूत राम ने हाँथ जोड़कर ऋषियों से कहा कि राक्षसों के संकट से आप लोगों की रक्षा करना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझकर सतत् प्रयास करूंगा। मेरा प्रयास यही होगा कि इन आश्रमों में शान्ति बनी रहे। राक्षसों का उपद्रव सदा के लिए दूर हो जाये। ऋषि सुतीक्ष्ण ने राम से कहा कि दुःखीजनों पर अनुग्रह करना, साधुजनों की रक्षा करना, दुष्टों को दण्ड देना और युद्ध में विजय प्राप्त करना, यह आपकी वंश–परम्परा है।

(11) विवाह–सम्बन्ध प्रयोजन

'रघुवीरचरितम्' के प्रथम सर्ग में कवि ने राम के विवाह का सुन्दर चित्रण किया है। जनकपुरी पहुँचने पर आपको ज्ञात हुआ कि जनक की यह प्रतिज्ञा है कि इस धनुष की प्रत्यंचा को जो चढ़ायेगा सीता का उसी से विवाह होगा। जनकपुरी में आयोजित सीता के विवाह से सम्बन्धित धनुष–यज्ञ समारोह में आप उपस्थित हुए। पधारे हुए विभिन्न राजागण इस धनुष को छूने तक साहस नहीं कर सके। आपने बिना किसी प्रयास के अत्यन्त लाघव के साथ शंकर के उस प्राचीन धनुष को न केवल उठाया, अपितु आप द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाते ही धनुष टुकड़े–टुकड़े हो गया। प्रसन्नापूर्वक जनक ने सीता का विवाह आपके साथ कर दिया। सीता को पत्नी के रूप में प्राप्त कर प्रसन्तापूर्वक आप अयोध्या के लिए वापस चले गये। ऐसा दण्डकारण्य में ऋषियों ने राम से कहा जिसका वर्णन महाकवि ने इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में किया है।

(12) महाकाव्य में सन्ध्या, प्रातः, रात–दिन, अन्धकार, सूर्य, चन्द्रमा, मध्याह्न, मृगया (शिकार), पर्वत, ऋतु (छहों), वन, समुद्र, नदी, मुनि, स्वर्ग,

नगर, यश्र, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, सम्भोग, वियोग, और अभ्युदय आदि का सागोंपांग वर्णन

'रघुवीरचरितम्' में यथाप्रसंग कवि ने सन्ध्या, प्रातः , मध्यान्ह, रात्रि, दिन, अन्धकार, सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, समुद्र, मुनि, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, सम्भोग, वियोग, मृगया (शिकार), आदि का चित्रण सुन्दर ढंग से किया है जिसका विशद वर्णन इस शोधप्रबन्ध के प्रकृति- चित्रण अध्याय में किया गया है।

(13) महाकाव्य क्रे प्रत्येक सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना

'रघुवीरचरितम्' का सत्रहों सर्ग एक दूसरे से आबद्ध हैं। जब एक सर्ग समाप्त होता है तो उस समाप्ति के अनन्तर दूसरे सर्ग की कथा की सूचना देता है जैसाकि इस शोधप्रबन्ध के 'कथावस्तु' अध्याय में वर्णित है।

निष्कर्षतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'रघुवीरचरितम्' का महाकाव्यत्व अक्षुण्ण है तथा इसने महाकाव्य के सभी लक्षणों के सभी लक्षणों का परिपालन किया है ओर कवि मल्लिनाथ ने बड़ी ही पटुता से इस महाकाव्य को काव्य–लक्षणों की मुक्ता से भरा है।

द्वितीय अध्याय

सुग्रीवचरितम् महाकाव्य पर पूर्ववर्ती रामकथाश्रित काव्यों का प्रभाव महाकाव्य परम्परा में स्थान एवं महत्व

द्वितीय अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य पर पूर्ववर्ती रामकथाश्रित काव्यों का प्रभाव

रघुवीरचरितम् महाकाव्य पूर्व के रामकथा–साहित्य पर आधारित है। रामकथा काव्यों का प्रभाव इस महाकाव्य पर पड़ा। वेदों तथा उपनिषद् में राम की कथा है। वाल्मीकिरामायण मे उसी का विस्तार है। रामकाल में ही रामायण की रचना हुई। "पुराणों के अनुसार तो राम के अवतार के पूर्व ही रामायण का निर्माण अतीत, अनागत तथा वर्तमान के द्रष्टा महार्षियों ने कर डाला था। वर्तमान वाल्मीकिरामायण तो शतकोटि प्रविस्तर रामायण का सारमात्र है"[1] "जिस दिन किसी कवि ने रामकथ–विषयक स्फुट आख्यान काव्य का संकलन करके उसे एक ही कथासूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया था उस दिन रामायण उत्पन्न हुआ"[2]

"राम वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्मो में समभाव से मर्यादा पुरूषोत्तम माने जाते हैं। बौद्ध कवि कुमारलात (900 ई0) की 'कल्पना–मण्डतिका' में रामायण के सर्वसाधारण में वाचन का उल्लेख है। जैन कवि विमलसूरि ने रामकथा को 'पउमचरिउ' नामक प्राकृत–भाषा में निबद्ध किया है। विमलसूरि ने इस काव्य की रचना महावीर की मृत्यु से लगभग 62 ई0 में की। महाकवि अश्वाघोष (78 ई0) ने अपने 'बुद्धचरित' में सुन्दरकाण्ड की अनेक रमणीय उपमाओं को निबद्ध किया। रामायण 500 ई0पू0 से पहले लिखा गया।

---

1. रामायण मीमांसा, पृ0 674
2. बुल्के : रामकथा, अनुच्छेद, 132

रामायण की रचना बुद्ध जन्म से पहले हुई।''[1]

लेकिन महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि है और उनका रामायण आदिकाव्य है। कथा प्रसिद्व है कि जब व्याघ के बाण से बिघे हुए क्रौंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची का करूण शब्द ऋषि ने सुना, तो उनके मुँह से अकस्मात् यह श्लोक निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः सभाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकम्रवधीः काममो हितम्।।[2]

जिसका आशय यह है कि हे निषाद! तुमने काम से मोहित इस क्रौंच पक्षी को मारा है, अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो। महर्षि की कल्याणप्रद वाणी का श्रवण कर स्वयं ब्रह्मा समुपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिए उनसे कहा।

महर्षि वाल्मीकि त्रिकालदर्शी थे। कृष्णद्वैपायन के समकालीन थे। अपनी प्रज्ञा द्वारा राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान आदि सभी के स्थूल तथा सूक्ष्म चरित्रों का साक्षात्कार करके रामायण काव्य की रचना की। यही आर्ष इतिहास लौकिक रामकथा का उद्गम है। वेद अनादि तथा अपौरूषेय नित्य ग्रन्थ है। मन्त्र, उपनिषद् और ब्राह्मण उन्हीं के भेद हैं। रामायण, महाभारत, पुराण और आगम उन्ही वेदों की व्याख्या एवम् उपवृहणमात्र है। जैसाकि करपात्रीजी महाराज ने स्पष्ट किया है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसा दासीत् साक्षाद्रामायणात्मजा।।[3]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 25, 26 आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. वाल0 2/15
3. रामायण मीमींसा, पृ0 701 करपात्री जी

वेदवेद्य परमब्रह्म दशरथसुत राम के रूप में जब प्रकटे तो साक्षात् वेद भी रामायण स्वरूप महर्षि प्राचेतस की वाणी में अवतरित हो गये।

बुल्के ने अपनी रामकथा में अभिमत व्यक्त किया है कि "जिस दिन किसी कवि ने रामकथा–विषयक स्फुट आख्यान काव्य का संकलन करके उसे एक ही कथासूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया था उसी दिन रामायण उत्पन्न हुआ।"[1]

इस प्रकार रामायण रचना नहीं आर्ष इतिहास से अभिहित किया जाता है। स्वयम् आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने टिप्पणी की है–

"शोकार्तस्य प्रवृतो में श्लोको भवतु नाम्यथा।"[2]

लेकिन फादर कामिल बुल्के की उक्ति है कि–

"वाल्मीकि के पूर्व रामकथा–सम्बन्धी गाथा मे प्रचलित हो चुकी थी, अस्तु न तो रामकथा–सम्बन्धी गाथा में रामायण पर निर्भर हो सकती हैं और न तो बौद्ध गाथाओं में जो रामकथा–सम्बन्धी सामग्री मिलती है, वह रामायण के आधार के लिए पर्याप्त है। अतः रामायण तथा रामकथा–विषयक बौद्ध गाथाएँ दोनों ही प्राचीन रामकथा–सम्बन्धी आख्यान काव्य पर निर्भर है।"[3]

रामकथा की सार्वभौम सत्ता का श्रेय रामायण के अतिरिक्त अन्य किसी कृति को नहीं है। भारतीय साहित्य मे रामकथा की व्यापकता की अपेक्षा विदेशों मे उसकी लोकप्रियता आश्चर्यजनक है। उनमें बौद्ध अनामकजातकम, दशरथ कथानकम् ओर उनके चीनी भाषानुवाद तिब्बती खेतानी रामायण भी है। रामकथा की सार्वभौम लोकप्रियता का एकमात्र श्रेय महाकवि वाल्मीकिरामायण को है जिसकी सृष्टि हेतु स्वयं प्रजापति ब्रह्मा ने

1. बुल्के, रामकथा, अनुच्छेद 132
2. वाल्मीकिरामायण, 1/2/18
3. बुल्के, रामकथा, परिच्छेद 130

अपने आर्शीवचन से वेदावतारभूत बना दिया–

"न तो वागनृता काव्येकाचिदत्र भविष्यति।"[1]

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि–

"स्वच्छन्दताभारतीदेवी जिह्वाग्रेतेभविष्यति।
कृत्वा रामायणं काव्यं ततो मोक्षं गमिष्यसि।।"[2]

"सप्तर्षियों ने वाल्मीकि से कहा कि सरस्वती तुम्हारे जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित होकर सदैव मुखर रहेंगी। रामायण काव्य की रचना करके मोक्षभागी बनो।"

महर्षि वाल्मीकि की रामायण रचना के उपरान्त रामकथा–सम्बन्धी जितनी भी साहित्य की रचना हुई सभी उन पर आश्रित होकर प्रवृत्त हुए। विश्व–साहित्य के इतिहास में शायद ही ऐसे महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जिसने भारत के आदिकवि के स्वरूप इतने व्यापक रूप से परवर्ती–साहित्य को प्रभावित किया हो।

रघुवीरचरितम् तथा पूर्ववर्ती रामकथाश्रित काव्य

वेद, उपनिषद, नानापुराण, महाकवि वाल्मीकि के रामायण, कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघूदत, माघ्ज्ञ के शिशुपालवध, भट्टि के अश्वाघोष तथा अन्य महाकवियों की काव्य–टीकाओं के अवगाहन से ज्ञान–मुक्ता ग्रहण कर, अन्य रामकथाश्रित काव्यों जैस अभिनन्दकृत रामचरितम्, कुमारदासकत जानकीहरण, प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध, क्षेमेन्द्रकृत रामायणमंजरी आदि के ज्ञानामृत का पान कर तथा रामकंथा–साहित्य क`आद्योपान्त ज्ञानोदधि को अपने गहनतम अध्यवसाय की मथनी से मथकर ज्ञान की नवनीत निस्सरित किया

1. रामायण मीमांसा, स्वामी करपात्री जी, पृ0 4.

2. स्कन्दपुराण.

जिसकी पीयूष प्रवाह से सत्रह सर्गो तथा 1531 श्लोंकों मे निबद्ध रघुवीरचरितम् को प्रवाहित किया–महाकवि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने। महाकवि रामाश्रित होते हुए अपने पूर्व के रामकथाओं से आश्रित एंव प्रभावित है। निश्चय ही रामकथा की अलौकिक तथा शाश्वतधारा से अभिसिंचित तथास्नात होकर मल्लिनाथ ने पूर्व के रामाश्रित काव्यों से अतृप्त होने के कारण ही इस महाकाव्य का संयोजन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य की टीका के अवगाहन में हमारे कवि को ऐसी अतृप्ति का अनुभव हुआ।

कैसा अजीब तथा विचित्र सादृश्य संयोग है कि कालिदास तथा मल्लिनाथ दोनों ही महाकवि महामूर्ख थे जैसाकि मनीषी डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदीजी ने अपने 'मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श' में उल्लेख किया है–

"यह बड़ी मनोरंजक बात है कि कालिदास की वाणी को 'संजीवनी' द्वारा पुनर्जीवित करने वाले मल्लिनाथ भी कालिदास की भाँति ही प्रारम्भ मे मूर्ख थे और इन दोनों का विद्वान् बनाने का श्रेय इनकी पत्नियों को है।"[1]

सत्य चाहे जो भी हो; किन्तु जिस रूप में आज हम मल्लिनाथ को पाते हैं, उससे यह स्पष्ट है कि अपने वंश की गौरवमीय–परम्परा के अनुरूप ही वे भी उच्चकोटि के विद्वान् थे जैसाकि पत्नी से फटकार पाने पर कालिदास ने ज्ञान प्राप्त किया और विद्वान् महाकवि हुए।

'रघुवीरचरितम्', पर पूववर्ती रामकथाश्रित काव्यों का प्रभाव शोधप्रबन्धक का सुन्दर प्रतिपाद्य विषय होगा जिसकी विशद् विवेचना प्रस्तुत है।

1. कालिदास की कृतियों पर मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श, डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ0 51

महाकवि वाल्मीकि के रचनाओं का प्रभाव

वाल्मीकिरामायण ही सभी काव्यों तथा इतिहास–पुराणों का आधार है। सभी संहिताओ का भी मूल यही है"[1]

महाकवि वाल्मीकि आदिकवि है जिनकी श्रेष्ठतम रचना वाल्मीकिरामायण है। 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य पर वाल्मीकि की रचना का प्रभाव पड़ा है जिसके आलम्बन से इसकी रचना हुई

रघुवीरचरितम् भी अन्य काव्यों की भाँति उसी से प्रेरणा ग्रहण करने वाले कवि की रचना कृति है। काव्य मे निहित विषयवस्तु, उसकी उपस्थापना, रामादि से इतर रामकथा पात्रों , भाषा–शैली, रीति तथा काव्य प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य मे सम्भावित अनुप्रेरणाओं का भी आकलन करना समुचित होगा।

'रघुवीरचरितम्' का मूल उपजीव्य वाल्मीकिरामायण होते हुए भी कवि ने अपने पूर्ववर्ती महाकाव्यों से अनुप्रेरणा ग्रहण की। साथ ही कवि ने रचना को इस तरह सँवारा है कि उसकी काव्य–मौलिकता अक्षुण्य है। कथा निर्देश प्रक्रिया समन्वित मंगलाचरण में पूर्ववर्ती कवियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

"वाल्मीकिरामायण का अरण्यकाण्ड, चित्रकूट से दक्षिण चलकर राम के दण्डकारण्य मे प्रवेश होने के साथ ही प्रारम्भ होता है"[2]

अतः रघुवीरचरितम् की सागोपांग ज़ीवन्तता का स्रोत तथा उद्गम वाल्मीकिरामायण ही है जिससे अभिप्रेत तथा प्रभावित होकर हमारे कवि ने इस अनुपम रचना की सृष्टि की।

वाल्मीकिरामायण के कथावस्तु के अनन्तर दण्डकारण्य में प्रविष्ट होते

---

1. रघुवीरचरितम्, 11/15–22
2. कालिदास की कृतियों पर मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श, डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ0 105

ही राम तपस्वियों के बड़े–बड़े मनोरम आश्रमों को देखते है। वे सर्वप्रथम शरभड़ मुनि के आश्रम पर जाते है। ओर फिर शरभंग द्वारा सुतीक्ष्या ऋषि के आश्रम पर। मार्ग मे नदियों, झरनों, पर्वतों ओर सुन्दर वनों की शोभा देखते हुए वे बहुत प्रसन्न होते हैं। सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम पर रात व्यतीत कर पुनः सुतीक्ष्ण के निर्दश पर वे दण्डकारण्य निवासी मुनियों के आश्रमों का दर्शन करने के लिए चल पड़ते हैं।[1]

"वे राम, लक्ष्मण ओर सीता सहित उन मुनियों के आश्रम से कहीं चार मास, कहीं सात मास, कहीं आठ मास, कहीं ग्यारह मास और कहीं बारह मास रहे।"[2]

वाल्मीकीय रामायण का प्रभाव 'रघुवीरचरितम्' पर इस प्रकार स्पष्ट परिलक्षित होता है, क्योंकि महाकवि मल्लिनाथ ने इस काव्य का श्रीगणेश दण्डकारण्य से किया जो उपर्युक्त उद्धरण से भी स्पष्ट है ओर जैसा कि काव्य के सर्ग 9 के 1, 6 तथा 7 श्लोकों से स्पष्ट होता है–

"श्रियः शिवं धाम सदारसोदरः प्रविश्य रामः पितृवाक्यगौरवात्।
वनं महद् दण्डकमाश्रयः सतां तपस्विनामश्रमजातभैक्षत।।
उदीयमानस्तबकस्तमोज्जवलाः समीरणास्पन्दितपल्लवाधराः।
मनोहरा यत्र लता महीरूहान् सदोपगूहन्तिधुव्रतेक्षणाः।।
अरण्यवीरूत्प्रसवोदरोद्गतः प्रफुल्लतपंकेरूहपद्मिनीसखः।
प्रकल्पते यत्र शिवः समीरणः शरीरमाजां प्रशमाय चेतसः।।"[3]

---

1. वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, 8/12
2. वही, 11/24, 28
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1 का 1–6–7.

अतः स्वतः सिद्ध है कि महाकवि ने आलोच्य महाकाव्य का श्रीगणेश वाल्मीकीय रामायण के परिप्रेक्ष्य में उसी के प्रभाव से किया।

महाकवि अभिनन्द के 'रामचरितम्' का प्रभाव

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य पर पूर्ववर्ती रामाश्रित काव्य 'रामचरितम', का भी प्रभाव पड़ा जिसके रचनाकार महाकवि अभिनन्द है। रामचरितम् का सर्वोत्तम पक्ष राक्षसादि विनाश है जो कि रघुवीरचरितम् काव्य कथा की जीवन्तता की पृष्ठभूमि है, यथा हनुमानोत्पत्ति कथा।

इसी प्रकार स्वयंप्रभा की अवान्तर कथा का उल्लेखमात्र है जबकि रामायण ही नहीं अपितु अन्य रामकथाओं में भी अपनी कल्पना द्वारा इस कथा को अधिकाधिक रोचक बनाने का कवियों ने सफल प्रयास किया है। जैस गुफा में प्रवेश करते ही द्वार पर एक वानरी गणिका ने हनुमान से प्रणय निवेदन किया, उन्होंने अस्वीकार किया। फिर वहीं एक रमणी स्वरूपा उपस्थित हुई। हनुमान टस से मस नहीं हुए। अन्त में स्वयंप्रभा से भेंट हुई। स्वयंप्रभा ने अपना सम्पूर्ण वृतान्त इस प्रकार बताया–

"इस गुफा का स्वामी 'मय' यहाँ हेमा नाम की एक युवती मित्र के साथ पति–पत्नी रूप में रहता था। एक बार वह अपने पिता के दर्शनार्थ स्वर्गलोक गयी। इन्द्र ने अवसर पाकर उसे हस्तगत कर लिया। वह वापस न आ सकी। हेमा ने अपनी सखी स्वयंप्रभा को स्थिति का निवेदन करने के लिए मय के पास भेजा। उसके पहुँचने तक मय हेमा का वियोग न सह सकने के कारण मर चुका था। स्वयंप्रभा यह वृत लेकर हेमा तक न जा सकी। उसे चिन्ता थी कदाचित् हेमा दुःखद वृतान्त सुनकर मर न जाय। इसलिए यहीं अकेले रहकर तपार्चन करने का निश्चय कर लिया।"[1]

---

1. रामचरितम् (अभिनन्द) 12/45–46 से 80–84 निरिसयवार सुन्दरी।

'रघुवीरचरितम्' में इस सन्दर्भ से मात्र एक छन्द है--

"हतासुरास्तमस्यन्धे चरन्तः शामितशुधः।
स्वयंप्रभाप्रसादेन–निरक्रामन गुहोदरात्।।"[1]

इससे स्पष्ट है कि 'रघुवीरचरितम्' के प्रणेता को मूल कथा ही अभीष्ट है।

महाकवि मल्लिनाथ ने अपने महाकाव्य के कथा संयोजन, अपवृद्धि तथा घटना संघटन में यद्यपि अपनी मौलिक दृष्टि अपनायी है, तथापि निःसंकोच कहा जा सकता है कि कवि वाल्मीकिरामायण के अतिरिक्त पूर्ववर्ती अन्य रामकथाश्रित काव्यों से अनुप्रेरित तथा प्रभावित रहा है। महाकवि कालिदासकृत रघुवंश महाकाव्य के प्रभाव तथा अभिप्रेरणा का उल्लेख आगे किया जायेगा। इसके अतिरिक्तर अवसरानुकूल अन्य प्रेरणास्पद तथा प्रभावित करने वाले रामकथा–सम्बन्धित काव्यों का विवेचन किया जाना समीचीन होगा जिनके प्रभावक अंश विशेष को काव्य के मूल प्रेरणा स्रोत को समाहित कर स्वचिन्तन प्रक्रिया द्वारा नवीनता सम्पोषण से उसमें मौलिकता का आभास कवि ने निःसन्देह कराया है। महाकवि मल्लिनाथ अपनी कल्पना–सृष्टि से मे प्रतिभाजन्य उद्भावनाओं को समाहित करने तथा अभिव्यक्ति क्षेत्र मे सर्वथा पृथक् स्थान रखते हैं।

महाकाव्य के रचयिता मल्लिनाथ ने अपनी कृति का नामकरण राम (अवतारी पुरूष) को लक्ष्य करके ही नहीं अपितु रघुवीर लक्ष्यकर 'रघुवीरचरितम्' किया। यही कारण है कि 'रामचरितम्' आदि काव्यों के सदृश प्रथा ही अवतार पुरूष की कल्पना का अनुमोदन है"[2]

---

1. रघुवीरचरितम, 10/86
2. आदर्श संस्कृत विद्यापीठ बालश्री (केरल राज्य से प्रकाशित)

महाकवि मल्लिनाथ इससे हटकर मात्र उस चरित्र का उद्भव कर रचनावृत्त हुआ जो रम्य चरम परिणति है। "इसलिए काव्य का श्रीगणेश राम वनगमन (वन प्रदेश) से होता है।"

"श्रियः शिवधाम सदारसोदरः प्रविश्य रामः पितृवाक्यगौरवात्।
वनं महद् दण्डकमाश्रयः सतांतपस्विनामाश्रयजातमैक्षत।।"[1]

'रघुवीरचरितम्' के काव्य नायक का चरित्र अंकन में निःसन्देह कवि कसौटी के धरातल पर खरा उतरा है। इस सन्दर्भ मे सहायक तथा अनुप्रेरक प्रभावी रूप से 'जानकीहरणम्' (कुमारदासकृत) तथा अभिनन्द रचित 'रामचरितम् से हमारा कवि अत्यन्त प्रभावित, आश्रित तथा अनुप्रेरित है। दोनों ही काव्यो का प्रारम्भ राम के जीवन की उस घटना से होता है जिसमें लोकानुकम्पा का प्रकटीकरण स्पष्ट है तथा हमारे कवि ने तद्नुसरण किया है।

'रघुवीरचरितम्' पर पूर्ववर्ती रामकाश्रित काव्य अभिनन्दकृत 'रामचरितम' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। दोनों काव्यो मे लगभग समानता दृष्टिगोचर होता है। 'रामचरितम्' का प्रथम सर्ग वनागमन से सीताहरण के उपरान्त वियोगी राम और लक्ष्मण के संवाद (करणीयनिश्वयार्थ विचार–विमर्श) से एवं 'रघुवीरचरितम्' राम के वन प्रवेश (मुनि–समूह के रक्षार्थ कर्म सम्पादन उपक्रम) से होता है।" दोनों ही कवियों (अभिनन्द तथा मल्लिनाथ) की उद्भावना भूमि समान है। समुद्र लाँघकर लंकापुरी मे प्रवेश, दशानन एवम् अन्य प्रमुख राक्षस, भवनों, कारागार आदि में सीतान्वेषाण प्रक्रिया का वर्णन 'रघवुीरचरितम्' तथा 'रामचरितम्' (अभिनन्दकृत) के समान परिलक्षित होता है।

मल्लिनाथ ने अनावश्यक विस्तार से अपने को समेटा है–

---

1. रघुवीरचरितम्, 1/1

''रामचरितम्' मे रावण के बन्दीगृह में पड़ी सुन्दर रमणियों के संलाप–प्रलाप का विस्तृत वर्णन है।

''व्याक्रोशनादपि कटुक्षणदाचरीणामाश्वासंक्वचननिर्विविदेनिराभ्य।
शुश्रावकुत्रचन किं पुरूषांगनानागी तादपि श्रुतिसुखदमार्तनादम्।।''[1]

किन्तु मल्लिानाथ इसी तथ्य को एक छन्द के माध्यम से कहते हैं–

''सदेवदैते व मनुष्य वर्गाद वन्दीकृता यौवनरूपधन्या।।
सुरक्षिताः कंचुकिभिर्महेलविलोकयामासंकृतावधानः।।''[2]

फिर सीतान्वेषण क्रिया सम्पादन मे वह तत्पर हो जाते हैं। जैसाकि अध ोलिखित श्लोक से स्पष्ट है–

''तस्मिन् समाहृतसुरासुरसिद्धसाध्यस्त्रीरत्नसार निचितेनगरेसवीरः।
सर्वत्र जातजनकेन्द्रसुताभिमानश्विहोषुविस्मरणसाध्वसवानिवासीत्।।''[3]

वह प्रत्येक आगन, भवन, वृक्ष, वाटिका दैंखे; किन्तु राम महिषी सीता के दर्शन नहीं हुए जैसाकि 'रामचरितम्' के अधोलिखित श्लोक में अंकित है–

''पत्युगांण प्रतिगृहं प्रतिवृक्षवाटीपर्यन्वियेष महिषीजगदीश्वरस्य।
कुत्रपितत्रभवतीं न पुनर्ददर्शदर्शक्षपामुखऽवेन्दुलांकपीन्द्रः।।''[4]

इसी श्लोक के सन्निवेश में 'रघुवीरचरितम्' का निम्नलिखित श्लोक लयात्मक प्रभाव को अभिव्यक्त करता है–

---

1. रामचरितम्, 19/12–26
2. रघुवीरचरितम्, 12/18
3. रामचरितम्, 19/28
4. वही, 19/29

"उदयानवाटीषु सरस्तटेषु रथ्यासु सर्वासु च सापणासु।
सुद्धान्तकक्ष्यासु च मार्गमाणों वृशानलेभेरघुराजपतीम्।।

हनुमान् हतोत्साहित मन इतस्ततः दृष्टिक्षेपणरत थे कि दूर से ही सुसौरभयुक्त अशोक वन उन्होंने देखा। जैसाकि दोनों काव्यों के अवलोकन से सादृश्य प्रभाव स्वयं मे नियुक्त हो जाता है–

"सार्वतुर्कस्तवक शालितरूप्रवेकं सर्वाभिरामरूतपण्डितपा त्रिजातम्।
सर्वस्वभूतमथतद्दशकन्दारस्य दूरादशोकवनमैक्षत गान्धनाहि।।"[2]
"इतिव्यस्यन् व्यवसायशौपडः पितेवविश्वं पुरमश्नुवानः।
यत्नादवि चिन्तन्नपि नामपश्यन्नारादि वाराभमुकाप्रपेदे।।"[3]

'रामचरितम्' तथा 'रघुवीरचरितम् दोनों ही काव्य हनुमान के ऐसे ही उद्यम को प्रस्तुत करते हैं। हमारा कवि इस प्रसंग में 'रामचरितम्' के प्रभाव में है लेकिन उसकी कृति अनुकरणभावित नहीं है।

'रामचरितम्' रामकथश्रित काव्य में कवि ने जिस रूप में अशोक वाटिका में अवस्थित सीता का दर्शन किया उसी रूप को 'रघुवीरचरितम्' के रचनाकार ने भी सम्यकरूपेण प्रस्तुत किया। प्रथम की भाषा अधिक काव्य प्रौढ़ा है, कुछ दुरूह सी, द्वितीय की सहज प्रसादगुणपूर्ण है। लेकिन दोनों के मन्तव्य में सादृश्यता है जैसाकि अधोलिखित उद्धरण से सुस्पष्ट है–

अदिभः सुधाव्यवहितामिवलावणीभिः मृदभिश्वितामिव विदूरशिलासलाकम्।
पुण्याग्निदीधितिमिव स्थगितां समदिभरिंन्द्रो कलानुपहितामिवकालिकाभिः।।[4]

---

1. रघुवीरचरितम्, 19/36
2. रामचरितम्, 12/41
3. रघुवीरचरितम् 12/41
4. रामचरितम्, 19/41–42 व 46–47

''घृतैकवेणीमुविकेवलायां निषेदुषीं क्षौमकृतोत्तरीयाम्।
राहूपरूद्धस्यतुषारमानोः प्रभामिव प्रवजितां विरागात्।।''[1]

निष्कर्षतः इस प्रकार 'रामचरितम्' के सर्ग 19 के श्लोक संख्या 41, 42 व 46, 47 तथा 'रघुवीरचरितम्' के सर्ग 12 के श्लोक संख्या 44, 45, 46 तथा48–50 मे पर्याप्त समानता है तथा मल्लिनाथ की काव्य रचना मे पूर्ववर्ती रामाश्रित रामचरितम् का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रभावित तथा अनुप्रेरित हमारा कवि उस सीता तक अतिरञ्जित नहीं हुआ है कि सुधीजन सीता के (वन्दिन तथा वियोगिनी रूप) उस रूप को भुला दे जो सामने है। कवि ने उस समय की सतीता को अपनी काव्य–भाषा में निबद्ध तथा प्रतिमूर्त कर दिया है। इसी प्रकार राम का सन्देश निवेदन करने की भी रीति का उत्प्रेरण तथा प्रभावण ग्रहण किया है। अतः स्वयं प्रामाणिक है कि पूर्ववर्ती 'रामचरितम्' काव्य से हमारा कवि प्रभावित हुआ है।

'रामचरितम्' के मार्मिक प्रसंगो का 'रघुवीरचरितम्', मे भाव स्थापना हेतु अनुप्रेरणा भूमि प्राप्त हुई है। साथ ही साथ आलोच्य काव्य को अनुपूरक भी कहें तो कथमपि असंगत नहीं होगा। कारण यह कि 'रामचरितम', कुछ भाव काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से अविकसित परिलक्षित होते हैं और वहीं 'रघुवीरचरतिम्', में स्पष्टतः व्यक्त होकर तादात्म्य बोधक–बोधक हैं।

दोनों ही काव्य हनुमान द्वारा राम प्रेषित अभिज्ञानरूपा अंगूठी की प्राप्ति, उसके निरीक्षण के उपरान्त सीता की मनःस्थिति, अंगूठी के प्रति स्नेहभाव उसकी प्राप्ति के माध्यम से क्षणपर्यन्त प्रिय भेंट की सी स्थिति तथा क्रमशः पूर्वघटित घटनाओं का स्मृति पटल पर रेखांकित सी हो उठना, आदि भावाभिव्यंजना की दृष्टि से समादभावी प्रतीत होते हैं तथा दोनों ही महाकाव्यों

---

1. रघुवीरचरितम्, 12/44–45, 46 तथा 48, 50

में सादृश्यता का प्रभाव है।

राम द्वारा प्रदत्त अंगूठी को सीता को हनुमान ने समर्पित किया। अंगूठी का दर्शन करते ही सीता भावविभोर से आह्लादित हो उठी— प्रिय राम के नाम चिह्न से अंकित अंगूठी को नेत्रों के जल से धो डाला, उसको सिर से लगाया, हृदय से स्पर्श कराया, कण्ठ से लगाया, पुनः पुनः देख—देखकर चुम्बन किया, क्योंकि अंगूठी के रूप में मानों उन्हें साक्षात् राम से ही भेंट हो। इन भाव—विभोर को 'रामचरितम्' के अधोलिखित श्लोकों सन्र्मित करना समीचीन होगा—

"प्रियनामचिह्नमवलोक्य स्नुतवारिधौतमलंगलीयकम्।
प्रमिमील दीर्घ्झमनधामहात्मनः लवंगस्यपरिचर्ययोद्रगात।।
शिर सिन्यधादुरसिदीर्घमादधेमुदमापकण्डमुपनीयकामपि।
तदमीक्षणविचुम्बितचिरादकरोत्कपोल तलयोस्तरलोदरी।।
क्वगतोऽसि रामपरिहायभामितः स्नरसीव संप्रति न मामनागराम्।
हृदयामिधिकपरिमृद्नि योषितां काठिनाय सत्पुरूषचेतसे नमः।।"[1]

आदि (रामचरितम्) की अपेक्षा रघुवीर रचनाकार ने सीता की इस भावविभोरता को अपेक्षाकृत संयमित तथा मर्यादित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है—

अंगूठी को सीता ने अश्रुपूरित नेत्रों से सम्मानपूर्वक अपनी कोमल अंजलि में ग्रहण किया तथा हर्षयुक्त आह्लादित हृंदय में अपने प्रिय का उन्होंने स्मरण प्रारम्भ किया जिसका भाव हमारे कवि ने अधोलिखित श्लोकों में अभिव्यक्त किया है—

1. रामचरितम्, 20/12—14

"अंजलौकृतवती तदंजनाभ्यास शून्य विमलाश्रुलोचना।
हर्षशोकमिलितेन 'चेतसा चिन्तयन्त्यखिलसुन्दरंप्रियम्।।
अंगुलीकिसलये घृतं प्रभोर्भूषणस्यजगतां विभूषणाम्।
एतदेतदृषिभः समागतैः स्पर्शितं खरवध प्रमोदभिः।।"[1]

अपने अन्तस्थल के भाव के वाणी द्वारा सीता ने हुनमान् से अभिव्यक्त किया— "किसी भी मार्ग का अनुसरण कर, अनुज सहित वानरी सेना से घिरे हुए कोशलेस राम, रावण को मारकर मुझे अपनी नगरी ले चलें। सीता ने पूर्ण विश्वास तथा दृढ़ प्रेम के साथ हनुमान् से कहा। फिर उन्होंने राम द्वारा अपने प्रति निश्चल प्रेमवश किये गये कृत्यों का स्मरण कर अपने विश्वास को और भी अधिक पुष्ट करना चाहा।" इसकी व्याख्या निम्न प्रकार है—

येनकेनचिदुयेत्यवर्त्मनासानुजः प्लवगसेनया वृतः।
रावणं सहबलं निहत्य मां स्वां पुरीं नयतुकोसलेश्वरः।।"[2]

'रघुवीरचरितम्' को प्रभावित करने वाला 'रामचरितम्' के कवि अभिनन्द ने सीता द्वारा स्वयं को शीघ्र वापस ले चलने की प्रार्थना राम से निवेदित करने का अनुरोध क्रम तो अपनाया; किन्तु राम की ओजस्विनी कीर्तिकथा को नहीं दुहरायी है बल्कि प्रकारान्तर से उपालम्भ दिलाना उचित समझा है जैसाकि निम्नलिखित श्लोक से सुस्पष्ट है—

"कुरूतामियं किमथनाथ मैथिलीशिथिलकुलायमसर्वास्त्यजन्त्यमी।
शरसंक्रमंघटयशीघ्रमम्बुधो यदिमा निनीषसि निशा चरालयात्।।"[3]

---

1. रघुवीरचरितम्, 13/44–47
2. रघुवीरचरितम्, 13/52
3. रामचरितम्, 20/15–17

उक्त भाव काव्य–गरिमा कारक तो अवश्य है लेकिन सहज प्रतीत नहीं होता।

'रघुवीरचरितम्' के मल्लिनाथ 'रामचरितम्' काव्य से अभिप्रेरित तथा प्रभावित परिलक्षित होते हैं, कहीं भावनियोजन में , तो कहीं क्रम निर्वहन में, कहीं कथा सम्प्रेषण में, तो कहीं काव्यगतिक्षेपण में। वे 'रामचरितम्' काव्य के अन्य स्थलों से प्रभावित तथा अनुप्रेरित हैं। वे प्रसंग जहां नीति, मर्यादा–विषयक कथन हैं दोनों काव्यों मे सादृश्यता वर्तमान् है। सैन्य संचालन, व्यूह संरचना, समरभूमि चित्रण आदि तथा राक्षसी माया, छल, कपट, सम्मोहन की घटनाओं का भी अंकन समानता है।

ऐसे प्रसंग भी हैं जो दोनों काव्यो में सादृश्यता अलंकृत है तथा हमारा कवि 'रामचरितम्' से अगाध प्रेम–प्रभावित प्रतीत होता है। शुक सारण गुप्तचरों द्वारा सागर तट स्थित राम सेना का स्वबुद्धया परिचय प्राप्त कर जब रावण ने अपने विभिन्न मन्त्रियों, सेनाध्यक्षों, अन्य भटों स आसन्न स्थिति पर विचार–विमर्श प्रारम्भ किया और उसको प्रसन्न करने के लिए चाटुकारितापूर्वक वचनों द्वारा उसके ओज, शौर्यपूर्ण कृत्यो का गुणगान कर रघुवीर तथा उनकी वानर, भालुओं की टिड्डी सेना को भाग्यवशात् अपने ग्रास की उपस्थिति सामग्री कहकर आत्मप्रशंसा करने लगे। उसी अवसर पर उपिस्थत होकर विभीषण ने कुल गौरव तथा मर्यादा को अक्षुण्य रखने के लिए जो भी नीतिपूर्ण वचन कहे, वह निश्चय ही स्तुत्य है। 'रघुवीरचरितम्' में यह प्रसंग जिन स्थितियों तथा क्रम से उपस्थित किया गया है, वह पूर्णतया नहीं तो अंशतः 'रामचरितम्' की अनुप्रेरणा से प्रभावित प्रतीत होता हे। यथा–

क्षुद्रकपि का विक्रम आप और सभी योद्धागण देख चुके हैं। राम मनुष्य नहीं है (जो यह कवि कुल उनका अनुगामी बना हुआ है) धरती पर

यह राक्षसनाशकारिणी कोई परमदेवतारूपिणी शक्ति अवतरित हो गयी, मालूम पड़ती है। इसलिए पितरों के कोपशान्ति के निमित्त, अक्षयंचरित्रा सीता राम को समर्पित कर दें जैसा कि 'रघुवीरचरितम्' के अधोलिखित श्लोकों से स्पष्ट है–

"तेषामन्यतरस्येह कपोः क्षुद्रस्य विक्रमम्।
मिषतां नः सयोधानां कच्चिन्निर्विष्टवानसि।।
न परं मनुष्यों रामोऽयं कपिकुलानुगः।
पृथिव्या मुदिता कपि रक्षोध्नी परंदेवता।।
तत् पुलस्त्यं पुरस्कृत्य पितरं कोपशान्तये।
सीतामक्षय चरित्रां रामाधोपहर प्रभो।।"[1]

उपर्युक्त प्रसंग के वर्णनानुसार 'रामचरितम', का भी विभीषण कहता है–

"राम स्वयं हरि भगवान् तथा भूमिसुता सीता भी लक्ष्मी, सभी कपि देवपुत्र हैं। हृदय को निर्मल करो। कहाँ दशरथ–राम क्या साधारण योद्धा हैं? कपि–समूह क्या वनपशु हैं? लंका–दाह क्या भवितव्यता है, सीता सहित जाकर राम को समर्पित कर, प्रिय बन जाओ, लंका मे निःशंक आनन्द लाभ लो, कंकालकीर्णा की भाँति यह लंकापुरी ध्वस्त–दग्ध हुई। ये सारी घटनाएं क्या विस्मृत हो गयीं?

उपर्युक्त प्रसंग का स्पष्टीकरण 'रामचरितम्' के अधोलिखित श्लोकों मे उल्लिखित है जिससे आलोच्य महाकाव्य 'रघुवीरचरितम्' प्रभावित है–

"रामोहरिभूमिसुताऽपि सा श्रीस्ते देवपुत्राः कपयश्वसर्वे।
उन्मील्यतां चेतसिचिन्मयीदृकृतत्वानितेसत्वरमुदभवन्तु।।

---

1. रघुवीरचरितम् 14/53 से 55

"अवैथ योद्धाः रातशोहतारते दग्धे यगशैनपुरी रागरता।

किं विस्मृतकुद्धइवानुयहक्षे यन्मां महाराजतिषादहेतुग्।।"[1]

कपि सेना का प्रस्थान वर्णन भी अंशतः अनुप्रेरित तथा प्रभावी है। जैसेकि–

"प्रस्थानिकः कपिपतेर्माणिडिण्डिभानामाऽबरः सऽरोऽबस्मातताान्।

सर्वागिंकंन्दरपरिग्रहमेदुरोर्मिर्धमन्ति सम्भवइवाम्बुमुयां निनादः।।"[2]

उपर्युक्त श्लोक की सादृश्यता तथा प्रभावीभाव 'रघुवीरचरितम्' के निम्नलिखित सर्ग 15/8 व 9 श्लोकों से परिलक्षित होता है–

"करतलनिहतः कपिप्रवीरैरधेरितसिन्धुवैस्त्रिकुट शैलः।

घनसममसमीरसन्निपातद्रुतचलितद्रमचापलम् चकम्पे।।

कपिनिवः विधूयमानशैलप्रतिजनितोर्मिनिवरित स्व चिः।

भयविवशविवर्तसत्वरशिर्जलनिधिराकुलतां क्षणादवाय।।"[3]

सीता के समक्ष माया निर्मित राम का शीश उपिस्थत कर उनको छलने के उपक्रम का वर्णन निश्चित रूप से 'रामचरितम्' से प्रभावित तथा अभिप्रेरित है इसलिए भी दोनों काव्यों मे सादृश्यता परिलक्षित है जैसाकि दोनों ही काव्यों के अधोलिखित उद्धरण से स्पष्ट है– :रामचरितम्' का 25/2 श्लोक 'रघुवीरचरितम्' के सर्ग 15/27–28 श्लोकों की स्पष्ट सादृश्यता है–

"कृत्वामायावैभवेनारविन्द श्रीमद्वक्त्रम् रामचन्द्रोत्तमांगम्।

गत्वा दैव्यैदर्शयित्वा व्याघात् तां प्रागैवार्ता साहसाय प्रवृत्ताम्।।

---

1. रामचरितम् 23/71–73, 64
2. वही, 25/2
3. रघुवीरचरितम् 18/8–9

एषा गाया देवि! कपित्यजैनां देहत्यागायोधागां गितागिग्।
वाणज्वालो नैऋतारण्य वार्हन सत्यमदेवोयुद्धतेत्वां निनीषुः।।"[1]

इन दानों ही काव्यों की प्रभावात्मक स्थिति अधोलिखित प्रसंगों तथा श्लोकों से सुस्पष्ट है—

यहीं स्थिति इन्द्रजीत मेघनाथ वध के उपरान्त रावण द्वारा सीताहरणोपक्रम एवम् अयोध्या प्रस्थान से पूर्व साध्वी सीता की शुद्धता के परीक्षण में भी हम आभास करें तो अनुचित नहीं होगा कि हमारा आलोच्य काव्य 'रामचरितम्' से अनुप्रमाणित तथा प्रभावित है जैसा कि 'रामचरित' 21/12—24, 40/38,42,49 तथा 66; 'रघुवीरचरितम्' 15/27, 28 व 16/78—80।

वैदेही सीता अक्षय:—चरित्रा हैं तथापि राम ने उनकी परिशुद्धि के लिए उपक्रम किया। इस प्रसंग की प्रामाणिकता निमित्त हमारे कवि मल्लिनाथ ने 'रामचरितम्' काव्य से प्रेरणा तो कम पर निज संयोजन के निमित्त उसे सम्बल तथा अनुमोदक के रूप में ग्रहण किया। इस प्रकार सीता का औचित्य बाधित न हो सके एतदर्थ भी रघुवीरचरित के कवि ने स्वयं को अनालोच्य रखने के लिए 'रामचरितम्' में वर्णित अशोकवाटिका स्थित सीता स्वरूप को कल्पना में संसृष्ट किया है। हमारे कवि ने इस वर्णन प्रसंग को बहुत बचाया है तथा मर्यादा की रक्षा की है। नागपाश—बन्धन तथा गरूड़ द्वारा छेदन आदि मे कवि के मन मे निश्चित ही आर्ष कथनों का अवलम्बन अभीष्ट रहा होगा। भारतीय संस्कृति मे गरूड़ देवत्व रूप मान्य है। इस स्थिति में उनका दोषरहित रूपवर्णन होना आवश्यक है। इसके लिए पूर्व मनीषियों से प्रेरणा ग्रहण करना ही उपयुक्त है।

निष्कर्षतः इस प्रकार 'रामचरितम्' तथा 'रघुवीरचरितम्' मे प्रायः

---

1. रघुवीरचरितम्' 15/27—28

सन्दर्भ स्थापना से यह तथ्य प्रकट होता है कि आलोच्य महाकाव्य की रचना में हमारा कवि 'पूर्ववर्ती रामाश्रित काव्य 'रामचरितम' से प्रभावित हुआ है।

अन्य रामाश्रित महाकाव्यों का प्रभाव

'रघुचरितम्' की रचना में महाकवि भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्' तथा माघविरचित 'शिशुपालवधम्' का भी प्रभाव सन्निहित है।

भारवि तथा माघ की दोनों रचनाओं के प्रारम्भिक छन्द 'श्री' के प्रयोग से चरित नायक 'रघुवीर' में लोकअभीत्सा का समग्रतः निवेश अभिनिविष्ठ कर उठा है।

"श्रियः पति श्रीमतिशासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद् मनि।"[1]

"श्रियं कुयणां अधिपस्य शसितु।"[2]

"श्रियं शिवंधाम सदारसोदरः।"[3]

श्री शब्द के प्रयोग का एक प्रयोजन नायक के साथ नायिका का भी स्तवन तथा काव्य का द्वितीय प्रयोजन आनन्दानुभूति का आभास कराना है। 'श्री' का अर्थ लक्ष्मी है। यह श्री विष्णु की पत्नी रामावतार में सीतास्वरूप, कृष्णावातार में रूक्मिणीस्वरूपा बनी–

"राघवत्वे भवेत्सीता रूक्मिणी कृष्ण जन्मनि।"[4]

न केवल 'श्री' के प्रयोग की अनुप्रेरणा अपितु पूर्व रामाश्रित कवियों में व्यवहृत (प्रथम सर्ग के अन्तर्गत) छन्द वंशस्थ के प्रयोग की भी उत्प्रेरणा कदाचित् यहीं से कवि ने ग्रहण की है।

---

1. शिशुपालवध, 1/1/माघ
2. किरातार्जुनीयम्, भारवि
3. रघुवीरचरितम्, 1/1
4. विष्णुपुराण.

"जातो वंसरथ मुदीरित जरौ।"[1]

अद्रि, गुहा, उपत्यका, अवित्यका, सर, सरोवर, निर्झर, सरित तथा अन्य निसर्ग वर्णना का अनुशीलन पूर्व कवियों द्वारा अपनायी गयी रीति–परम्परा के अनुसार प्रायोजित करने की प्रतीति करा देती है। 'रघुवीरचरितम्' का नवम सर्ग ऋष्यमूक पर्वत का मनोहर रूप निम्नवत् प्रस्तुत करता है–

"क्वचन बिभ्रतमद्भुतपत्रिकां तटनिलीनम् रालकरलिताम्।
घनमधुद्रवमेदुरसौरभामं कमलिनिमलिनीलितपंकजाम्।।
प्रकृतसान्ध्यमनोकहपल्लवैस्तिमिरितां क्वचिदिन्द्रमणित्विषा।
परिणतद्विपदन्तपरिक्षतिस्थपुटितं पुटितं क्व च सानुभिः।।"[2]
"प्रकृतिसान्ध्य .... क्वचसानुभिः।"[3]

उपरोक्त चित्रण 'शिशुपालवध' में उपस्थित चतुर्थ सर्ग के रैवतक पर्वत के वर्णन के सदृश्य प्रभावित करता है। भाषा तथा वस्तु निरूपण मे साम्यता भले ही न हो, परन्तु भावाभिप्राय–निदर्शन का सादृश्य अस्वीकारा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं उपजाति वृत्त का प्रायेग दोनों की कवियों ने किया है। ऐसा ही चित्रांकन 'सुवेलगिरि' का भी अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त रामाश्रित काव्यों का रघुवीरचरितम् पर महत प्रभाव पड़ा है तथा हमारे महाकवि ने इसकी रचना में इनसे अनुप्रेरणा ग्रहण की है।

---

1. रघुवीरचरितम्, प्रथम सर्ग
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/2–7
3. शिशुपालवध, 4/8,9,13

महाकवि कालिदास के काव्यो का प्रभाव

महाकवि मल्लिनाथ, वाल्मीकि, अभिनन्द, भारवि तथा माघ आदि रामाश्रित कवियों की रचना से अभिप्रेत तथा प्रभावित तो हुए ही लेकिन महाकवि कालिदास के काव्यमृत का पान कर, उनकी रचनाओं से विनमिज्जित तथा अभिसिंचित होकर उनकी कृतियों की उदधि में गहराई तक मन्थन कर ज्ञान–मुक्ता का निस्सरण किया। उनके काव्यों की टीका करते हुए हमारे कवि मल्लिनाथ ने अर्जित ज्ञान की अभिवृद्धि तथा विस्तरण के लिए, प्रभावित तथा अनुप्रेरित होकर, 'रघुवीरचरतिम्' महाकाव्य का महाप्रसाद काव्य–जगत् को समर्पित किया है। इससे स्वयं सिद्ध है कि हमारे महाकवि, महाकवि कालिदास की रचनाओं से कितना प्रभावित तथा अभिप्रेरित हुए है।। इस तथ्य को आलोच्य शोध–प्रबन्ध के हमारे निर्देशक विद्वान्' मनीषी तथा आधुनिक वाड्ऋमय के अध्येता तथा 'कालिदास की कतियों पर मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श' के सर्वप्रथम प्रणेता डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी जी ने कालिदास तथा मल्लिनाथ के गहनतम विचारों की सादृश्यता तथा गतिमानता हेतुक अधोलिखित पुष्टयात्मक विचार अभिव्यक्त किया है–

"विद्वज्जनाः सुपरिचिताः मल्लिनाथेन, सत्यम् जानन्ति यन्मतल्लिनाथः तत्तन्महाकाव्यनि स्वटीकामिर्विभूषयन् यावद्गौरवं रघुवंशाय ददौ तावन्न कस्मैचन महाकाव्याय। तद्यथा, "कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती। चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विंदुर्नान्ये तु मादृशाः।" इति विलिख्य तेन सर्वोपरि महत्वं कालिदासभारत्याः (विशेषतया रघुवंशस्य) प्रतिपादितम्। रघुवंशसंजीवन्याः मंगलाचरणे सर्वाधिका नव श्लोकाः प्रयुक्त। एतदतिरिक्तं रघुवंशस्य प्रत्येकसर्गस्य टीकादौकृतमेकश्लोकत्मिकं मंगलाचरणं मल्लिनाथस्य रघुवंश प्रति श्रद्धां प्रकटयति। नैतादृशं विधिं मल्लिनाथोऽन्यत्रानुसरति। अतएव टीकाकर्तुः मनसि रघुवंशस्य प्रभावः

सविशेषमासीत्। रघुवंशस्याध्येतारः जानन्त्येव यद् रघुवंशवर्णनं कुर्वता महाकविना श्रीरामचरितमपेक्षतया सविस्तरं वर्णितम्। किन्तु वनगमनादारभ्य रावणवधपर्यन्तं चरितं तत्र द्वादशे सर्गे शतैकलघुकाय–श्लोकेष्येन निबद्धम्। त्रयोदशे सर्गे महाकविः विमानस्थश्रीराममुखेन लंकाऽयोध्यामध्य स्थानि मार्गवर्तिदृश्यानि वर्णयति। चतुर्दशस्य सर्गस्य एकाविंशतिलश्लोकपर्यन्तमेव श्रीरामस्यराज्यभिषेक वर्णनं परिसमाप्यते।"[1]

"तदैव रघुवीरचरितम् श्रीरामस्यवनवासवृतान्ते– नारभ्यते। षोडशे सर्गे रावणवधपर्यन्तं चरितं परिसमाप्तये। अस्यान्तिममे सप्तदशे सर्गे, रघुवंशस्य त्रयोदशसर्गस्य, चतुर्दशसर्गस्य एकविंशतितमस्य श्लोकस्य च वृतान्त उपनिबद्धः। अथ रघुवीरचरितमहाकाव्यं सप्तदशसर्गात्मकं वर्तते।

वाल्मीकिरामायणस्योपजीव्यमस्त्येव, रघुवंशमहाकाव्यस्याप्यस्मिन् गहनप्रभावः परिलक्ष्यते। रघुवीरचरितस्य सप्तदशेष्वपि सर्गेषु सम्पूर्णश्लोकाः त्रयत्रिंशत्यधिकासार्धैकसहस्रसंख्यकाः (1533) सन्ति। अतएवेदं रघुवंशसदृशं (1569 श्लोकाः) विपुलकायमस्ति।

रघुवीरचरितस्य प्रबन्धयोजनामवलोक्येदमनुमातुं शक्यते मल्लिनाथस्य मनसि रघुवंशे श्रीरामस्य वनवासगतचरितस्य संक्षेपेण खिन्नता संजाता यतः सः रघुवंशमनुसृत्य तन्नयूनतायाः पूर्तिः रघुवीरचरितं निर्भाया करोत्। रघुवीरचरितस्य कर्तृत्वविषये श्रीगणपतिशास्त्रिवर्यैः व्यक्तमभिप्रायं संभावनेयं कियद्दूरमनुसरत्यत्र विद्वान्सः प्रमाणम्। तथापि यदि कोलचलमल्लिनाथसूरि रेवास्य कर्ता, तेन त्वत्र महाकाव्यनिर्मितावपि रचव्यख्यातृप्रकृतिः नैव परित्यक्त। यतः रघुवीरचरितं, सूत्ररूपेण वर्णितस्य रघुवंशगतरामचरितस्यैव विशदव्याख्यानमस्ति।

1. डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, हस्तलेख– विद्वज्जनाः ....परिसाप्यते।
तदैव..................द्रष्टव्यः।
यथा ....सम्भवः।

यथोपरि संकेतितमेव रघुवीरचरितं रघुवंशमनुसरति। रघुवीरचरिते नवमसर्गस्य योजना रघुवंशस्य नवमसर्गमनुकरोति। रघुवीरचरितमहाकाव्ये नवमः सर्गामाल्यवान् पर्वतस्य वर्णनेन प्रारम्भते। रघुवंशस्य नवमसर्गसदृश। अस्यापि आरम्भे कतिपयपद्यानि दुतविलम्बिछन्दोबद्धानि, येषु रूचिप्रसन्नयमकालंकारो विराजते। एवं रघुवीरचरितस्य सप्तदशः सर्गः सर्वतोभावेन रघुवंशस्य त्रयोदशस्य सर्गस्य अनुकरणमेव। उदाहरणतया अनयोः महाकाव्ययोः कानिचित् स्थलान्यत्र प्रस्तूयन्ते–

(1) तैर्दत्तामृषिभिरवाप्यापर्णशारभांस्रगभाण्डेरजिनसमित्कुशैश्रव कीर्णाम्।
सानन्दं जनकसुतोपधानभूतप्रालम्बरिस्थरभुजमध्युवास रामः।।

अयं रघुवीरचरितस्य प्रथमसर्गस्यन्तिमः श्लोकः। अस्मिन रघुवंशस्य प्रथमसर्गस्यान्तिमस्य श्लोकस्य प्रभावः स्पष्टतया दृश्यते।

(2) निर्दिष्टांकुलपतिना सपर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रह द्वितीयः। तच्छिष्याध्ययन निवेदितावासानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय। एवमेव,

"मध्येकृत्य सुमध्यां तां जग्मतुस्तौ महौजसौ।

नयनानन्दिनीं सन्ध्यां सूर्याचन्द्रमसाविव।। 2/4 – श्लोके –ऽसिमन् रघुवंशस्य, "तदन्तरे सा विरराजधेनुनिर्दनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।" 2/20 श्लोकांशस्य द्रष्टव्यः।।"[1]

"यथा रघुवंशस्य प्रथमे सर्गे महाकविना, "सोऽहयाजन्मशुद्धा–नामाफलोदयकर्मणाम्। आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।। ....इत्यायिभिः श्लोकैः कुलक्स्य योजना कृता, तथैव रघुवीरचरितेऽति द्वितीय सर्गे त्रिंशत् श्लोकादारभ्य चतुस्त्रिशत् श्लोकपर्यन्तं कुलकं तदनुरूपतयैव योजितम् –

---
1. वही,

चतुर्वर्णस्थितिकृतां चतुराश्रमरक्षिणाम्। चतुर्वेदप्रवीणानां चतुरोदन्तसम्पदाम्।।

प्रशमे मुनिकल्यानां प्रकोपे रूद्रकर्मणाम।

प्रार्थिम्यः कल्पदारूणां प्रसादे शशिवर्चसाम्।।

स्वायत्तखिलसिद्धीनां स्वमनीषाप्तमन्त्रिणाम्।

स्वचापमात्रमित्राणां स्वदारनन्यदर्शिनाम्।।

बुद्ध्या बृहस्पतिजितां धैर्येणाक्षिपतां धरम्।

कान्त्या कन्दर्प तुल्यानां वीर्येणेन्द्रमतीयुषाम्।।

त्रिलोकीहर्म्यभूखेलत्कीर्तिज्योत्स्नाहिमत्विषाम्।

v kr ≊ k. kd fu 'B ku ka p kn "kka ; = 1 EHko %AA **[1]

अपि च रघुवंशस्य,?"दुदोंह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।" (1/26)

इत्यस्यभावो रघुवीरचरिते, "कुलस्य मित्रं युष्माकं देवराजः शचीपतिः।[2]

स वर्षेणोपकुरूते यूयमध्वरकर्मणा।।' (2/38)[3]

इत्यनेन शब्दान्तरेण व्यक्तः।

रघुवीरचरितस्य प्रथमे सर्गेवनवासिनो महर्षयः श्रीरामं स्तुवनितं–

"नवे दुकूले दधतश्रव मंगले तवाददानस्य च चीरचीववरम्।

समैवाजाता मुखकान्तिरित्यसौ जनश्रुतिः कापि धिनोति मादृशान्।।"

(1/32)[4]

---

1. वही,
2. रघुवंश, 1/26
3. रघुवीरचरितम्, 2/38
4. रघुवीरचरितम्, 1/32

"दधतो मंगलक्षौमेबसानस्य च बल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।।" (12/8)[1]
शोकस्य प्रतिच्छायामात्रमस्ति।
साम्यदृष्टया अधोलिखितः श्लोकसंग्रहो द्रष्टव्यः–

1. रघुवीरचरित – "स तत्र नानायुधवाहिनीभिर्निशाचरीमिर्गणशः परीलाम्।
ददर्श नारीं विषवल्लरीमिर्दुरासयां कल्पलतामिवैकाम्।।" (12/43)[2]
रघुवंशे – दृष्टा विचिन्वता तेन लंकायां राक्षसीवृता।
जाकनी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः।। (12/61)[3]

2. रघुवीरचरिते– "सफेदबुद्बुदः सिन्धुर्विभक्तो नलसेलुना।
सीमन्तित इवाकाशङ्गश्छायामार्गेण स ग्रहः।। (15/135)[4]
रघुवंशे –वैदेहि! पश्याऽऽमलयाद्विभक्तांमत्सेतुना फेनिलमम्बु राशिम्।
छायायथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशभविष्कृतचारूतारम्।। (13/2)[5]

3. रघुवीरचरितम् – "अमोघे रामवाणौधैः पतितेष्वपि मूर्धसु।
न ययुः प्रत्ययं देवास्तत्प्रत्यापत्तिशंकया।।" (16/64)[6]

---

1. रघुवंश, 12/8
2. रघुवीरचरितम्, 12/43
3. रघुवंश, 12/61
4. रघुवीरचरितम्, 15/35
5. रघुवंश, 13/2
6. रघुवीरचरितम्, 16/64

रघुवंशे – मरूतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतिता न्यपि।
मनो नातिविश्वास पुनः सन्धान शंकिनाम्।। (12/101)[1]
4. रघुवीरचरितम् – अस्याम्बुतल्पीकृतशेषभोगः श्रिया भुवा चानुगृहीतकामः।
नाभिसरोजस्थितपद्मयोनिस्तुतोऽधिशेते भगवानमुकुन्दः।। (1714)[2]
रघुवंशे – नाभिप्ररूढाम्बुरूहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरूषोऽधिशेते।। (13/6)[3]
5. रघुवीरचरित – क्वचिच्चनीचैः क्वचिदुच्चवृत्ति क्वचित्समंवर्त्म विगाहते च।
मनोनुकूलप्रसरमहिम्ना निजेन यात्येवमिदं विमानम्।। (17/18)[4]
रघुवंश – क्वचित् पथा सत्चरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ।। (13/19)[5]
6. रघुवीरचरितम्– तिरोभवद् दूरतयाव्यतीतं पश्य प्रदेशान्तरमब्धिपरि।
क्रमेण यत्सूक्ष्मतरं निपीतं धूमोद्गतेमेव मलीमसेन।। (17/20)[6]
रघुवंशे– कुरूष्व तावत्करभोरू। पश्वान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि! दृष्टिपातम्।

---

1. रघुवंश, 12/101.
2. रघुवीरचरितम् 17/14
3. रघुवंश, 13/6
4. रघुवीरचरितम् 17/18
5. रघुवंश, 13/19
6. रघुवीरचरितम् 17/20

एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः।। (13/18)[1]

7. रघुवीरचरितम्– इदं पुरस्ताद् वनमन्यदत्र शुचिस्मिते! दिष्टमदर्शयन्मे।
पदाम्बुजात्प्रच्युतमंशुजालैः स्मेरं मनोज्ञैर्मणिनुपूरं ते।। (17/37)[2]

रघुवंशे– सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मयानूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृष्यतत्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्।। (13/23)[3]

8. रघुवीरचरितम्,–अस्मासु पूर्वं विपिनोन्मुखेषुत्वत्प्रार्थितार्थ निरवर्तयद् यः।
श्यामो वटः सोऽयममुं प्रणम्यश्रेयांसि गन्तासि मनोगतानि।। (17/67)[4]

रघुवंशे – त्वया पुरस्तादुपयाचितोयः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारूडानांसपदृमरागः फलितो विभाति।। (13/53)[5]

अत्र केषुचिच्छ्लोकेष्वेव साम्यं प्रदर्शितम्। वस्तुतः रघुवीरचरितस्य सप्तदशसर्गस्य द्विसप्ततिश्लोकपर्यन्तमं शं रघुवंशस्य त्रयोदशसर्गस्य प्रतिकृतिरेव।

विद्वान डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी के उपर्युक्त युक्तिपूर्ण सादृश्य तथा प्रभाव का अनुकृत प्रतिबिम्बन रघुवीरचरितम् पर हुआ है। उसमे कालिदास की महाकाव्यीय कला का वैचारिक तादात्म्य महाकवि मल्लिनाथ की सर्वोत्कृष्ट रचना की लयात्मकता तथा तादात्मकता का सम्पुट है। अतः निर्विवाद है कि मल्लिनाथ सूरि 'रघुवीरचरितम्' की सुन्दर रचना मे महाकवि कालिदास की रामाश्रित रचनाओं से सम्यक्रूपेण

---

1. रघुवंश, 13/18
2. रघुवीरचरितम्, 17/36
3. रघुवंश, 13/23
4. रघुवीरचरितम्, 17/67
5. रघुवंश, 13/53

प्रभावित तथा अनुप्रेरित है। मल्लिनाथ से सुपरिचित विद्वत्जन यह भली भाँति जानते हैं कि मल्लिनाथ तत्तत् महाकाव्यों को अपनी सुन्दर टीकाओं से विभूषित करते हुए जितना महत्त महाकवि कालिदासकृत रघुवंश को प्रदान किाय उतना अन्य किसी महाकाव्य को नहीं। जैसाकि

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखेऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः।।

ऐसा लिखकर मल्लिनाथ ने सबसे अधिक महत्त्व कालिदास की वाणी (विशेषकर रघुवंश) को प्रतिपादित कियाः किन्तु रघुवंश महाकाव्य की रिक्तता से मल्लिनाथ अत्यन्त व्यथित हुए और इसकी पूर्ति तथा समाधान के लिए उन्होंने 'रघुवीरचरितम्' की रचना कर डाली जिसके प्रमाण मे डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी का उद्धरण प्रस्तुत है—

"रघुवीरचरितस्य प्रबन्धयोजनाभवलोक्येदमनुमातुं शक्यते यद्दीकारतुः मल्लिनाथस्य मनिस रघुवंशे श्रीरामस्य वनवासगतचरितस्य संक्षेपेण खिन्नता संजाता यतः सः रघुवंशमनुसृत्य तन्नयूनतायाः पूर्तिः रघुवीरचरितं निर्मायाकरोत्।"[1]

इस प्रकार स्वयंसिद्ध है कि सम्पूर्ण समग्रता को समेटे हुए 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य रघुवंश का प्रभावित पूरक है।

मल्लिनाथ रघुवीरचरितम् के चित्रण मे 'शिशुपलवध' से भी प्रभावित है जैसाकि इस महाकाव्य का नवम सर्ग ऋष्यमूक पर्वत का रम्य रूप प्रस्तुत करता है—

"कववचन विभ्रतमदभुत ———पंकजाम् ।"[2]

1. डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, रीडर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, हस्तलेख
2. रघुवीरचरितम्, 9/2, 7

यह चित्रण 'शिशुपालवध' मे उपस्थित चतुर्थ सर्ग के अन्तर्गत रैवतक गिरि के वर्णन का सादृश्य धारण करता है। भाषा या वस्तु संयोजन मे साम्य भले न हो लेकिन भावभिप्राय नियोजन में सादृश्यता है जैसाकि स्पष्ट है

"प्रकृतरान्ध्य ———————— ववचरानुगि:" ।।[1]

"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ ————————जातिष्ववमेवामाम् ।।"

महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' में तद्वंशीय नरेशों के शौर्य, पराक्रम तथा मर्यादित जीवन से समुन्नत प्रशस्तचरित का गान किया है। रघुवीरचरितम् का कवि भी इसी का अनुसरण इस प्रकार करता है–

"उन्नतोऽयं महानवंशः श्रीमानिक्ष्वाकुसंश्रयः।
दृढ़मूलतया नासौ मरूद्भिरपि बाध्यते।।"[2]
"आर्तानुकम्पा साधुनां रक्षणं खलनिग्रह।
रणेषु विजयश्रेति वतानि नियतानिवः।।"[3]

छन्द में भी दोनों में अनुष्टुप प्रयुक्त है–
"श्लोके षष्ठं गुरूज्ञेयं सर्वत्र लघुपंचमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो।।"

भावानुप्रेरणा दोनों ही महाकाव्यों मे परिलक्षित है। यह देखों, हम क्षणभर मे समुद्र के उस तट पर पहुँच गये, जहाँ वालू पर सीपों के प्रसारित हो जाने पर मुक्ताराशि बिखर पड़ी है तथा फलभार से सोपाड़ी के वृक्ष झुके हुए हैं।

---

1. शिशुपालवध, 4/8, 9, 13
2. रघुवीरचरितम्, 2/28, 33, 37, 39
3. रघुवंश, 1/5–10

ठीक ऐसा ही चित्रण रघुवीरचरितम् में भी है। वृक्ष सोपाड़ी के नहीं, इलायची के है–

"एतेवयं सैकतभिन्नशूक्तिपर्यन्तमुक्तापटलं पयोधः।
प्राप्तामुहर्तेन विमानवेगाकूलफलावर्जितपुंगमालम्।।"[1]

"बेलेयमेलाफलगन्धगर्भैः समीरर्णैवंसित सैकतौश्रा।
आलोकनीया शुभशुक्तिमाला निष्ठयूत मूक्तवलिदं तुरान्ता।।"[2]

अधोलिखित प्रसंग भी दोनों महाकाव्यों में प्रभावात्मक सादृश्यता तथा साम्यता है–

पर्वत पर वर्षाकाल व्यतीत करने वाले राम उन क्षणों का स्मरण करते हुए, वह स्थल सीता को निर्दिष्ट करते हैं, जहाँ एकाकी कातर हुआ करते थे (सीता के वियोग में)। उस समय वर्षा के कारण पोखरों में उठी सोंधी गन्ध ा, अर्द्धविकसित मंजरी, सनाथकदम्ब, पुष्प पर भौंरों के मनोहर गुंजन तुम्हारे वियोग में सन्तापकारी थे। जब बादल का गर्जन तथा गुफाओं से उठती उसकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती तो तुम्हारा स्मरण हो जाता था। तुम सोच नहीं सकती, वे दिन मैंने कितने कष्ट से बिताये। यथा–

"गन्धश्व धाराहतपल्लवानां कादम्बमर्थोद्गत केसरं च।
स्निग्धाश्वकेकाः शिखिनां वभूवुर्यस्मिन्नसह्यनिविनात्वयामे।।"
"पूर्वानुभूत स्मरता ——————गर्जितानि।"[3]
"पयोदपातैः सकदम्ब ——————वासवार्ता।"[4]

---

1. रघुवंश, 13/17
2. रघुवीरचरितम्, 17/17
3. रघुवंश, 13/27–28
4. रघुवीरचरितम्, 17/33–34

इसी प्रकार गंगा, यमुना औरवटवृक्ष के रूप चित्रण की अभिप्रेरणा भी कदाचित् रघुवंश से ही हमारे कवि को प्राप्त हुई है– "सुन्दरी! देखो, यमुना की साँवली लहरों से मिली हुई उजली लहरों वाली गंगाजी कैसी सुन्दर लग रही है। कहीं तो यह चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से ग्रथित माला सदृश, कहीं नील होने पर श्वेत कमलों से समन्वित माला सी। कहीं साँवले रंग वाले हंसो एंव श्वेत वर्ण राजहंसों की पंक्ति सी प्रतीत होती है, कहीं श्वेत चन्दन से चित्रित पृथ्वी पर स्थान–स्थान मध्य भाग श्यामवर्ण की अमरू से चित्रित। यथा–

"क्वचित्प्रभालेपिभि ———————चन्दनकल्पितेव।"[1]

"एते समुद्रभिमुखं.————————कलिन्वकन्ये।"[2]

इससे पूर्व के छन्द में उस वटवृक्ष का वर्णन है जिससे सीता ने मनौतियाँ की थी–

"काला – काला यह वहीं विशाल वटवृक्ष है जिसकी तुमने मनौतियाँ मानी थी। लालरंग की फली पिप्पलियों को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि नीलमराशि में लाल भरे पड़े हैं। इसका प्रमाण पूर्व में दोनों महाकाव्यों के श्लोक में दिया जा चुका है।

उपयुक्त सन्दर्भो से यह स्पष्ट है कि हमारा कवि महाकवि कालिदास की कथा–प्रबन्ध, घटना तथा संघटन एवम् उसकी गत्यात्मकता की परिधि में विचरा है,यहीं कारण है कि कतिपय परिवर्तन के साथ वह वह सारी ही घटनाएँ तथा लंका से अयोध्या नगरी लौटने पर विमान से दृष्टिपथ पर अवतरित होने वाले स्थल लगभग उसी क्रम में प्रस्तुत होते हैं। जैसे– रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में।

1. रघुवंश, 13/54–55
2. रघुवीरचरितम्, 17/65–66

यत्र तत्र का वर्णन यह भी परिलक्षित कराता है, यथा कवि कुछ विस्मृत कर गया तो उसे तुरन्त किंचिद् पश्चात संयोजित कर दिया है।

कालिदास ने गंगा–यमुना के वर्णन से पूर्व श्यामवट उपस्थित किया तो 'रघुवीरचरितम्' के कवि ने दोनों पुण्य नदियों के वर्णन के उपरान्त उसे प्रस्तुत किया। कुछ स्थलों पर तो कवि अत्याधिक प्रभाव से आबद्ध है। अपनी मौथलिकता कीरक्षा हेतु कुछ क्रमों को परिवर्तित कर देता है। सेवा में दक्ष सुग्रीव के हाथों के सहारे स्फटिक मणियों से मार्ग दिखाते चले (रघुवंश) तथा दुर्दान्त रावण के कपोल को मर्दित करने में दक्ष सुग्रीव के पाणि का अवलम्बन ग्रहणं कर पौलस्त्य द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर देवयान से उतरे (रघुवीरचरित)। यथा–

"तस्मात्सुर सरविभीषणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्त।
यानादवातरद्दूरमहीतले न मार्गेणमंगिरचितस्फटिकेन रामः।।"[1]

"दुर्दान्त रावणकपोलचपेटदक्षं सुग्रीवपाणिमवलम्ब्यकरेण देवद्धः।
पौलस्त्यदर्शितवधोऽवत्तारं यानात् तच्चन्ययुड्क्तसपदिद्रविणेश्वराया।।"[2]

अधोलिखित प्रसंग में भी हमारा कवि महाकवि कालिदास से अनुप्रमाणित तथा प्रभावित है–

अगवानी के लिए गुरूजन, आमात्यवृन्द, परिजनसहित आते हुए भरत के रूप–बिम्ब का चित्रण सर्वथा कालिदास से प्रभावित है– "चीर धारण किये हुए, हाथ मे पूजनोपकरण, पैदल, मन्त्रियों के साथ यह भरत चले आ रहे है।, आगे–आगे वशिष्ठजी और पीछे–पीछे सेना। किसी युवा पुरूष की गोद मे जैसे कोई सुन्दरी युवती बैठ जाय, पर वह उसका उपभोग न कर सके, तलवार की धार पर

1. रघुवंश, 2/13–69

2. रघुवीरचरितम्, 17/76

चलने के सामान इन्द्रियों को वशीभूत कर लेने का व्रत स्वीकार ले तथैव भरत ने भी पिता द्वारा प्रदत्त राज्यलक्ष्मी का भोग करने में समर्थ रहकर भी मेरे कारण भोग न कर कठिन असिधार व्रत का सा पालन किया है। यथा—

''असौपुरस्कृत्यगुरूपदातिपश्वादवसथा पितवाहिनी कः वृद्धै रमात्यः सह चीरंवातसामाभर्ध्यपाणिर्भरतोऽभ्युपेति।''

''पित्रकिसृष्टा ————————— व्रतमासिधारम् ।''[1]

''अस्तोपचारोच्छ्वसितांगरेखोमत्पादुकोत्तसजतानिबन्धः।

चीराम्बरानद्धकटिः क्रशीयानयमुनीनामपि कौतुकाय।।

युवाप्ययंदाशरथि ———————मेध्यमिदकुर्लनः।।''[2]

'रघुवीरचरितम्' 'रघुवंश', से अन्य स्थलों पर भी प्रभावित परिलक्षित है। यथा शरभंग ऋषि का आश्रम , चित्रकूट, प्रवहमान् मन्दाकिनी, निषाद—राज नगरी आदि।

''यह आगे शरणागत की रक्षा करने वाले शरभंग ऋषि का तपोवन है, जिन्होंने चिरकाल तक अग्नि को समिधा से तृप्त करके अपना शरीर ही अन्त में हवन कर दिया। हे सुन्दरि! मस्त साँड़ के समान यह चित्रकूट पर्वत मुझे बड़ा सुवाहना लग रहा है। इसकी गुफा ही इसका मुख है, इससें निकलने वाली जल की धारा का शब्द ही साँड़ का डकार है, इसकी चोटी ही उसकी सींगे हैं और उस पर छाये हुए बादल ही मानों सींगों पर लगी हुई कीचड़ है।

मन्दाकिनी आ गयी, जल कितना निर्मल ओर मन्दगति से बह रहा है।

---

1. रघुवंश, 13/66—67
2. रघुवीरचरितम्, 17/71—72

दूर होने के कारण कितनी पतली दिखायी दे रही है। पर्वत के नीचे बहती हुई ऐसी जान पड़ रही है मानों धरतीरूपी नायिका के कण्ठ में मोतियों की माला पड़ी हो। आगे यह निषादराज की नगरी है, जहाँ मैंने मुकुटमणि उतारकर जटा बाँधी थी और यह देखकर सुमन्त यह कहते हुए रोने लगे थे, "हे कैकेयी! तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो गयी।

इस प्रकार हमारा कवि कालिदास की रचना से अनुप्रेरित तथा प्रभावित होते हुए भी अपनी मौलिकता का त्याग नहीं किया है। ऋषि शरभंगाश्रम, मन्दाकिनी आदि के वर्णन की उद्भावना की उत्प्रेरणा तो अवश्य रघुवंश वर्णन से हुई है, परन्तु क्रम या स्वरूप आदि का चित्रण अत्याधिक प्रभावक है। स्थलों को एक ही क्रम से श्रृखंलाबद्ध कर दिया है। यथा –

"अदः शरण्यं शरभगं नाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्ने।
चिराय संतर्प्यसमिद्भिरग्निं यौमंत्रपूतो तनुमप्यप्टैणीत्।।
"धारास्वनी ——————फलितास्ववेति।"[1]
"यास्यन्नं ———— भूषणताविमाति।।"[2]

इसी प्रकार थोड़े परिवर्तन के साथ समुद्र तथा समुद्र–सेतु का वर्णन भी कालिदास का प्रभावक है–

हे सीते! इस फेन से भरे हुए समुद्र को देखो जिसे मेरे बनाये हुए पुल ने मलय पर्वतपर्यन्त दो भागों में उसी प्रकार विभाजित कर दिया है। जैसे सुन्दर तारों से परिपूर्ण शरद् ऋतु के आकाश को अकाशकगंगा बाँट देती है।

---

1. रघुवंश, 13/45, 47, 48, 59
2. रघुवीरचरितम्, 17/58–61

संस्कृत महाकाव्य परम्परा में रघुवीरचरितम् का स्थान

आदिकवि वाल्मीकि–

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा सुदीर्घ है। महाकाव्य वाल्मीकि रामायण हमारा आदिकाव्य है। महर्षि वाल्मीकि हमारे आदिकवि हैं। यहाँ से लौकिक संस्कृत में रचित महाकाव्यों की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। वाल्मीकि की रसमय पद्धति को हम सुकुमार मार्ग कहते हैं रस ही उसका जीवन है। स्वाभाविकता उसका भूषण है। परवर्ती कालिदास ने इसी शैली का अपनाकर विश्व में ख्याति अर्जित की है।

महाकवि कालिदास–

कालिदास भारतीय तथा पाश्चात्य उभय दृष्टियों से संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। चाहे वह नाट्यकला की सुन्दरता हो चाहे काव्यवर्णन की छटा। गीतिकाव्य के सरस ह्रदवोद्गार का एक ओर आकर्षण है तो दूसरी ओर श्रृंगार का रसराजत्व। अतः उनकी काव्य प्रतिाा सर्वतिशयिनी है।

विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न महाकवि कालिदास उनकी सभा के श्रृंगार थे। काव्यग्रन्थों के निरूपण में उनकी प्रथम कृति ऋतुसंहार है। जिसमें षडऋतु वर्णन अतीव सरस एवं हृदयग्राही हुआ है।

"कुमार सम्भवन" सप्तदश सर्गो का एक महाकाव्य है। कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म का वर्णन किया है।

मेघदूतम में वियोगविधुरा कान्ता के पास यक्ष का मेघ के द्वारा प्रणय सन्देश भेजना कवि की अपनी मौलिक कल्पना है। रघुवंश महाकाव्य भी लोक प्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से भी प्राप्त होता है। यह कवि का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है 'क इह रघुकारे नरमते' यह सूक्ति प्रसिद्ध है।

अश्वघोष–

बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष का महाकाव्य 'सौन्दरनन्द' अत्याधिक चर्चित है। बुद्धरचित महाकाव्य तथागत के सात्विक निर्मल जीवन का सरस विवरण प्रस्तुत करता है। सौन्दरनन्द अष्टादशसर्गीय महाकाव्य है जिसमें यौवन सुलभ उद्याम काम तथा धर्म के प्रति जागरित प्रेम के विषय संवर्ष को भव्य भाषा में चित्रित किया गया है।

भारवि–

दक्षिण भारत के महाकवि थे। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य इनकी धवल यश पताका है जो महाभारत के सुप्रसिद्ध आख्यान पर आधारित है। अष्टादश सर्गो में अर्थगौरव का चमत्कार दर्शनीय है। राजनीति की विवेचना अनुपम है।

भट्टि–

कवि का विशंति सर्गीय महाकाव्य भट्टिकाव्यम् नाम से विख्यात है जिसमें श्री रामकथा वर्णित है। व्याकरण एंव अलंकार शास्त्र से समृद्ध यह महाकाव्य अपने आपे में अनुपम है।

कुमारदास का रामकथा पर आधारित जानकीहरण महाकाव्य अनुपम है इसमें 20 सर्ग हैं। रामविजय के साथ यह काव्य पूर्णता का प्राप्त होता है।

माघ–

महाकवि को शिशुपालवध महाकाव्य श्रीमद् भागवत और महाभारत के कथानक से संयुक्त है। इसमें 20 सर्ग है। 'माघे सन्ति त्रयोगुणाः' के अनुसार इनका महाकाव्य विद्वज्जनों में बहुशः समादृत हुआ है।

रत्नाकार कश्मीरी महाकवि थे जिनका हरविजय महाकाव्य प्रसिद्ध है। 50 सर्गो वाला यह महाकाव्य संस्कृत रामायणमंजरी, भारतमंजरी, वृहत्

कथा मंजरी दशावचरित एंव अवदान कल्पलता प्रसिद्ध है।

मंखक का श्रीकण्ठचरित एक महाकाव्य है। ये कश्मीरी कवि थे। श्री हर्ष वाणी के वरदपुत्र थे। 22 सर्गो वाले नैषधीय महाकाव्य को लिखकर सदैव के लिये अमर हो गये। जिनके लिये प्रसिद्ध है– "उदिते नैषधे काव्ये क्व माधः क्व च भारविः" वस्तुपाल कवि विरचित महाकाव्य में 16 सर्ग हैं महाभारत की कथा पर आधारित है।

पद्यगुप्त परिमल का संस्कृत में सर्वप्रथम विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य नवसाहसांक चरित है।

विल्हण कश्मीरी महाकवि द्वार चरित महाकाव्य विक्रमांकदेवचरितम् 18 सर्गो में निबद्ध है।

नयचन्द्र सूरि का महाकाव्य हम्मीर महाकाव्य वीररस का अप्रतिम निदर्शन है।

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा है। जिसमें एक से एक लोकोत्तर 'महाकवियों के महाकाव्यों का दर्शन प्राप्त होता है।

रामाकाव्य परम्परा–

जानकीपरिणय लोकनाथ तथा अम्मा के पुत्र चक्रकवि की रचना अतीव श्रेष्ठ एंव ह्रदयस्पर्शी है। सत्रहवीं शताब्दी की यह रचना आइ सर्गो मे निबद्ध है। जिसमें सीता स्वयंम्बर एवं विवाह की कथा को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

'उदार राघव' साकल्यमल्ल द्वारा विरचित है। इसमें सम्पूर्ण रामायण का सारांश निहित है।

सुरथोत्सव महाकाव्य के रचयिता सोमेश्वर जिसमें पन्द्रह सर्ग प्राप्त होते हैं।

हरिवंश सारचरित के रचयित गोविन्द हैं जो सोलहवीं शताब्दी मे हुये। यह काव्य 23 सर्गो मे निबद्ध है।

रामचन्द्रोलय नामक महाकाव्य 30 सर्गो मे रामायण की कथा का सुविस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है जिसके रचयिता वेंकटेश्वर हैं। इनके अतिरिक्त रामकाव्य परम्पंरा के कुछ अन्य ग्रन्थ भी दर्शनीय हैं

जैसे– भासकृत–प्रतिमानाटकम्, कालिदासकृत–रघुवंशमहाकाव्यम्, दिद्रनागकृत–कुन्दमाला, भट्टिकृतम भट्टिकाव्यम् भवभूतिकृतम्–महावीरचरितम् मुरारिकृतभः – अर्नघराघवः क्षेमेन्द्रकृता रामायणमंजरी एंव भोजराजकृतः रामायण चम्प्।

रघुवीरचरितम् महाकाव्य एक परवर्ती महाकाव्य है जो इस महाकाव्य परम्परा में बहुत बाद में अनन्त शयन ग्रन्थावली में प्रकाशित हुआ है। इसमें श्री रामचन्द्र जी के वनवास से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। स्रपदश सर्गात्मक इस महाकाव्य में प्रौढि तथा व्युत्पत्ति का प्रदर्शन है। कोलाचल मल्लिनाथ विरचित यह महाकाव्य परम्परागत रामकाव्यों से कई बिन्दुओं पर भिन्नता एंव अपनी अलग विशेषता रखने के कारण ही इसका वैशिष्ट्य है।

इन सभी रामकथात्मक महाकाव्यों मे विवेच्य महाकाव्य रघुवीरचरितम का विशिष्ट स्थान है। जिसका विवेचन सम्पूर्ण से मेरे द्वारा इसी शोध ग्रन्थ में यथावसर किया गया है। विष्टपेषण एवं पुरावृत्ति से बचने के लिये यहाँ इतना ही परिचय में पर्याप्त समझती हूँ।

●

तृतीय अध्याय

मल्लिनाथ सूरि का जीवन परिचय, स्थितिकाल, कृतित्व

मल्लिनाथ सूरि का जीवन–परिचय, स्थिति काल और कर्तृत्व

महाकवि, लेखक, टीकाकार, चिन्तक, विचारक, दार्शनिक आदि मनीषियों का जीवन–परिचय उनकी जन्मजात परिस्थितियों का बोध कराता है। जिस आत्म बोध की समिधा से वे अपने स्वतः मौलिक ज्ञान–यज्ञ को सम्पन्न कर साहित्य–संसार को सन्तृप्त तथा अभिप्लावित करते हैं जिस ज्ञान की पीयूषध ारा में सम्पूर्ण मानवता अभिसिंचित होती है। उनका कार्यकाल भी उन्हें भाव अभिप्रेरणा की ओर आकर्षित कर भाषा के माध्यम से तत्कालीन स्थितियों मे स्नात होकर विचार तथा दर्शन को लयात्मक रूप से प्रवाहित करता है। इन द्वय तत्त्वबोध से तरंगित होकर उनका कर्तृत्व प्रकाशित होता है, जो युगों–युगों तक सम्पूर्ण मानवता को युगबोध कराता है। वे सार्वभौम अपितु सार्वभौमिक है।

मनीषी श्री मल्लिनाथ सूरि ने अपने जीवन के प्रथम स्वर्णिम भास्कर का दर्शन कब और कहाँ किया? यह प्रायः पूर्णरूपेण सुनिश्चित नहीं है। महाकवि कालिदास की भाँति महान् टीकाकार एंव कवि मल्लिनाथ सूरि का भी जन्म समय प्रायः अनिश्चित है। यद्यपि प्रमाणों तथा साक्ष्यों द्वारा उनके जन्म, समय का पता लगाया जा सकता है। साथ ही जन्मस्थान का भी जोकि इस शोधप्रबन्ध के अधोलिखित विचारों के अवगाहन से स्वयं सुस्पष्ट तथा तारांकित हो सकेगा।

मल्लिनाथ 'कोलाचल' उपनाम के परिवार के थे, क्योंकि उनके नाम के पूर्व यह उपनाम (कोलाचल) प्रयुक्त हुआ है। आन्ध्र प्रदेश की सनातन–परम्परा

के अनुरूप मल्लिनाथ के नाम में पहले अंकित 'कोलाचल' पद उनके परिवार के मूलस्थान को व्यक्त करता है।[1] इस ग्राम के मूलस्थान की निश्चितता हेतु विद्वानों द्वारा खोज का प्रबन्ध किया गया। कतिपय विद्वान् इस वंश के प्रारम्भिक अभिज्ञान के इतिहास को संज्ञान में लेकर अपना विचार व्यक्त करते हैं कि 'कोलाचल' को पण्डिपादू (Pandipadu) का संस्कृत रूप मानते हैं। 'पण्डि' का अर्थ तेलुगू–भाषा मे शूकर होता है ओर 'पादु' स्थानों के नाम के अन्त में लगने वाला प्रत्यय है।[2]

इसी प्रकार अपने नाम से पूर्व 'कोलिचिन' ओर 'कोलचन' पद धारण करने वालों ने मल्लिनाथ को अपनी पारिवारिक–परम्परा से जोड़ने के प्रयत्न किये हैं।[3]

इस परिवार के प्रारम्भिक चिन्तन से यह ज्ञात होता है कि यह वंश पहले 'वारांगल' (Warangal) और राककोण्डा (Racakonda) के राजदरबारों से सम्बन्धित रहा। तेलगांना में 'कोलाचलमयुरी' नामक एक ग्राम है जिसका उल्लेख 'वेलुगोतिवरिवंशावली' (Velugoti varivansavali) में हुआ है।[4] अतएव सर्वाधिक सम्भावना यही है कि इस परिवार का मूलस्थान यहीं गाँव रहा।[5]

श्रृंगेरी मठ के एस० वैद्यनाथ शास्त्री ने श्री के०पी० त्रिवेदी को सूचित किया था कि 'कोलाचलम' वेंकटराव और कोलाचलम श्रीनिवास, ये दोनों भाई हैं जो मल्लिनाथ के वर्तमान वंशज कहे जाते हैं। कोलाचलम वेंकटराव को, जो जिला अदालत काडप्पा में वकालत करते थे। श्री के०पी० त्रिवेदी ने पत्र दिया था। उसके उत्तर में उन्होंने 6 अक्टूबर सन् 1901 ई0 को जो पत्र

---

1. Dr. P. Sri Ramamurti Contribution of Andhra to Sanskrit Literature, 1972. p. 110
2. वहीं
3. वही
4. वही
5. वही

भेजा उसमें अपने पूर्वज मल्लिनाथ की विस्तृत जानकारी के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की और लिखा कि "मल्निाथ' भगवान् शिव का स्थानीय नाम है तथा कोलाचल अथवा 'कोलचर्ल' एक गांव है।" इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता हे कि कोलाचल अथवा कोलचर्ल गांव काडप्पा जिला में अथवा उसके आस–पास ही कहीं अवस्थित होगा।

अन्तःसाक्ष्यों से मुखर होता है कि 14वीं–15वीं शताब्दी में यह गाँव एक शक्तिशाली जमींदार के अधिकार में था। वह जमींदार उत्तर से आने वाले विद्वानों, पण्डितां का परमभक्त तथा अनुरक्त पूजक था। मल्लिनाथ भी उस जमींदार के आस्थान पण्डित थे।[1] इसके विपरीत 'पद् दुभट्ट–चरितम्' के अनुसार मल्लिनाथ का निवासस्थान देवपुर था।[2] डकन कालेज, पूना के पण्डित वामनाचार्य ने रघुवंशादि महाकाव्यों के टीकाकार मल्लिनाथ को काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण तथा इनका निवास गजेन्द्रगढ़ बताया है, जहाँ कि इनके वंशज आज भी रहते हैं। गजेन्द्रगढ़ धारवाड़ जिले में गडग मके समीपस्थ है; किन्तु यह सूचना अप्रामाणिक शब्दों पर आधारित है इसलिए सर्वथा असत्य है।[3]

"मल्लिनाथ के वंश का सम्बन्ध हमेशा किसी न किसी राज–परिवार से रहा। टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह की अभ्यर्थना राजा वीररूद्र ने की थी। इनका राज्यकाल 1886–1912 ई0 है।"[4] मल्लिनाथ का कनकाभिषेक सर्वज्ञसिंह भूपाल द्वितीय ने अपने 'षेडश यज्ञ' के सुअवसर पर किया था।[5] विजयनगर सम्राट् देवराय प्रथम ने भी मल्लिनाथ को वैश्यों के सम्बन्ध मे

1. Dr. P. Sri Ramamurti Contribution of Andhra to Sanskrit Literature, 1972. p 110
2. वहीं
3. जी0आर0 नन्दगिकर, रघुंवश ऑफ कालिदास 1971 प्रिफेस, पृ0 4
4. पं0 बलदेव उपाध्याय, सायण और माधव, सं0 2003 वि0 पृ0 21
5. M. Krisnamacharian : History of Classical Sanskrit Literature. 1970 p. 120

उत्पन्न विवाद पर निर्णय करने के लिए आमन्त्रित किया एवम् सभापण्डित बनाया।[1]

उपर्युक्त तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि का जन्म कोलाचल गांव में हुआ ओर इनका बाल्यकाल भी वहीं पर व्यतीत हुआ। विवाह के पश्चात् वे अपने ससुराल में कुछ वर्ष रहे ओर वहाँ से अध्ययन के लिए काशी पधारे। काशी से वे पुनः अपने ससुराल वापस आकर अपने गाँव चले आये और वहाँ के जमींदार के आस्थान पण्डित हुए। कुछ समय सिंहभूपाल के संरक्षण में रहने के पश्चात् ये मृत्युपर्यन्त तक विजयनगर सम्राट् देवराय की राजधानी विजयनगर अथवा विद्यानगर में रहे।[2]

स्थितिकाल

मल्लिनाथ के स्थितिकाल की गणना उनकी कृतियों के अनेक अन्तःसाक्ष्यों तथा अनेक बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर किया जा सकता है। अतः इन साक्ष्यों के परिवेश में क्रमशः विचार करना आवश्यक होगा।

(अ) आन्तरिक साक्ष्य

मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं तथा कृतियों में अनेक लेखकों, विद्वानों एवं कृतियों से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव, द्वितीय सर्ग के प्रथम श्लोक की अपनी संजीवनी टीका में मुग्धबोधकार बोपदेव को उद्धत किया है।[3]

1- N. Yenkataramanayya : Vijai Anagara : Origin of city empire, p. 184.

2. (क) It is noted that Vijayanagara continued to be called Vidyanagara at the time of Devaraya II" Footnote, New Indian Antiquary page, 442
(ख) मल्लिनाथ ने अपने "वैश्यवंशसुधार्णव" मे विजयनगर को विद्यानगर लिखा है–
'विद्यानगरधर्मासनप्रकारोऽयम्।'

3. मुग्धबोधकारस्तु–तुराशब्दष्टावन्त इत्याचष्टे।

बोपदेव, यादववंश के राजा महादेव और उनके उत्तराधिकारी रामचन्द्र के समकालिक थे। रामचन्द्र ने 1269 ई0 से लेकर 1309 ई0 तक राज्य किया। अतः मल्लिनाथ, बोपदेव के समकालिक हो सकते हैं।

मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं में संगीत–रत्नाकर से कई स्थलों पर प्रमाण दिया है।[1] इसकी रचना यादव राजा सिंहन (सिहण या सिंघण?) के काल में हुई थी जिनका राज्यकाल शक संवत् 1133 से 1150 ई0 तक है।[2] इससे स्पष्ट है कि मल्लिनाथ सिंहन के उत्तरवर्ती ही है।

मल्लिनाथ ने मेघदूत (पूर्व) "श्लोक 46 की टीका में 'एकावली' से उद्धरण प्रस्तुत किया है।"[3] साथ ही 'एकावली' पर उनकी 'तरल' टीका भी प्राप्त होती है। 'एकावली' मे सर्वत्र राजा वीरनरसिंह का उल्लेख हे, जो कि सिंहन के समकालीन थे। वीरनसिंह ने 1314 ई0 तक राज्य किया था।[4]

मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं में अनेक स्थलों पर 'मेदिनी' शब्दकोश का पाठ किया है।[5] मेदिनी शब्दकोश के कर्ता मेदिनीकर (प्राणकर के पुत्र) का समय चौदहवीं ई0 है।[6] मलिलनाथ ने अपनी टीकाओं में जितने व्यक्तियों एवं रचनाओं को उद्धत किया है, उन सबमें सबसे अन्तिम मेदिनकार ही मालूम पड़ते हैं।[7] इस प्रकार मल्लिनाथ मेदिनीकर के उत्तरवर्ती या समकालीन प्रतीत होते हैं।

---

1. स्वराणां स्थापनाः सान्तामूर्छनाः सप्त सप्त हि, इति संगीत रत्नाकरे" उ0म023
2. M. Krisnamacharian : History of Classical Sanskrit Literature, 1970, p. 120
3. तदुक्तमेकावल्याम्– "यदवाच्यस्यवचमावाच्यवचनं हितव इति।"
4. M. Krisnamacharian : History of Classical Sanskrit Literature, 1970, p. 120
5. SC. Banerji, Commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 350
6. G.R. Nandsgikar : Raghuvamasa of Kalidas 1971, Preface, p. 3
7. SC. Banerji, Commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 300

इन अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मल्लिनाथ चौदहवीं शताब्दी में आविर्भूत हुए थे। मल्लिनाथ का समय–निर्धारण करने के लिए सबसे प्रामणिक आधार उनकी उपलब्ध कृति 'वैश्ववंश सुधाकर' (अर्णव) है।[1] वैश्यों के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद पर निर्णय करने के लिए विजयनगर सम्राट् देवराय प्रथम ने मल्लिनाथ को नियुक्त किया था। 'वेश्ववंश सुधाकर' वही निर्णय है। इसका समय 1400–1414 ई0 प्राप्त होता है।[2] इस प्रकार मल्लिनाथ का समय निश्चित सा है।

बाह्य साक्ष्य

अनेक बाह्य प्रमाण उपलब्ध हैं जिसके माध्यम से मल्लिनाथ का स्थितिकाल निर्धारित किया जा सकता है।

राजा अच्युतराय के विजयनगर शिलालेख में , जिस पर समय शालिवाहन शक संवत् 1455 (1533–34 ई0) अंकित है, एक श्लोक उत्कीर्ण है।[3] यह श्लोक[4] मल्नाथ की संजीवनी टीका के प्रारम्भ में पाया जाता है। मल्लिनाथ के उक्त श्लोक को शिलालेख में रख लिया गया है। यहीं सम्भावना सत्य के अधिक निकट है।[5] इस प्रकार मल्लिनाथ 1533 ई0 के पहले हुए थे।

इस प्रकार उपयुक्त उल्लिखित अत्यन्त पुष्ट अन्तः तथा बाह्य प्रमाणों के यथोचित विवेचन के उपरान्त निष्कर्ष निकलता है कि टीकाकार कोलाचल

---

1. New Indian Antiquary, Volume II, page 442
2. SC. Banerji, Commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 300
3. Indian Antiquary, Volume IV, page 19-20 also the Footnote, p. 19.
4. अन्तरायतिमिरोपशान्तमे शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम्।
   तन्नरं वपुणि कुंजरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः।।"
5. SC. Banerji, Commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 301

सूरि का स्थितिकाल चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक है। यह निष्कर्ष अधोलिखित तथ्यों पर आधारित है–

सिंहभूपाल (1386–1412 ई0) ने मल्लिनाथ का 'कनकाभिषेक' अपने 'षोडश यज्ञ' के अवसर पर किया था। इसके बाद सम्राट् देवराय प्रथम (1410–1422 ई0) ने इनको वैश्यों के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद पर निर्णय हेतु नियुक्त किया। जब देवराय द्वितीय की मृत्यु के बाद मल्लिकार्जुन सिंहासनारूढ़ (1449 ई0) हुए तो मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी उनकी राजसभा मे रहने लगे।

कनकाभिषेक असाधारण मीनीषी तथा विद्वान् का ही होता है। अतः स्वतः सिद्ध है कि मल्लिनाथ 1410 ई0 के लगभग ख्यातिप्राप्त अप्रतिम विद्वान् के रूप में सुदूर तक लब्धप्रतिष्ठ हुए होंगे। सिंहभूपाल के कनकाभिषेक ने देवराय प्रथम को आकर्षित तथा वशीभूत किया। एतदर्थ मल्लिनाथ देवराय प्रथम एंव देवराय द्वितीय को राजसभा को मण्डत किये तथा यावत् जीवन यहीं पर प्रतिष्ठित रहे, क्योंकि कालान्तर मे उनके पुत्र कुमारस्वामी इन राजसभाओं के उनके उत्तराधिकारी हुए।

इस प्रकार महान् टीकाकार मल्लिनाथ का स्थितिकाल 1350 से 1450 ई0 तक निश्चितप्राय है।

कोलाचलमल्लिनाथ सूरि की पारिवारिक पृष्ठभूमि

कविकुल कुमुदकलाधर कालिदास की अनुपम काव्यकला की अविरल प्रवाहित निर्झरिणी में स्नात होकर ख्यातिलब्ध महाकाव्यों के यशस्वी महान् टीकाकार कोलाचलमल्लिनाथ सूरि का नाम संस्कृत–साहित्य की पीयूष को पान करने वाले संस्कृतज्ञों में अग्रगण्य है। लेकिन कोलाचल मल्लिनाथ का जीवन–परिचय विवाद के झंझावात मे रत है। डॉ0 वी0 राघवन् कहते हैं कि हम ऐसे अनेक मल्लिनाथ नामक व्यक्तियों को जानते हैं, जिनको भ्रमवश

कोलाचल मल्लिनाथ के रूप में जाना जाता है।

We know a number of other Mallinathas, some of them alse of Telgu country, who have been frequently mistaken for our Colacala Mallinatha.[1]

काव्यप्रकाश की बालचित्तनुरंजनी टीकाकार नरहरि (जो बाद में सरस्वतीतीर्थ नाम से जाने गये) के पिता का नाम भी मल्लिनाथ ही था। इस मल्लिनाथ के पिता का नाम नरसिह भट्ट था। मल्लिनाथ की स्त्री का नाम नागम्मा था।

"आसीत्प्रमाणपदवाक्यविचारशीलः साहित्यसूक्तिविसिनीकलराहंसः।
ब्रह्मामृतग्रहणनाटितलोमवृत्तिस्तस्यात्मजो निपुणधीर्नरसिंहभट्टः।।
तस्मादचिन्त्यमहिमां महनीयकीर्तिः श्रीमल्लिनाथ इति मान्यगुणो बभूव।
यः सोमयागविधिना कलिखण्डनाभिरद्वैतसिद्धमिव सत्ययुगं चकार।।
लक्ष्मीरिव मुरारातेः पुरारातेरिवाम्बिका।
तस्य धर्मवधूरासीन्नागम्मेति गुणोज्वला।"[2]

पं० दुर्गाप्रसाद ने शिशुपालवध की भूमिका में इसी मल्लिनाथ को रघुवंशादि की टीकाओं का कर्ता कहा है। उनके अनुसार मल्लिनाथ का जन्म तेलगांना मे काड़प्पा जनपदान्तर्गत त्रिभुवनगिरि नामक ग्राम में हुआ था।[3]

सरस्वतीतीर्थ (नरहरि) ने, काव्यप्रकाश की बालचित्तानुरंजनी टीका की भूमिका में, अपनी वंश–प्रशंसा में लिखा है कि उनके पिता सोमयाजी थे।

---

1. Dr. V. Raghavan, New Indian Antiquary II. p. 442
2. vamacharyadhalkikasa : Kavyaprakash, 1965 Prastavana, p. 23
3. G.R. Nandargikar : The Raghuvamsa of Kalidas 1971 Preface, p. 3

सोमयाग सम्पन्न के कारण मल्लिनाथ की बड़ी प्रतिष्ठा हुई और लोग उनकी ओर श्रृद्धास्पद हुए। इसके बाद उन्होंने अपने अग्रज श्रीनारायण और पुनः अपने विषय मे कहना प्रारम्भ कर दिय।[1] उन्होंने कहीं भी यह नहीं कहा कि उनके पिता श्री मल्लिनाथ महाकवि थे और वे रघुवंशादि महाकाव्यों के टीकाकार थे। जबकि हमारे मल्लिनाथ ने स्पष्टया अपने लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग किया और अपने टीका करने के बारे में कहा है।[2] अतः स्पष्ट ज्ञात होता है कि सरस्वतीतीर्थ के पिता श्री मल्लिनाथ न तो कवि थे ओर न उनहोंने रघुवंशादि महाकाव्यों की टीकाएँ ही की थी।[3]

इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि दोनों मल्लिनाथ अलग–अगल व्यक्ति है। सरस्वतीतीर्थ (नरहरि) ने काव्यप्रकाश की अपनी टीका मे अपने जन्मकाल का उल्लेख किया है। वे शक 1298 संवत् में उत्पन्न हुए थे। (1242) खीष्टाब्द।[4] इससे स्पष्ट है कि उनके पिता श्री मल्लिनाथ बारहवीं शताब्दी के अन्त में या तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पैदा हुए होंगे, परन्तु टीकाकार मल्लिनाथ का समय चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक स्थिर होता है।

डॉ0 आफ्रेट 'अमरपदपारिजात' (अमरकोश टीका) को मल्लिनाथ की कृति मानते हैं; किन्तु मल्लिनाथ हमारे शोधप्रबन्ध के मल्लिनाथ से भिन्न हैं।[5] अमरपदपारिजात की भूमिका के प्रारम्भिक श्लोकों से यह स्पष्ट हो जाता है।

---

1. G.R. Nandargikar : The Raghuvamsa of Kalidas 1971 Preface, p.4
2. रघुवंश–संजीवनी, भूमिका , श्लोक 5, 8, 9
3. G.R. Nandargikar : The Raghuvamsa of Kalidas 1971 Preface, p.4
4. "सवसुग्रहहस्तेत ब्रह्मणा समलंकृते (1298) (खिष्टाब्द 1242 ई0)
   काले नरहरेर्जन्म कस्य नासीन्मनोरमम्।। वामन झलकीकर, काव्यप्रकाश, 1965, प्रस्तावना पृ0 23
5. SC. Banerji, Commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 300

"श्रीवासगोत्रोत्पन्न ये श्रीमल्लिनाथ नृसिंहसूरि के पुत्र है।"

उक्तानुक्तनिरूक्तचिन्तनफलां टङक्ां सभूतेः परा–

मालोच्यामरभष्यवार्तिकमुखान् ग्रंथान् बहूनादरात्।

व्याचक्षेऽमरसिंहनामकमहं श्रीवत्सगोत्रोद्भवो,

बोल्लाचिन्निनृसिंहसूरितनयः श्रीमल्लिनाथो मुदा।।"[1]

यद्यपि "डॉ0 सुरेश चन्द्र बनर्जी ने इन द्वय मल्लिनाथ का पृथक–पृथक उल्लेख किया है।"[2] किन्तु अमरपदपारिजात के कर्ता मल्लिनाथ और बालचित्तानुरंजनी के कर्ता सरस्वतीतीर्थ के पिता मल्लिनाथ एक ही हैं– ऐसा प्रतीत होता है।

दण्डी के काव्यादर्श की एक टीका के कर्ता का नाम भी मल्लिनाथ है। इस मल्लिनाथ ने अपने पिता का जगन्नाथ लिखा है। विश्वेश्वर पण्डित ने अपने ग्रन्थ 'अलंकारकौस्तुभ' में इस मल्लिनाथ का उल्लेख किया है। यह मल्लिनाथ भी कोलाचलमल्लिनाथ से सर्वथा भिन्न है।[3] इस टीका का नाम 'वैमल्यविधायनी' है और टीकाकार ने अपना नाम 'भट्टमल्लिनाथ' लिखा है, जो कि टीका के अन्त की पुष्पिका से स्पष्ट है–

"इति श्रीभट्टजगन्नाथात्मजभट्टमल्लिनाथविरचितायां दण्डिकाव्यादर्शटीकायां तृतीय परिच्छेदः। समाप्ता चेयं वैमल्यविधायिनी टीका"।[4]

---

1. K.P. Trivedi, Ekavali of Vidyadhar, 1903, Introduction.
2. S.C. Banerji. commentaries of Mallinatha, S.K. Dey Memorial Volume, p. 300
3. M.Krisnamacharian : History of Classical Sanskrit Literature, Reprint 1970, p. 732 and 816
4. मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत–विभाग में डॉ0 वी0 राघवन्कृत मल्लिनाथ–विषयक तथ्यों के संकलन से उद्धत।

इसके अतिरिक्त कई अन्य मल्लिनाथ नामक विद्वानों का उल्लेख मिलता है। मद्रास विश्वविद्यालय के प्रो० (डॉ०) वी० राघवन् के संकलन से प्राप्त हुआ कि उसमें भी अन्य कई मल्लिनाथ नाम के विद्वानों का उल्लेख है–

"प्राकृत–व्याकरण–वृत्ति के लेखक त्रिविकम के पिता का नाम भी मल्लिनाथ था। यह मल्लिनाथ आदित्य वर्मा के पुत्र थे।"[1]

"वैद्यकल्पतरू" के लेखक का नाम भी मल्लिनाथ हैं। मल्लिनाथ की टीकायुत्त तार्किकरक्षा के बनारस संस्करण की भूमिका में विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "चिकित्साशास्त्र पर लिखने वाले मल्लिनाथ, काव्यों के टीकाकार प्रसिद्व विद्वान् मल्लिनाथ से भिन्न हैं। उन्होंने 'पथ्यापथ्य निरूपण नामक चिकित्सा–ग्रन्थ की रचना की है। इसमें उसकी रचना तिथि दी गयी है–

शाके वेदब्धिशास्त्रेन्यी मल्लिनाथो भिषम्बरः।
चक्रे बालावबोधाय पथ्यापथ्यनिरूपणम्।।[2]

इस प्रकार पथ्यापथ्य निरूपण का रचनाकाल सं० 1644 है। राजनारायण नामक दक्षिणदेशीय राजा ने 'मल्लिनाथ' की उपाधि भी धारण की थी। इसका सम्पूर्ण विवरण अधोलिखित है–

Besides this title of Rajagambira, Rajanarayana is mentioned with three othersurnames, such as Mallinathan, Udaragunaraman and Ponninthambiram"3

"An inscription form Kangayanallur dated 10th May, 1354, registers a sale of land for 170 virachampan kuligaj by one Tiruvenkatamudaiiya to the

---

1. वहीं अंग्रेजी संकलन में।
2. तार्किक रक्षा टीका की भूमिका, बनारस संस्करण, विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी पृ0 18
3. Dr. A. Krisnaswami : The Tamil Country Under, Vijayanagar, 1964

sabha of Kangayanallur alias Mallinatha Chaturvedimangalam. Since Mallinatha was one of the auranames assumed by Rajanasrayana? it is probable that he founded a Brahmin colony at the village and called it by the name. "[1]

डॉ0 के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री ने अपनी पुस्तक में दो स्थलों पर मल्लिनाथ का उल्लेख किया है–

"Early in 1367, a battle was fought at kauthal. south of Tungabhadra. The Muslims gained the victory, thanks to their gun and their ca alry, the Hindu artillery not comming into play till is was to late and their commander mallinatha being martially wounded."[2]

इस सम्बन्ध में वृतान्त से ज्ञात होता है कि बुक्का प्रथम के साथ विजयनगर राज्य की स्थापना में इस मल्लिनाथ ने बहुत बड़ा योगदान किया था। दूसरी बार मल्लिनाथ का उल्लेख करते हैं–

"Two commentaries were written on Tarkabhasa, one by famous mallinatha (Thirteenth century)"[3]

श्रीनीलकण्ठ शास्त्री ने इन दोनों 'मल्लिनाथ' व्यक्तियों को अपनी सूची में एक साथ रखा है।[4] श्री एन0 वैंकटरामनय्या ने अपनी पुस्तक में मल्लिनाथ का जिक्र किया है। वे लिखते हैं–

"In addition to these, several explicit references to the conquest of

---

1. वहीं, पृ0 84
2. डॉ0 ए0के0 नीलकण्ठ शास्त्री, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 244
3. वहीं, पृ0 352
4. वहीं, पृ0 507 Mullinath, Sanskrit author, p. 244, 352

Hoyasala Kingdom are met with in the inscriptions of the time of Bukka --1 Mallinatha Vodeya, son of Aliya Sayi Nayaka, one of the Officers of Bukka - 1 secured Victories over the Hoyasala army."[1]

श्री वेंकटरामनय्या· के उक्त वर्णन और श्रीनीलकण्ठ शास्त्री के प्रथम वर्णन से सुस्पष्ट है कि बुक्का प्रथम के सहायक दोनों मल्लिनाथ एक ही हैं। शास्त्री जी द्वारा उल्लिखित तर्कभाषा के टीकाकार मल्लिनाथ कोई अन्य ही है, क्योंकि वे भी उन्हें तेरहवीं सदी का बता रहे हैं। ऐसी दशा में शास्त्रीजी द्वारा तर्कभाषा के टीकाकार मल्लिनाथ और सेनानायक मल्लिनाथ को अपनी सूची में एक ही·लिख देना उचित नहीं है।

श्री वेंकटरामनय्या द्वारा उल्लिखित सेनानायक मल्लिनाथ वोदेय के पिता का नाम अलियसायि नायक है। इससे स्पष्ट है कि वह हमारे अभीष्ट टीकाकार कोलाचलमल्लिनाथ सूरि नहीं है।

श्री वेंकटरामनय्यां ने हमारे टीकाकार मल्लिनाथ के विषय में भी लिखा है–

"Vaisyavamasasudharanava was written by Mallinatha by the order of Praudha Devaraya. This is Devaraya Ii, who ruled at vijainagara 1423-1447. This however us doubtful as Devaraya is also reffered to by this name in some of his insanptions.

Now which of these two was the Praudha Devaraya who commanded Mallinatha to write viasyavamasasudharnava? who can decide it only by

1. Sri N. Vanketsamanayya : Vijainagara : Origin of City of Empire. p. 145.

discovering the date of Mallinatha."[1]

आगे श्री वेंकटरामनय्या और आगे बढ़ते हैं–

"Poddibhatta, who was bathed in a shower of gold by Sarvajna, should have been his contemporary. In that case Mallinatha II. Who was the father of Poddibhatta, must have belonged to the generation before 1420. The king who then ruled at vijainagara was Devaraya I and not devaraya II. Therefore it should have been at the instance of Deyasaya I, that Mallinatha composed his Vaisyavamsasuharnava."[2]

भोजप्रबन्ध में मल्लिनाथ

भोजप्रबन्ध मे बल्लालसेन ने तीन मल्लिनाथ नामक कवियों का वर्णन किया है। ये तीनों ही निपुण कवि हैं। सम्पूर्ण विवरण अधोलिखित है–

"ततः कदाचिन्मृगयापरिश्रान्तो राजक्वचित्सहकारतरोरधस्वात्तिष्ठति स्म। तत्र मल्लिनाथख्यः कविरागत्य प्राहः–

शाखाशतशतवितताः सन्ति कियन्तो न कानने तरवः।

परिमलभरमिलदलिकुलदलितदलाः शाखिनो विरलाः।।

ततो राजा तस्मै हस्तवलयं ददौ।"[3]

2– "एकदा सिंहासनमलंर्वाणे श्री भोजे सकलभूपशिरोमणो द्वारपाल आगत्य प्राह– "देव दक्षिणदेशात्कोऽपि मल्लिनाथ नामा कविः कौपीनावशेषोद्वारि वर्तते।" राजा– 'प्रवेशय' इत्याह। ततः कविरागत्य 'स्वस्ति' इत्युक्त्वा

---

1. Sri N Vanketsamanayya: vijainagara : Origin of City of Empire p. 181-82
2. वहीं पृ0 184
3. भोजप्रबन्ध, पृ0 49

तदाज्ञयाचोपविष्टः पठति–

नागो भाति मदेन कं जल सहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम्।
वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पण्डितैः
सत्यपुत्रेण कुलं त्वया वसुमति लोकत्रयं भानुना।।

ततो राजा प्राह– 'विद्वन, तवोद्देश्यं किम्' इति। ततः कविराह– 'अम्बा कुप्यति न मया न स्नुषया सापिनाम्बया न मया। अहमपि न तया नतया वद राजकन्यस्य दोषोऽयम्।।" इति।

राजा च दारिद्रद्यदोषं ज्ञात्वाकविपूण्रमनोरथं चक्रे।"[1]

3– "ततः कदाचितिसंहासनमलंकुर्वाणे श्रीभोजे कालिदास–भवभूति–दण्डि–वाण–मयूर–वररूचिप्रभृतिकविकुलालङ्.कृतायां सभायां–द्वारपाल एत्याह– 'देव कश्वित्कविर्द्वारित ष्ठिति। तेनेयं प्रेषिता गाथासनाथा चीठिका देवसभायां निक्षिप्यताम् इति तां दर्शयति। राजा ग1हित्वा तां वाच यति–

"काचिद्बाला रमणवसतिं प्रेषयन्ती करण्डं
दासीहस्तात्सभयलिखब्यालमस्योपरिस्थम्।
गौरीकान्तं पवनतनयं चम्पकं चात्र भावं
पृच्छत्यार्यो निपुणतिलको मल्लिनाथः कवीन्द्रः।।"

तच्छ्रुत्वा सर्वापि विद्वत्परिषच्चमत्कृता। ततः कालिदास प्राह– 'राजन् मल्लिनाथः शीघ्रमाकारयितव्यः इति। ततो राजादेशदृद्वारपालेन स प्रवेशितः कविः राजानं 'स्वस्ति' इत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टः। ततो राजा प्राह तं कवीन्द्रम

1. भोजप्रबन्ध, पृ0 72–73

'विद्वन्मल्लिनाथ कवे, साधु रचिता गाथा।' तदा कालिदासः प्राह– 'किमुच्यतेसाधि वति। देशान्तरगतकान्तायाश्वारित्रयवर्णनेन श्लाघनीयोऽसि। विशिष्य तत्तद्भावप्रतिभटवर्णनेन।' तदा भवभूतिः प्राह– विशिष्यत इयं गाथा पंक्तिकण्ठोद्यानवैरिणो वातात्मजस्य वर्णनाम' इति। ततः प्रीतेत राज्ञा तस्मै दत्तं सुर्णानां लक्षम्। पंच गजास्य दश तुरगाश्व दत्ता। ततः प्रीतो विद्वान्स्तौति राजानम्–

देव भोजतव दानजलौधैः सोऽयमद्य रजनीति विशङ्के।
अन्यथा तदुदितेषु शिलागोभूरूहेषु कथमीदृशं दानम्।।

ततो लोकोत्तरं श्लोकं श्रुत्वा राजा पुनरिप लस्मैं लक्षत्रयं ददौ। ततौ लिखति स्म भाण्डारिको धर्मपत्रे –

प्रीतः श्रीभोजभूपः सदसि विरहिणो गूढ़नर्भोक्तिपद्यं
श्रुत्वा हेम्नां च लक्षं दश वरतुरगान्पंच नागानयच्छत्।
पश्वात्तत्रैव सोऽयं वितरणगुणसद्वर्णनात्प्रीतचेता
लक्षं लक्षं च लक्षं पुनरपि च ददौ मल्लिनाथाय तस्मै।।''[1]

इस प्रकार बल्लालसेन मल्लिनाथ नामक तीन विद्वान् कवियों का वर्णन किया है। हो सकता है कि ये तीनों मल्लिनाथ एक ही न होकर अलग–अलग हो। लेकिन भोज प्रबन्ध के वर्णन प्रमाणयुक्त नहीं कहे जाते। इतना तो अवश्यनिश्चित है कि बल्लालसेन तीनो या कम से कम एक विद्वान कवि मल्लिनाथ से अवश्य परिचित रहे। इनमें क्रमसंख्या – 2 पर उल्लिखित मल्लिनाथ को दक्षिण देश का निवासी कहा गया है। बल्लालसेन (कवि) का समय 16वी शताब्दी है।[2]

1. भोजप्रबन्ध पृ0 78–79
2. S.C. Banerji : A companion to Sanskrit Literature, Motilal Banarasidas, 1971, p. 105

कोलाचलमल्लिनाथ सूरि के 'सूरि' पद भी विचारणीय है।

वामन शिवराम आपटे ने संस्कृत–हिन्दी–कोश मे सूरि का एक अर्थ, 'जेनमत के आचार्यो का दिया गया सम्मानसूचक पद' किया है तथा उदाहरण में 'मल्लिनाथसूरि' दिया है। इससे शंका होती है कि क्या मल्लिनाथ जैन–मतावलम्बी थे? जैनों के एक तीर्थशंकर का नाम मल्लिनाथ है। उनका विस्तृत विवेचन जिनेश्वरकृत 'मल्लिनाथचरितम्' में प्राप्त होता है। 'मल्लिनाथचरित्रम्' मे तीर्थकंर मल्लिनाथ का गुणगान ओर उनके अलौकिक कार्यो का वर्णन हे; किन्तु इस ग्रन्थ के आधार पर यह ज्ञात नहीं होता कि वे कवि या टीकाकार थे। उनका उल्लेख सिद्धापुरूष के रूप में ही है। उनके नाम के आगे 'सूरि' शब्द प्रयुक्त नहीं है।

लेकिन टीकाकार कोलाचलमल्लिनाथसूरि, जैन–मतावलम्बी नहीं थे। उनके टीकाओं के मंगलाचरण से यह स्पष्ट है। उन्होंने गणेश, शिव, सरस्वती, राम और कृष्ण की स्तुतियाँ की है। 'वैश्यवंशसुधार्णव' में उन्होंने वेंकटेश्वर तथा लक्ष्मीनारायण की स्तुति की है। अतः वे निर्विवाद रूप से आस्तिक ओर सनातनधर्मी थे।

'सूरि' शब्द विद्वान.अर्थ मे कोशों में पठित है।[1] कवियों ने भी इस अर्थ में सूरि का प्रयोग किया है–

"अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।"[2]

"तत्र सूनृतगिरश्व सूरयः।"[3] अत एव हमारे टीकाकार के नाम के

---

1. 'श्रीमान् सूरिः कृतो कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणः– अमरकोश, 2,7,961 तथा Monier Wiliams A Sanskrit-English Dictionary, p 1243
2. रघुवंश, 1, 4
3. शिशुपालबध, 14, 21

साथ लगा हुआ 'सूरि' पद विद्वान का द्योतक है।

टीकाकार मल्लिनाथ की कृतियों से मात्र इतना ही ज्ञात होता है कि वे 'कोलाचल' परिवार के थे ओर 'पदवाक्यप्रमाणपारावारीण' 'महामहोपाध्याय' की उपाधि धारण करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वयं अथवा अपने परिवार के विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है। विद्यानाथ के अलंकार ग्रन्थ 'प्रतापरूद्रीय' अथवा 'प्रतापरूद्रयशोभूषण' पर 'रत्नापण टीका के कर्ता कुमारस्वामी अपने को मल्लिनाथ का पुत्र कहते हैं। रत्नापण टीका की भूमिका के श्लोंकों से ज्ञात होता है कि मल्लिनाथ के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ का नाम पेद्दयार्य ओर कनिष्ठ का नाम कुमारस्वामी थां पेद्दयार्य भी अपने पिता की तरह परम विद्वान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता था। अपने अग्रज से विद्यामृत का पान करने वाले स्वामी (कुमारस्वामी) ने प्रतापरूद्रीय की रहस्यमेदिनी टीका की।

त्रिस्कन्धशास्त्रजलधिं चुलुकीकुरूते स्म यः।
तस्य श्रीमल्लिनाथस्य तनयोऽजनि तादृशः।।
कोलाचलपेद्दयार्यः प्रमाणपदवाक्यपारदृश्वा यः।
व्याख्यातनिखिलशास्त्रः प्रबन्धकर्ता च सर्वविद्यासु।।
तस्यानुजन्मा तदनुग्रहात्तविद्योऽनवद्यो विनयावनम्रः।
स्वामी विपश्विद्वितनोति टीकां प्रतापरूद्रीयरहस्यभेलोम्।।[1]

कोलाचल वंश के परवर्ती वंशजों में एक, नारायण ने भोजराज के चम्पूरामायण पर 'पदयोजना' नामक टीका की है। टीका की भूमिका के श्लोकों में उन्होंने विस्तार से अपना वंश–परिचय दिया है।

---

1. डॉ० वी० राघवन्, प्रतापरूद्रीय , 1970 ई0, पृ0 1

कोलाचल्मान्वयाब्धीन्दुर्मल्लिनाथमहायशाः।
शतावधानविख्यातः वीररूद्रभिवर्षिदाः।।
मल्लिनाथत्मजः श्रीमान्कपर्दी मन्त्रकोविदः।
अखिलश्रौतकल्पस्य कारिकावृत्तिभातनात्।।
कपर्दितनयो धीमान् मल्नाथोऽग्रजः स्मृतः।
द्वितीयस्तनयो धीमान् पेद्दुभट्टो महोदयः।।
महोपाध्याय आख्यातः सर्वदेशेषु सर्वतः।
मातुलेयकृतौ दिव्ये सर्वज्ञेनाभिवर्षितः।।
गंणाधिपप्रसादेन प्रोचे मन्त्रगणान्बहून्।
नैषधज्योतिषादीनां व्याख्याताभूज्जगद्गुरूः।।
येद्दुभट्टसुतः श्रीमान् कुमारस्वामी संज्ञिकः।
प्रतापरूद्रीयाख्यानव्याख्याता विद्वदग्रिमः।।
इत्यादि तथा–
"नरसक्काख्यबध्वाश्व श्रीनागेश्वरयज्वनः।
नारायणेन पुत्रेण कोलाचत्मान्येन्दुना।।
चम्पूरामायणख्यस्य प्रबन्धस्याघहारिणा।
विवृतिः क्रियते प्रेम्णा यथाति समासतः।।[1]

यह वंश–परिचय टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह मल्लिनाथ से प्रारम्भ होकर पदयोजनाटीका के कर्ता नारायण तक ग्यारह पीढ़ियों का है। इस प्रकार हमारे टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह का भी नाम मल्लिनाथ ही थी और उनके पिता का नाम कपर्दी था।

---

1. केoपीo त्रिवेदी, प्रतापरूद्रयशोभूषणमृ, भूमिका, 1909 ईo

कोलाचल्मान्वयाब्धीन्दुर्मल्लिनाथमहायशाः।
शतावधानविख्यातः वीररूद्रभिवर्षिदाः।।
मल्लिनाथत्मजः श्रीमान्कपर्दी मन्त्रकोविदः।
अखिलश्रौतकल्पस्य कारिकावृत्तिभातनात्।।
कपर्दितनयो धीमान् मल्लिनाथोऽग्रजः स्मृतः।
द्वितीयस्तनयो धीमान् पेद्दुभट्टो महोदयः।।
महोपाध्याय आख्यातः सर्वदेशेषु सर्वतः।
मातुलेयकृतौ दिव्ये सर्वज्ञेनाभिवर्षितः।।
गणाधिपप्रसादेन प्रोचे मन्त्रगणान्बहून्।
नैषधज्योतिषादीनां व्याख्याताभूज्जगद्गुरूः।।
येद्दुभट्टसुतः श्रीमान् कुमारस्वामी संज्ञिकः।
प्रतापरूद्रीयाख्यानव्याख्याता विद्वदग्रिमः।।
इत्यादि तथा–
''नरसक्काख्यबध्वाश्व श्रीनागेश्वरयज्वनः।
नारायणेन पुत्रेण कोलाचत्मान्येन्दुना।।
चम्पूरामायणख्यस्य प्रबन्धस्याघहारिणा।
विवृतिः क्रियते प्रेम्णा यथाति समासतः।।[1]

यह वंश–परिचय टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह मल्लिनाथ से प्रारम्भ होकर पदयोजनाटीका के कर्ता नारायण तक ग्यारह पीढ़ियों का है। इस प्रकार हमारे टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह का भी नाम मल्लिनाथ ही थी और उनके पिता का नाम कपर्दी था।

---

1. के0पी0 त्रिवेदी, प्रतापरूद्रयशोभूषणमृ, भूमिका, 1909 ई0

नारायण द्वारा प्रदत्त वंश–परम्परा अधोलिखित है–
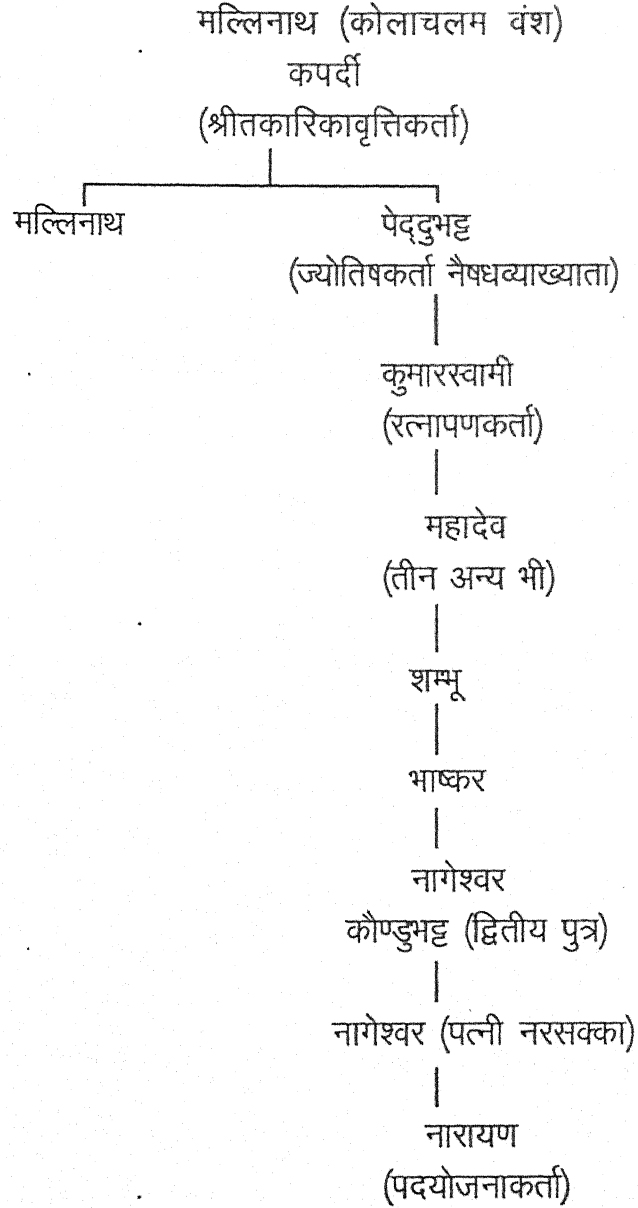
वंशावली के सम्बन्ध में नारायण तथा कुमारस्वामी दोनों के प्रदत्त विवरणों में भिन्नता है। नारायण के अनुसार कुमारस्वामी, मल्लिनाथ के भाई पेद्दुभट्ट के पुत्र हैं, परन्तु कुमारस्वामी स्वयं को मल्लिनाथ का कनिष्ठ पुत्र तथा पेद्दयार्य (अथवा पेद्दुभट्ट)

को अपना अग्रज मानते हैं। नारायण कुमारस्वामी से आठवीं पीढ़ी में स्थित हैं। यदि एक पीढ़ी का अन्तर तीस वर्ष भी रखा जाय तो नारायण कुमारस्वामी से लगभग 250 वर्ष अधिक पीछे के हैं। ऐसी स्थिति में नारायण द्वारा प्रदत्त विवरण संदिग्ध लगता है और हमें कुमारस्वामी के विवरण को ही सही तथ्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए।"[1]

अपने गुरू नसिंहरचित स्वरमनोज्ञमंजरी पर 'परिमल टीका'[2] के कर्ता गिरिनाथ, अपने को कोलाचल मल्लिनाथ का पुत्र कहते हैं। इस प्रकार मल्लिनाथ के तीन पुत्रों को लेकर उनकी वंश – परम्परा इस प्रकार की जा सकती है।"[3]
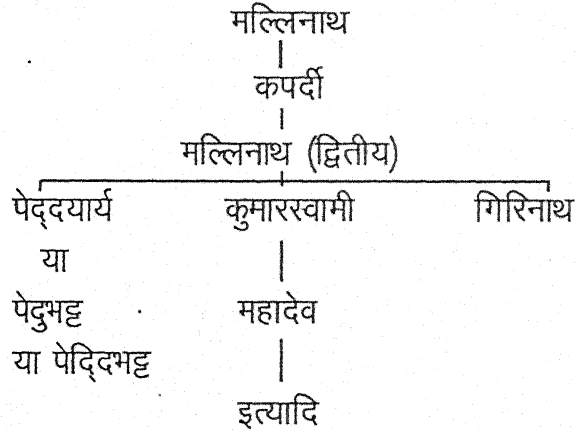
किन्तु डॉ0 राघवन् गिरिनाथ को पेदुभट्ट ही मानने का आग्रह करते हैं–

"Besides Kumarswamin kolacala Mullinatha had a son named Girinatha Suri, Pupli of Nrisimha, Nrisimha wrote the Svarmanojna Manjari and Guninatha commented upon it. It may be that Girinatha was the only another name of Peddibhatta, whom Kumarswamin mentians as his elder brother. There is cause for confusion regardding the authorship of the work; Sovarmanjri - Parimala,

---

1. Dr. P. Sri Ramamurti : Contribution of Andhra to Sanskrit Litrature. 1972 p 110
2. Madras Triennial Catalogue IV, R.No. 3488
3. Dr. P. Sri Ramamurti : Contribution of Andhra to Sanskrit Litrature. 1972, p. 110

Since Mullinath cites a work of this same name as written by himself in his TARALA on Ekavali."[1]

सम्भव है. कि पिता मल्लिनाथ और पुत्र गिरिनाथ या पेद्दार्य, दोनों ने 'स्वरमनोज्ञमंजरी' की टीका लिखा हो। अभी कुछ वर्ष पूर्व मेघदूत की एक मातृका मिली हे, जिसकी संस्कृत टीका का नाम 'पंजरिका' हे। इसके कर्ता ने अपने लिए 'मल्लिनाथसुत' लिखा है; किन्तु अपना वास्तविक नाम नहीं दिया है। डॉ0 रामेश्वर प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित इस टीका की प्रारम्भ की पंक्ति इस प्रकार है–

"अथ श्रीमल्लिनाथसुतविरचिता पंजरिका टीका।"

टीका के अन्त की पुष्पिका की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है–

"इति श्रीमल्लिनाथसुतविरचिता मेघदूताख्य पंजरिका समाप्ता।"।[2]

इसके अतिरिक्त अपनी टीका में कहीं भी पंजरिकाकार ने अपने वंश या अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। प्राप्त मातृका का लिपिकाल शक संवत् 1530 है।

अन्तिम पुष्पिका "श्री शाके 1530 किलकनामसम्वत्सरे दक्षिणायने श्रावणे
मासे शुक्लपक्षे सप्तभ्यां तिथौजनार्दनसूनुना गोविन्दशरणलिखितमिदं पुस्तकं मेघदूतटीकाख्यं स्वार्थ परार्थ चेति।।श्रीः।।श्रीः।।श्रीः।।श्रीः।। शभम्।"

इस प्रकार पंजरिकाकार का समय 1530 शक संवत् से पूर्व ही सिद्ध होता है। डॉ0 रामेश्वर प्रसाद मिश्र ने मल्लिनाथ (प्रथम) के पुत्र कपर्दी के

1- Dr. V.Raghavan, New Indian Antiquary II, p. 448

2. प्रकाशक : मानस–संघ, रामवन, जिला सतना (म0प्र0) प्रथम संस्करण, 1966 ई0

साथ इस 'मल्लिनाथसुत' के साम्य की सम्भावना व्यक्त की है; किन्तु वे भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाये।''[1]

पं0 बलदेव उपाध्याय ने अपनी 'सायण और माधव'' ग्रन्थ में कपर्दीकृत 'श्रीतकारिकावृत्ति' की भूमिका के जिन दो श्लोकों को उद्धत किया है, वे श्लोक नारायण की 'पदयोजना टीका' (चम्पूरामायण पर) के प्रारम्भ के श्लोक हैं–

'कोलाचलोन्वयाधीशः मल्लिनाथो महायशः।
शतावधानविख्यातो वीररूद्राभिवर्षितः।।
मल्लिनाथात्मजः श्रीमान्कपर्दी मंत्रकोविदः।
अखिलश्रौतकल्पस्य कारिकावृत्तिमातनोत्।।''[2]

डॉ0 मिश्र कपर्दी का ही जिक्र करते है तथा 'कपर्दि' के आत्मज टीकाकार मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी का वर्णन नहीं करते। कुमारस्वामी की रत्नापण टीका से स्पष्ट होता है कि पंजरिका उनकी रचना नहीं है अन्यथ वे रत्नापण की तरह पंजरिका में भी अपने वंशावली को लिखते तथा अपने पिता की पद्धति का अनुसरण करते–

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नापेक्षितमुच्यतै।।[3]

दक्षिण भारत मे महाकाव्यों के टीकाओं के कर्ता के रूप में पेद्दुभट्ट का नाम परम्परागतरूपेण बहुत पूर्व से ही चला आ रहा है।''[4]

---

1. डॉ0 रामेश्वर प्रसाद मिश्र, मेघदूतम् (पंजारिका विभूषितम्), सतना 1966 ई0 भूमिका . पृ0 11–12
2. सायण और माधव, पृ0 21 आचार्य बलदवे उपाध्याय, वि0सं0 2003
3. संजीवनी तथा रत्नापण टीका की भूमिका का अन्तिम श्लोक
4. Dr. P. Sri Ramamurti : Contribution of Andhra to Sanskrit Litrature. 1972 p 112

एक और तथ्य प्राप्त होता है कि टीकाकार मल्लिनाथ ही पहले पेद्दुभट्ट के नाम से जाने जाते थे।"[1] पहले तो वे बहुत ही मन्द बुद्धि के थे। विद्वान् होने के पश्चात भी उनका यह उपनाम प्रचलित रहा। के०पी० द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'एकावली' की भूमिका में 'पेद्दुभट्टचरितम्' के आधार पर इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण प्राप्त है–

"मल्लिनाथ को ही पेदुभट्ट कहा जाता था। कतिपय कन्नड़ तथा तेलूगू–भाषी प्रदेशों में भी वे उसी उपनाम से जाने जाते थे। जिसका अर्थ इन भाषाओं मे मूर्ख या मिट्ट को थोथा होता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन्होनें 30 वर्ष की अवस्था बीत जाने पर अध्ययन की श्रीगणेश किया और काशी प्रस्थान कर गये। जब उन्होनें संस्कृत–साहित्य का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया तो इनके गुरूजनों तथा प्रंशसको ने 'भट्ट' की उपाधि से सम्मानित किया। आज भी मैसूर तथा सीमावर्ती प्रान्तों में वे अपने इसी नाम से जाने जाते हैं।"[2]

मल्लिनाथ के प्रारम्भिक शिक्षा के सन्दर्भ में डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी ने "मल्लिनाथ की टाकाओं का विमर्श अपनी कृति में अधोलिखित मत व्यक्त किया है– "यह भी विवरण प्राप्त होता है कि बचपन में उनके पिता ने उन्हें शिक्षित करने का अथक् प्रयास किया लेकिन वे असफल रहे। विवाहोपरान्त पिता की राय से वे अपने ससुराल निवास करने लगे। जब उनसे कोई भी कुछ पूछता तो मौन रहा करते थे। बहुत ही कोशिश तथा दबाव डालने पर वे कह देते थे कि क्या ग्रन्थ पूर्ण है? और तब इनके हाथ में एक कोरी किताब रख दी जाती थी। इनकी पत्नी को इस अपमान से ठेस पहुँचने लगा। पत्नी के आग्रह से बाध्य होकर वे अपने ससुराल सीधे से काशी

---

1. वहीं तथा A.K.P. Trivedi. Ekavali of Vidyadhar. 1903
2. Edited by: Puttamana B.A. and M.B. Srinivas Iyengar, M.A. in three senes of Kanarese Reader

विद्याध्ययन हेतु चले आये। उनके विद्या लगाव के परीक्षण हेतु काशी के शिक्षक ने किले के सामने जमीन पर बड़े–बड़े अक्षरों में 'ऊँ नमः शिवाय' लिख दिया ताकि वे पढ़ सके अन्यथा आने–जाने वाले उन्हें लज्जित कर सके। मल्लिनाथ के रूचि ने दिखाने पर गुरू ने अपनी पत्नी को निर्देशित किया कि उनके भोजन में घी के स्थान पर नीम का तेल डालें। नीम का तेल उनके भोजन में तब तक डाला जायजब तक कि यह भोजन के कडुवा स्वाद के बारे में लिखित रूप से आपत्ति नहीं करते। इस विवशता में मल्लिनाथ स्वयं वण्र ज्ञान प्राप्त करने लगे। वर्णो का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मल्लिनाथ ने गुरूपत्नी को भोजन के स्वाद के बारे में लिखित रूप से बताया। गुरू ने अपने इस शिष्य के ज्ञान का परीक्षण किया तथा संस्कृत–वाड्. मय के सभी आयामों का पूर्ण बोध कराया तथा कई वर्षो तक अध्यापन करने के उपरान्त उन्हें घर वापस जाने की आज्ञा दी। मल्लिनाथ काशी से अपने ससुराल लौटे और अपने साले के सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर सबको आश्चर्य में डाल दिया।"[1]

नैषध की एक प्राचीन मातृका में पेद्दुभट्ट का उल्लेख होने के कारण के0पी0 त्रिवेदी पेद्दुभट्ट 'आफ्रेट' भी मल्लिनाथ तथा पेद्दुभट्ट को एक ही मानते है।[2] ऐसे विवाद की स्थिति में कुमारस्वामी को प्रमाणस्वरूप माना जा सकता है। अतः हमारे टीकाकार मल्लिनाथ के पितामह मल्लिनाथ , पिता कपर्दी और दो सुपुत्र पेद्दुयार्य या गिरिनाथ और कुमारस्वामी थे।

---

1. डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श, पृ0 50–51
2. dr. P. Sri Ramamurti : Contribution of Andhra to Sanskrit Litrature, 1972, p. 112 and K.P. Trivedi. Ekavali of Vidyadhar. 1903, Introduction.

कृतियाँ

मौलिक रचनाएँ

डॉ0 आफ्रेट ने अपने 'कैटलागस कैआलोगरम' में महाकवि मल्लिनाथ की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है–

1. दारकाय
2. एकावली टीका
3. वैश्यवंशसुधार्णव
4. किरातार्जुनीय टीका
5. तार्किकरक्षा टीका
6. भट्टिकाव्य टीका
7. मेघदूत टीका
8. शिशुपालबध टीका
9. कुमारसम्भव टीका
10. रघुवंश टीका
11. नैषधीय टीका
12. रघुवीरचरितम् (महाकाव्य)।

एम0आर0 काले ने उनके निम्नलिखित कृतियों में से प्रथम चार का अंकन किया है जो अधोलिखित है–

उदारकाव्य,

रघुवीरचरित काव्य

वैद्यकल्पतरू,

वैद्यरत्नमाला,

वैश्वंशसुधार्णव, तथा

नक्षत्रापात।[1]

संस्कृत–साहित्य में मुख्य रूप से टीकाकार के रूप में ख्यातिलब्ध प्रतिभामण्डित पण्डित मल्लिनाथ सूरि एक महान् कवि भी थे, जिन्होनें अपने ज्ञान के दिव्यालोक से अपने वंश की कीर्तिपताका को लहराया।

टीकाएँ

महान् टीकाकार कोलाचलमल्लिनाथसूरि संस्कृत–साहित्य के टीका क्षेत्र के महान् विभूति हैं। उनके द्वारा सम्पादित अधोलिखित टीका में प्राप्त है–

ग्रन्थ का नाम	मल्लिनाथ टीका का नाम	
1. रघुवंश	संजीवनी	कालीदासकृत
2. कुमारसम्भव	संजीवनी	
3. मेघदूत कालिदासकृत	संजीवनी	
4. किरातार्जुनीय	भारविकृत	घण्टापथ
5. शिशुपालवध	माघकृत	सर्वकंषा
6. नैषधचरित	श्रीहर्षकृत	जीवातु
7. भट्टिटकाव्य	भट्टिकृत	सर्वपधीना

1- Prof. Aufrecht's Catalous Catalogorem Vol. I. p. 434

8. एकावली	विद्याधरकृत	तरल
9. तार्किकरक्षा	निष्कण्टका	
10. तन्त्रवार्तिक	सिद्धांजन	
11. स्वर (मनोज्ञ) मंजरी	परिमल	
12. प्रशस्तपादभाष्य		

मल्लिनाथ की उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त ओर भी टीका मे उनके नाम से संयुक्त हैं। डॉ0 आफ्रेट अमरपदपारिजात (अमरकोश टीका) को भी मल्लिनाथकृत मानते हैं। लेकिन बाद मे इसका खण्डन किया गया।

लघुशंदेन्दुशेखर, सारमंजरी तथा नलोदय पर भी मल्लिनाथकृत टीका उल्लेख प्राप्त होता है–

''केरल का राजा कुलशेखर कवि वासुदेव का आश्रयदाता था। वासुदेव ने चार यमक काव्यों की रचना की– युधिष्ठिरविजय, त्रिपुरदहन, शौरिकथा ओर नलोदय। उसने भट्टिकाव्य के नमूने का पांच सर्ग का एक और काव्य 'वासुदेवविजय' लिखा जो कि पाणिनि के सूत्रों का सही प्रयोग दिखाने के लिए लिखा गया है।'' हिन्दी अनुवाद[1]

"In the Madras Descriptive Catalogues XXNo. 11846 is found as kolacal Mullinatha's gloss on Kalikdas's Nalodaya and most probably. Mullinatha is authorship of Nalodaya."[2]

उनकी टीकाओं का रचनाक्रम अधोलिखित है– घण्टापथ, संजीवनी,

1. M.R. Kale, Kumarsambhava of Kalidas introduction, p 31
2. Nilakantha Sastri M.D. A History of South India 1966 p. 346

सर्वंषा,सर्वपधीना, जीवातु, स्वमंजरी परिमल, प्रशस्तपदभाष्यटीका, तार्किकरक्षाटीका तन्त्रवार्तिक टीका तथा तरल टीका।

मल्लिनाथ रघुवीरचरितम के विषय में विद्वान डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी जी का अधोलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है–

"यद्यपि मलिलनाथसूरिः संस्कृतमहाकाव्यानां टीकाकाररूपेणैव प्रसिद्धेः परां कोटिमधिरोहतितथापि तस्य या मौलिकाकृतयः आविष्कृताः तासु 'रघुवीरचरितम् नाम महाकाव्यं विराजते। डॉ० आफ्रेट महोदयेनापि स्व 'कैटालॉगस, कैटालॉगोरम्' इत्याख्ये प्राचीनमातृकाविवरण (सूचि) ग्रन्थ मल्लिनाथविरचितस्य रघुवीरचरितमहाकाव्यस्योल्लेखो विहितः।

1917 खिष्टाब्दे त्रिवेन्द्रमनगरान्महामहोपाध्याय टी० गणपतिशास्त्रिभिः सम्पादितं रघुवीरचरितं प्रकाशितम्। शास्त्रिवर्यैरिदं संस्करणं रघुवीरचरितस्य तिस्त्रः मातृकाः आधिकृत्य सम्पादितमस्ति। एता मातृकाः मलयालमलिपौतालपत्रे लिखिताः आसन्। एतास्वेकैव मातृका केवलं चतुर्दशसर्गपर्यन्तं विशुद्धा सम्प्राप्ता। "सम्प्रति रघुवीरचरितस्य पुनर्प्राप्ते द्वे मातृके विश्वेश्वरानन्दवैदिकसंस्थानस्य होशियारपुरस्थे हस्तलेख संग्रहे सुरक्षिते स्तः।"[1]

प्रकाशितस्यास्य रघुवीरचरितस्य संक्षिप्ते आमुखे श्रीगणपतिरित्रवर्याः कथयन्ति, "इदं रघुवीरचरितं नाम वनवासादिराज्यभिषेकान्तस्य श्रीरामचरितस्य वर्णनपरं किपयि महाकाव्यं। अत्र प्रकाशमानै साहितीगुणैरेतत्प्रणेता कश्विद् विशिष्टः कविरित्यूहितं शक्यम्। नामधेयं तु तस्य ग्रन्थे न निवेशितम्। डॉ० आफ्रेटसम्पादिते ग्रन्थनामवलिपुस्तके रघुवीरचरितम् किमपि मल्लिनाथप्रणीतं निर्दिश्यते। तद् यश्वेतदेव भवेत, यदि च स मल्लिनाथ एकावलितरलरघुवंश टीकादिकारदन्यो भवेत्, तर्हि तस्य क्रैस्ताब्दीयचतुर्दशशकास्थितस्य कातित्वे

1. New Indian Antiquary, Vol. II. p 448

अन्यथा हि एतदीयस्यैकस्यापि पद्यस्य तरलेऽनुदाहरणं युक्त्यपेतमिव भायात्।"[1]

तरलनिर्माणान्तरमिदं निर्मितमिति कल्पनीयम्, "रघुवीरचरितस्य सप्तदशेष्वपि सर्गेषु सम्पूर्णश्लोकाः त्रयःत्रिंशतयधिकसाथैकसहस्रसंख्यकाः (1533) सन्ति।"[2]

इस प्रकार संस्कृत–साहित्य के मूर्धन्य टीकाकार के रूप में महाकवि मल्लिनाथसूरि एंक देदीप्यमान् नक्षत्र तो हैं ही साथ ही साथ 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य की रचना से पूर्व महाकवियों की पंक्ति में अग्रगण्य हैं तथा इस रचना ने उन्हें संस्कृत–साहित्य के इतिहास में अमर कर दिया है।

1. हस्तलेख संग्रहतालिका, द्वितीय खण्ड, 2015 विक्रमाब्द। हस्तलेख सं0 225 व 3816
2. उद्धरण डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, रीडर, संस्कृत–विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,

चतुर्थ अध्याय

रघुवीर चरितम् महाकाव्य की कथावस्तु
महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार विवेचन

चतुर्थ अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य की कथावस्तु

महाकाव्य के लक्ष्मणानुसार रघुवीरचरितम् का विवेचन

प्रथम सर्ग –

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम उत्तर कोशल राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार अपने पिता महाराज श्री दशरथ के वचन (आदेश) में श्रद्धावनत होकर अपनी धर्मपत्नी सीता और अनुज के साथ चौदह वर्ष तक वनवास हेतु विन्ध्य क्षेत्र को पारकर विशाल दण्डक वन के आश्रम में प्रवेश करते हैं। "वहाँ उन्होंने सीता तथा लक्ष्मण के साथ तपस्वियों के आश्रय समूह का दर्शन किया।"[1]

आश्रम में विशालकाय हरे–भरे वृक्षों की डालियों पर तपस्वियों के वल्कल वस्त फैले हुए थे। गर्मी, वर्षा तथा शीत को सहन करने वाले ये ऊँचे–ऊँचे तरु ऋषियों के परिचारकों की तरह सुशोभित हो रहे हैं।

सीता तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम शान्त तथा मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य की शोभा से आनन्द–विभोर हो रहे थे। जहाँ सिंह और हाँथी परस्पर बैरभाव त्याग कर मैत्रीभाव से रहते हैं, क्योंकि चञ्चल भ्रमरों के कारण, घने काले बादल के समान मतवाले हाथी कानों को फड़फड़ा कर; सिंह की अयाल से रगड़कर अपने गण्डस्थल की खुजलाहट (मिटाने के) सुख का वर्द्धन करते हैं। जिस आश्रम में नित्य रात्रि में कुण्डली मारकर बैठे हुए सर्प अपने फनों में स्थित मणियों से निकलकर फैलने वाली किरणों से राजाओं के समान योगियों के दीपक का कार्य करते हैं। विकसित होते

---

1. श्रियः शिवं धाम सदारसोदरः प्रविश्य रामः पितृवाक्यगौरवात्।
   वनं महद् दण्डकमाश्रयः सतां तपस्विनामाश्रमजातमैक्षत।। – रघुवीरचरितम्, 1/1.

हुए सुमनों के गुच्छरूपी स्तनों से सुन्दर वायु से स्पन्दित किसलयरूपी होंठों वाली; भ्रमररूपी नेत्रों वाली मनोहर लताएँ जहाँ वृक्षों का आलिङ्गन करती प्रतीत होती हैं वहीं कानन–द्रुमों के पुष्पगर्भ से निस्सरित, सरोवरों में विकसित कमल–कमलनियों का मित्र; शीतल–मन्द–सुगन्धित वायु प्राणियों के चित्त को शान्त करने हेतु प्रवाहित हो रहा है। श्रीराम अपने लोगों तथा सीता एवं लक्ष्मण–सहित ऐसे मनोहारी दृश्य के मुग्धकारी दर्शन में तल्लीन थे।

"आश्रम में दृढ़निश्चयी पक्षी, तप समाधि में निश्चल देह एवं चित्त वाले तपस्वियों के भूरे रंङ्ग के जटा–जूटों में घोंसले बनाते हैं। आश्रमवासी ऋषि–महर्षि तथा मुनिगण श्रीराम के आगमन को सुनकर आत्मविभोर हो उठते हैं। राम की भक्ति में अनुराग रखने वाले वनवासी, महर्षिगण हर्षातिरेक से गद्गद होकर अपने हाथों में फल–मूल लेकर प्रिय आतिथ्य करने के लिए श्रीराम के पास पहुँचे।"[1]

उन तपस्वियों को अपनी ओर आते हुए देखकर श्रीराम ने धनुष से शीघ्रतापूर्वक प्रत्यञ्चा उतारकर "हम सब पर प्रसन्न होइये", आदरपूर्वक ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम किया।"[2]

ऋषिगण विदेह पुत्री सीता तथा लक्ष्मण को मङ्गलमयी दृष्टि से देखकर उनकी कल्याण–कामना की। उन्होंने श्रीराम को सम्बोधित करते हुए कहा – "हे नरदेव ! जब आपने अनुजों के साथ उत्तर कोशल के वंश को जन्म के द्वारा विभूषित किया, तब से हमलोग विशेष रूप से

---

1. निशक्यतं प्राप्तमरण्यवासिनः प्रियं विधातुं फलमूलपाणयः।
   विमुक्तबन्धा अपि यक्षपातिमः प्रयेदिरे हर्षयुता महर्षयः।। रघुवीरचरितम्, 1/10.
2. विलङ्घ्य भूतेश्वरमौलिमालिकाममर्त्यसिन्धुं सुरसिन्धुरोपमः।
   गुहोपनीतामधिगम्य सत्क्रियां स चित्रकूटं प्रतिपेदिवानसि।। रघुवीरचरितम् 1/37.

महाराज दशरथ में उत्सुक रहने लगे हैं अर्थात् दशरथ में अनुरक्त होकर प्रसन्न हैं।"[1]

जब आप क्रमशः शास्त्रास्त्र धारण करने योग्य कुमारावस्था में प्रवेश किये तभी से राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी सनाथ हो गयी। अनुज लक्ष्मण के साथ जब आप गाधिसुत महर्षि विश्वामित्र के द्वारा यज्ञविघ्नों की शान्ति के लिए तपोवन में लाये गये और महर्षि ने अस्त्र–विद्या प्रदान की, तभी से हम लोगों की विपत्तियाँ दूर हो गयीं। कामनाओं की पूर्ति करने वाले हे राघव ! आपने यज्ञ में विघ्न डालने वाले ताड़का जैसे भयंकर दुर्दान्त राक्षसों को अपने बाणों की वर्षा से वध कर यज्ञ–क्रिया को सफलीभूत किया। तभी से ये तपस्वीगण अतिहर्षपूर्णता से अभिभूत हैं।

विश्वामित्र के यज्ञ विध्वंसक, तपस्वियों को तीक्ष्ण शूल की नोक से विदीर्ण करने वाले, वे दोनों निशाचर सुबाहु और मारीच जब आपके समक्ष ही विनष्ट हो गये तब से तपस्वियों की समपूर्ण बाधायें दूर हो गयीं। आपके चरणकमलों की परागधूलि से पवित्र हुई अहिल्या शाप के संकट से मुक्त हो गयी।

महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी में आयोजित सीता–विवाह से सम्बन्धित धनुष–यज्ञ समारोह में आप सम्मिलित हुए। इस यज्ञ में भगवान शंकर के धनुष को तोड़ने के लिए देश–देशान्तर के शूरवीर अनेक राजागण उपस्थित हुए। राजा जनक की यह प्रतिज्ञा थी कि इस धनुष को जो तोड़ेगा उसी का विवाह सीता से होगा। लेकिन किसी भी राजा को उस धनुष को छूने तक का भी साहस नहीं हुआ। भगवान शंकर का धनुष,

---

1. श्रुतोऽसि पूर्वं नरदेव! जन्मना विभूषयन्नुत्तरकोसलान्वयम्।
यदानुजैः सार्थमतः परं वयं विशेषतः पंक्तिरथे सकौतुकाः।। – रघुवीरचरितम्, 1/13.

जिसे बड़े–बड़े धनुर्धर झुका भी नहीं सके, आपने तोड़ डाला। इससे आपकी भुजाओं का तेज विशेष रूप से और अधिक प्रचण्ड हो गया। "जिस प्रकार प्रातःकाल कमलिनी सूर्य को, उसी प्रकार सीता ने श्रीराम को प्राप्त किया। ऐसी हर्ष से पूरित स्निग्ध और सार्थक वाणियाँ उस समय सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो गयी।"[1]

भगवान् शंकरजी के धनुर्भङ्ग का समाचार जमदग्निसूत परशुराम जो कि क्षत्रियकुल के नाश के लिए संकल्पित थे, से मार्ग में सहसा साक्षात्कार हुआ। क्रोध से आग बबूला परशुराम की वाणी को सुनकर उनके स्वजन भयभीत होकर काँपने लगे। क्रोधाग्नि में जलते हुए पशुराम का अभिवादन श्रीराम ने अपनी मुस्कान से किया। उन पर परशुराम के क्रोध वाणी का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। परशुराम उनके शालीन स्वभाव तथा तेज से वशीभूत होकर शान्त हो गये। इसके प्रश्चात् विवाहोपरान्त तीनों भाइयों और पुरवासियों के साथ श्रीराम साकेतपुरी लौटे और सर्वोत्तम भोग–आनन्द का अनुभव करने लगे।

परम्परानुसार महाराज दशरथजी ने महर्षि वसिष्ठ को आमंत्रित किया। वृद्धावस्था के कारण आपको योग्यतम समझकर राज्याभिषेक की अपनी इच्छा महर्षि से व्यक्त की। पुरोहित वसिष्ठ द्वारा राज्याभिषेक की पूर्ण तैयारी कर लेने पर दासी मन्थरा ने उसमें अपनी बुद्धि लगा दी। मन्थरा के उस कार्य से ही हम वनवासियों को आपका दर्शन सुलभ हुआ है। राज्याभिषेक के शुभ–मुहूर्त की वेला में कैकेयी ने विघ्न उपस्थित कर दिया। गुरु वसिष्ठ जैसे प्रमुख स्वजनों के समझाने–बुझाने का कैकेयी पर प्रभाव

---

1. दुरानमं नाम धनुर्धनुर्मृतां पुनः पुरारेः समसज्यत् त्वया।
अनेन युष्मद् भुजदण्डमैहिरः विशेषवृच्या बहुमन्महेतराम्।। – रघुवीरचरितम्, 1/20.

नहीं पड़ा। अन्त में स्त्री–हठ के समक्ष महाराज दशरथ को झुकना पड़ा। परिणामस्वरूप आपको चौदह वर्ष का वनवास का राज्यादेश हुआ तथा आपने तत्काल राज्य–सुखों का परित्याग कर सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन किया। देवराज इन्द्र के मित्र तुम्हारे पिता स्त्री की बात में आकर जो तुम्हारा त्याग किया, वह तो निश्चय ही हमलोगों की तपस्या का सञ्चित फल है। "राज्यारोहण हेतु माङ्गलिक नवीन दुकूल का जोड़ा धारण करते हुए और 'वनवास हेतु' वल्कल वस्त्र ग्रहण करते हुए (दोनों ही अवस्थाओं) में तुम्हारे मुख की कान्ति एक समान रही अर्थात् न उल्लसित और ग्लानिवत। ऐसी जनश्रुति ने हम जैसे लोगों को प्रसन्न किया है।"[1]

शत्रुओं का विनाश करने वाले, सुख–भोग के योग्य यह सुमित्रानन्दन लक्ष्मण हैं जिन्होंने अपार राज्यलक्ष्मी को भी तृण के समान छोड़कर, आपका ही अनुगमन उसी प्रकार किया जिस प्रकार सुख के लिए प्रशंसनीय धन–संग्रह अच्छी तरह पालन किये जाने वाले धर्म का अनुगमन करता है। "हे शरणागतों के रक्षक अपने पति की इच्छा (विचार) को सहारा देने वाली, उस मझली माँ (कैकेयी) ने सुन्दर कटिवाली सीता को, जो वनवास के लिए तुम्हारे साथ लगा दिया, वह भी तुम्हारे लिए उसके द्वारा उपकार ही किया गया।"[2] वनगमन हेतु राम के इस प्रकार उद्यत होने पर न केवल कैकेयी के आशीर्वाद के आँसू छलक आये अपितु दुःखकातर अयोध्यावासियों की अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। शिव की मालमाला देवनदी गंगा को ऐरावत के समान पार करके निषादराज द्वारा प्रस्तुत अतिथि–सत्कार को

---

1. नवे दुकूले दधतरच मंगले तवाददानस्य च चीर चीवरम्।
   समैव जाता मुखकान्तिरित्यसौ जनश्रुतिः काऽपि धिनोति मादृशान्/1/32
2. अरण्यवासाय शरण्य जानकी नियोजिता मध्यमया सुगमध्यमा
   यदम्बमालम्बित मर्त्तृचितया तया तदेवोपकृतं भवत्कृते।।1।।34।।

स्वीकार कर; श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर पहुँच गये। मुनिगण कहते हैं कि आपके प्रवास से संवर्द्धित शोक वाले महाराज दशरथ ने अपना भौतिक शरीर त्यागकर, नवीन कलेवर धारण कर, वंश–परम्परा से आगत इन्द्र की मैत्री को बढ़ाते हुए स्वर्ग को प्रस्थान किया।

तत्पश्चात महर्षि भरद्वाज द्वारा की गयी उचित पूजा से क्षणभर सत्कृत होकर सचिवादि समेत आकर भरत ने तुम्हें वह राज्यलक्ष्मी उसी प्रकार सौंप दी जैसे वायु समुद्र की लहरें तट को सौंप देता है।"[1]

आपके प्रति असीम भक्ति तथा सम्मान की भावना से अनुरक्त भरत आयोध्या की दुर्दशा को देखकर मर्माहत हो गये। आपको पुनः अयोध्या वापस लाने हेतु भरतजी दलबल के साथ चित्रकूट पहुँचे। अश्रुपूरित भरत ने अध्योध्या लौटने की प्रार्थना की। ऋषि जाबालि आदि प्रमुख मनीषियों तथा भरत की बातों का समर्थन करने वाले प्रबुद्धजनों के द्वारा प्रतिवेदन अनुरोध तथा साम आदि नीति की बातें कानों तक पहुँचाये जाने पर भी आप अपने धैर्य से विचलित नहीं हुए। आपके मन में लोभादि विकार नहीं आया और आप सत्यपरायणता में अडिग रहे। अपनी माँ के अपराध से, आपके इस प्रवास से और पिता दशरथ की मृत्यु से उत्पन्न शोक के कारण अपने को अत्यन्त उपेक्षित अथवा नीच समझने वाले भरत ने, आप द्वारा अभीप्सित होकर बन्धुता का सञ्जीवनोपचार किया। आपने पिता के आदेश–वचन की रक्षा का औचित्य प्रतिपादित करते हुए प्रतिनिधि के रूप में अपनी चरणपादुका प्रदान कर भरत और उनके साथ आये हुए स्वजनों को अयोध्या लौट जाने पर विवश कर दिया।

---

1. तदा किलत्वां भरतः सहानुभः क्षणं भरद्वाजकृतार्हणाविधिः।
   निमन्त्रयामास नृपश्रिया, तया तटं नभस्वानिव सिन्धुवेलया।।– रघुवीरचरितम्, 1/38.

विवश भरत के लौट जाने पर भविष्य में इस प्रकार के प्रत्यवाय ध्यान कर आपने चित्रकूट को छोड़कर आगे जाने का निश्चय किया। वनमार्ग में विश्वकल्याण की भावना से साधनारत अत्रिमुनि का दर्शन किया तथा आशीर्वाद प्राप्त किया। ''अपने नाम की यथार्थता का विस्तार करती हुई अनसुया ने महर्षि अत्रि द्वारा प्रदत्त अङ्गरागरूप उपहार को प्रसन्नतापूर्वक अपनी इस तपस्या से सीता के शरीर में दिव्य गन्ध से युक्त अनुलेपन किया। बड़े लोगों का मिलन भला किसकी शोभा के लिए नहीं होता।''[1]

तुषार से झुलसी हुई कमलिनी के समान इस वधू सीता को कौवे (जयन्त) के द्वारा घायल की नयी स्तन वाली सुनकर हमलोगों ने आपलोगों के विषय में आगे आने वाली विपत्ति का अनुगमन कर लिया था। ब्रह्मा के समान तपस्वियों और आये हुए ब्राह्मणों के द्वारा उपाश्रित यह वन संसार को प्रसाधित करने वाले आपके चरणकमलों की धूलियों से विशेष रूप से पवित्र किया गया। ग्रीष्म के जलाभाव के कारण सन्तप्त मछलियाँ बादलों की आस देखती हैं, वैसे ही ब्राह्मण बहुल वनवासियों का यह समुदाय बड़े–बड़े निशाचरों से पीड़ित होकर लक्ष्मण से युक्त आपकी शरण में आया है। हे राम ! तपस्वियों के कपाल, जटाओं और हड्डियों से भरी हुई दुर्गति को प्राप्त इस तपोवन के स्थान को देखो। आपके अवतार ग्रहण करने पर भी हमलोग इस प्रकार दुखवस्था को प्राप्त हैं।

श्रीराम की प्रशंसा करते हुए ऋषियों ने कहा कि आपके यहाँ पधारने और आपके दर्शन से ही हमलोगों की विपत्ति दूर हो गयी। हे राम ! हम सभी तपस्वियों की यह दुःश्रुवणीय शोक–सन्तप्त वाणी सुनियें।

---

1. तदानसूयात्रिप्रग्रहो मुदा तपस्ययास्या वपुरन्वेपयत्।
समन्वितार्थं निजनाम तन्वतीन कस्य लक्ष्म्यैहतां सभागमः।। – रघुवीरचरितम्, 1/43.

आप धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ हो। हम सभी आपके शरणागत हैं। "हे कल्याणकारिन ! आप चाहें आपने नगर में रहें या वन में भ्रमण करें, चाहे सेना के साथ हो या केवल धनुष के ही साथ हो, अपने पिता के प्रिय हो या उनके द्वारा निर्वासित हों, आप ही सदैव हमारे एकमात्र आश्रय हैं।"[1]

"आप हमलोगों की रक्षा और कल्याण करने में सब प्रकार समर्थ हैं। थका देने वाली बहुज सी बातों से क्या ? हे राम ! तुम्हारा कल्याण हो।"[2] तुम्हारी इस कल्याणकारी शरीर का अवलोकन करते हुए हम वनवासियों की मनस्तृप्ति नहीं हो रही है। तपस्वियों की करुण व्यथा से राम द्रवीभूत होकर हाथ जोड़कर राम ने उनकी रक्षा का आश्वासन दिया। रक्षा करना मेंरा पवित्र कर्त्तव्य है। यदि इस सम्बन्ध में कोई कमी रह जाये तो आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। मेरा पुनीत प्रयास होगा कि मुनि आश्रमों में शान्ति बनी रहे तथा राक्षसों का उपद्रव हमेशा के लिए दूर हो जाये। इस प्रकार ऋषियों को आत्मिक सान्त्वना देकर तथा उनके द्वारा स्वागत को विनम्रता से साभार स्वीकार कर उनके द्वारा निर्दिष्ट पर्णशाला में शान्तिपूर्वक निवास करने लगे।

द्वितीय सर्ग –

वनगमन के प्रथम रात्रि व्यतीत करने के पश्चात् दूसरे दिन प्रातः राम नित्यकर्म करने के बाद राम ने मुनिवृन्द से विदा ली। वे वनमार्ग में आगे की ओर प्रस्थात किये।"[3] राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन की

---

1. वसन् पुरे स्वे वनगोचरोऽथवा ससैनिकश्चापसहाय एववा।
   पितु प्रियस्तेन निराकृतोऽपिवात्वमेव नः शर्मद!सर्वदा गतिः।। – रघुवीरचरितम्, 1/51.
2. रघुवीर चरितम्, 5/56
3. मध्येकृत्य सुमध्यां तां जग्मतुस्तौ महोजसौ।
   नयनानन्दिनीं सन्ध्यां सूर्याचन्द्रमसाविव।। – रघुवीरचरितम्, 2/4

मनोरम छटा में आनन्द से परिपूर्ण आगे बढ़ते जा रहे थे कि एकाएक विराघ नामक राक्षस ने सीता का अपहरण कर लिया।"[1] दोनों भ्राता इससे आहत होकर किंकर्त्तव्य विभूढ़ से हो गये। स्थिति का आकलन कर राम और लक्ष्मण विराघ रासक्ष का वध करने हेतु उद्यत हो गये, परन्तु उस राक्षस को ब्रह्मा का वरदान प्राप्त था उसे किसी प्रकार जान से मारा नहीं जा सकता। अतः उसे बुरी तरह घायल कर जीते हुए ही गड्ढ़े में डालकर इसे मिट्टी और पत्थर से पाट दिया तथा सीताजी मुक्त हो गयी। फिर, मार्ग में आगे बढ़े तथा शरभङ्ग आश्रम पहुँचे। इस आश्रम में उन्हें अनोखे दृश्य का दर्शन हुआ। इन्द्र देवता के साथ बहुत से देवतागण तथा ऋषिगण एकत्र थे। राम को महान आश्चर्य हुआ।

राम की उपस्थिति का परिज्ञान होते ही बीच देवराज इन्द्र अतिशीघ्रता से देवताओं के साथ वहाँ से अदृश्य हो गये। समीप जाने पर राम ने देखा कि शरभङ्ग ऋषि अग्नि–प्रवेश के लिए तैयार बैठे हैं और ऋषियों का समूह उन्हें चारो तरफ से घेरा हुआ है। "राम के आगमन पर उनका दर्शन कर अपने जीवन को धन्य समझकर उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया और अग्नि में प्रवेश कर गये। अपने शरीर को उन्होंने उसी प्रकार त्याग दिया जिस प्रकार जीर्णत्वक् को सर्प त्याग देता है।"[2] वहाँ उपस्थित मुनिगणों ने राक्षसों के अत्याचार से अपनी वेदना से राम को भली–भाँति अवगत कराया। राम ने उनके समक्ष प्रतिज्ञा किया कि राक्षसों के उपद्रव से आप लोगों की रक्षा करूँगा। वे मृदु चरित्र वाले सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम

---

1. तदा रक्षोविराधारव्यं सीताहारभपासरत्।
   तौ वरेण विधेर्गुप्तं तदुपायेन जघ्नतुः।। – रघुवीरचरितम्, 2/5.
2. आन्तरोपाधिसङ्क्रान्तमहिमापचिताभिमाम्।
   तनुं त्यक्ष्याम्यहं तावज्जीर्णा त्वचनिवोरगः।। –रघुवीरचरितम्, 2/13

की ओर प्रस्थान किये।

ऋषि सुतीक्ष्ण के आश्रम की छटा अद्भुत तथा अद्वितीय थी। "चहुँ दिशि विशालकाय शालवृक्षों और विविध प्रकार की लताओं से आश्रम मण्डित था। आच्छादित पल्लवों की बीच से पड़ती हुई सूर्य की किरणें अनोखी शोभा उत्पन्न कर रही थीं। सम्पूर्ण आश्रम हवनीय द्रव्य के गन्ध से सुगन्धित हो रहा था। वृक्षों के कोठरों में अवस्थित शुक ऋषियों द्वारा उच्चरित वषटकार को बार–बार आवृत्ति कर रहे थे।"[1] आश्रम में पर्दापण कर श्रीराम ने महर्षि सुतीक्ष्ण को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। बह्मा की उपमा को धारण करने वाले मुनि सुतीक्ष्ण ने राम का दर्शन कर प्रसन्न होकर कहा कि मुनि ऋषि श्रृङ्ग की तपस्या के फलस्वरूप कौशल्या के गर्भ से आपकी उत्पत्ति हुई। आप सर्वज्ञ हैं लेकिन जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, उसे ध्याव्य होकर सुनें।

"इक्ष्वाकु से प्रारम्भ कर राम के पूर्व पुरुषों की विमल कीर्ति, यश, शौर्य, पराक्रम, नीति–निपुणता और अनुशासित जीवन का वर्णन करते हुए ऋषि ने बताया कि दुःखीजनों पर अनुग्रह करना, साधुजनों की रक्षा करना, दुष्टों को दण्ड देना और युद्ध में विजय प्राप्त करना, यह आपकी वंश–परम्परा है।"[2] अपने शौर्य पराक्रम के ही कारण पूर्वजों ने महेन्द्रा का अर्थासन प्राप्त किया था। पूर्व पुरुषों के मार्ग अनुसरण करना चाहिए। इस तरह आपकों कदापि दुःख का अनुभव नहीं होगा।

"यहा के तपस्वियों के यम–नियम में राक्षस सदैव विघ्न–बाधा

---

1. शुकैर्ऋषीणां शृष्वद्भिर्मन्त्रोच्चरितमहवरे।
   अन्वभ्यस्तवषट्कारे तरुकोप्रसंश्रयैः।। –रघुवीरचरितम्, 2/22
2. आर्तानुकम्पा साधूनां रक्षणं खलनिग्रहः।
   रणेषु विजयश्चेति व्रतानि नियतानि वः।। –रघुवीरचरितम्, 2/37

उपस्थित करते रहते हैं जिसके कारण साधु–समाज अत्यन्त ही उत्पीड़ित है। इसका दायित्व अब आपका है। आपके पूर्वजों की उदारता बेमिशाल है। प्रबुद्धवर्ग जिनकी गोद में सिर करके निश्चिन्तता से सोता था, हम सभी लोगों को अब आपके ऊपर पूर्ण भरोसा और विश्वास है। महर्षि सुतीक्ष्ण की इन बातों का श्रवण कर राम सीता के समीप अवस्थित होकर ऋषि के कथन को उनको सुनाया।"[1] इसके प्रश्चात् राम दण्डकारण्य के अन्य और स्थानों का दिव्य दर्शन की इच्छा से वशीभूत सुतीक्ष्ण के आश्रम से प्रस्थान किये। राम के आगमन का समाचार पाकर जगह–जगह से तपस्वीगण उनके दर्शनार्थ एकत्रित होने लगे।

श्रीराम विभिन्न दर्शनीय स्थलों को देखते हुए आश्रम–आश्रम प्रविष्ट कर उन आश्रमों के ऋषियों का दर्शन लाभ लेते हुए तथा उनका समाचार लेते हुए और उन्हें उनकी रक्षा के प्रति आश्वस्त करते हुए एक विलक्षण आश्रम पर पहुँच गये। इस आश्रम के तरु सुवर्ण के वर्ण के थे। उनके नवपल्लव प्रवाल के समान थे। उनके पुष्प मोती के समान थे तथा फल माणिक्य के समान थे; किन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि वहाँ कोई भी दृश्यमान् नहीं था; किन्तु चित्ताकर्षक स्वर–लहरी और अनेक प्रकार के बाघों की ध्वनि सुनायी पड़ रही थी। इससे राम की जिज्ञासा और कौतूहल उत्पन्न हुआ। समीप ही स्थित एक ऋषि से राम ने इस सन्दर्भ में प्रेच्छा की। ऋषि ने कहा कि वहाँ पर पूर्व समय में माण्डकर्णी नामक एक ऋषि घोर तपस्या में तल्लीन थे। इनकी कठोर तपस्चर्या से देवता और देवराज इन्द्र भय से काँम उठे।

ऋषि माण्डकर्णी की तपस्या को भङ्ग करने के उद्देश्य से इन्द्र ने

---

1. अगस्त्यभ्रातुरादेशमिति सङ्गृह्य सादरः।
   जगाम रामः प्रमदं वृत्तेनागमयच्च्वतम्।। –रघुवीरचरितम्, 2/43

पाँच अप्सराओं को भेजा। ये अप्सराएँ समवेत रूपेण मुनि के ध्यान से डिगाने तथा विचलित करने के लिए विभिन्न प्रकार के स्त्री–सुलभ हाव–भाव का प्रदर्शन कर ऋषि को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करने लगीं। "समाधि–साधना से जागृत ऋषि ने नयन उन्मेष किया और अपने समक्ष नृत्य तथा सङ्गीत में तल्लीन अप्सराओं को देखा। ऋषि को न तो कोई आश्चर्य हुआ और न क्रोध। उन्होंने अप्सराओं को सम्बोधित किया कि तुम लोग अपनी स्वयं की इच्छा से जब तक चाहो रमण कर सकती हो। उनकी स्वीकृति पर ऋषि ने अपने तपोबल से इस सरोवर का निर्माण किया तथा जल के अन्दर मणिमय महल का भी निर्माण कर दिया। यह देव, दानव, राक्षस और मनुष्य किसी को भी दृष्टिगोचर नहीं था तथा सबें लिए दुर्गम्य था।"[1] "इस जंङ्गल में नानाप्रकार के उपद्रवी राक्षसों की गति से भी वह अप्रभावित है। माण्डकर्णी ऋषि की प्रसन्नता हेतु प्रतिदिन अप्सराओं का नृत्य–संङ्गीत और व्याघ्र–ध्वनि का उपक्रम अबाध गति से चलता रहता है तथा वहीं ध्वनि आज भी सुनायी पड़ती हैं।"[2] हे राम ! आप ऋषि को प्रणाम करें जिससे आपका महान मङ्गल होगा। महर्षि के ऐसा कहने पर श्रीराम ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तत्पश्चात् उधर समीपस्थ आश्रमों का भ्रमण करते हुए कुछ समय के उपरान्त पुनः

---

1. तद्वनं नन्दनप्रख्यं मनोनयननन्दनम्।
   आरादालक्ष्य रामस्य वभूवोत्फुल्लमाननम्।। –रघुवीरचरितम्, 2/66
   तत्रोच्चैर्मार्जनागोष्ठीभेदसंकलनोज्ज्वलः।
   धारालस्निग्धगम्भीरः शुश्रुवे मुखध्वनिः।। –रघुवीरचरितम् 2/67
   अंगहारोच्चलच्चारुहारयष्टिस्वनोद्धुरः।
   षड़ंगभिनयोदंचत् कंकणध्वनि बन्धुरः।। –रघुवीरचरितम्, 2/68
2. एतन्मणिभयं तस्य गृहमन्यैर्दुरासदम्।
   वन्दस्व मनसा सत्वां श्रेयसा योजयिष्यति।। –रघुवीरचरितम्, 2/89

ऋषि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर वापस आ गये। सुतीक्ष्ण ने राजा दशरथ का उन्हें पितृ–स्नेह दिया जिससे राम को अयोध्यावास का सुख स्मरणहो आया। महर्षि के आश्रम को केन्द्र धुरी बनाकर राम, सीता तथा लक्ष्मण–सहित आस–पास तथा सुदूर तक के तमाम ऋषि मुनियों के आश्रमों का दिव्यालोकन किया। इस क्रम में राम के वनवास के चौदह वर्ष बीत गये।

तृतीय सर्ग –

राम ने एक दिन अवसर का लाभ उठाकर महर्षि "सुतीक्ष्ण को प्रणाम कर अगस्त्य ऋषि के आश्रम तथा उनके लोकतंत्र को देखने की अपनी जिज्ञासा प्रकट की। सुतीक्ष्ण जैसे महान् तपस्वी एवं वीतराग महर्षि के लिए राम के विछोह की वेदना नहीं होनी चाहिए; किन्तु सामान्य या विशेष गृहस्थ या तपस्वी जो कोई भी हो, सज्जन व्यक्तिका वियोग कष्टकारक होता ही है।"[1] राम के वियोग की कल्पनामात्र से महर्षि को अत्यन्त दुःख का अनुभव हुआ। ऐसी अवस्था में राम की इच्छा का प्रतिघात समुचित न समझकर उन्हें तत्काल अगस्त्य आश्रम जाने की अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और भली–भाँति वहाँ पहुँचने के मार्ग का निर्देशन भी किया, जो कि वहाँ से दक्षिण दिशा में स्थित था।

अगस्तत्य आश्रम का पथ बहुत ही दुर्गम था तथा पर्वत श्रेणियों से आच्छादित था। कुछ दूर जाने पर सर्वप्रथम आपको पीप्पली वन का दर्शन होगा जहाँ वानर, लंगूर लकड़बग्गा और किन्नर मिलेगें। अनेक प्रकार की पुष्पकरणियाँ आगे मिलेगी। हाथियों का झुण्ड जलक्रीड़ा में मुग्ध होगा और अनेक प्रकार के कमल खिले होंगे। निकुञ्जों की सघन छाया में वहाँ आप

---

1. ततो यियासापिशुनं तदुक्तं निशम्य किञ्चिद् विमना इवाभूत्।
   मुनिः स्वयं दृष्टपरावरोऽपि सतां क एव क्षमते वियोगम्।। –रघुवीरचरितम्, 3/4

थकान मिटाने के लिए विश्राम कर सकते हैं। इसके पश्चात् आपको कदली वन तथा पलास वन मिलेगा। पर्वत श्रेणियों तथा उपत्यिकाओं को पार करने के बाद अनेक प्रकार की पुष्करणियों के मार्ग से गुजरते हुए पीयूष की तरह मधुर स्वाद के शीतल तल का पान करते हुए आप अगस्त्य मुनि के आश्रम में विराजमान हो गये। सीता के साथ वहाँ आश्रम के बाहर स्थित होकर राम ने अपने आगमन के समाचार के प्रेषण के लिए मुनि आश्रम में अनुज लक्ष्मण को भेजा।

लक्ष्मण ने एक मुनिकुमार से राम और सीता के आने की सूचना अगस्त्य मुनि को देने का अनुरोध किया। मुनिकुमार ने समाधि में तल्लीन अगस्त्य मुनि को राम के आगमन की सूचना सुनायी। "अगस्त्य मुनि समाधि–साधना को रोक कर बाहर आये। राम ने लक्ष्मण तथा सीता सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया। महर्षि ने उन्हें आशीर्वाद देने के बाद कहा कि दशरथ ने बड़े भाग्य से आपको उसी तरह प्राप्त किया जैसे दावानल से जलता हुआ पर्वत मेघ से अम्बुपात को प्राप्त करता है। जब मंङ्गलमयी वार्ता चल रही थी उस समय सम्पूर्ण आकाश नक्षत्रों और चन्द्रमा से आमोदित था। जल रसमय हो गया तथा पृथ्वी उर्वरा हो उठी।"[1] आपके बारे में लोगों से सारी बातों को मैंने सुना लेकिन दूरी के कारण आपका दर्शन प्राप्त नहीं हो सका। बहुत समय तक महर्षि सुतीक्ष्ण के यहाँ निवास करने के उपरान्त यहाँ पधार आपने मुझे कृतार्थ किया। मेरा आपके प्रति स्नेह दशरथ के अत्यधिक स्नेह से कम नहीं है। "आपके जङ्गल के आगमन

---

1. प्रवेशितस्तेन वचोहरेण स्ववीक्षणस्मेरविलोचनेन्।
विभुः सुमित्रासुतमैथिलीभ्यां सार्ध महर्षेश्वरणौ ववन्दे।। –रघुवीरचरितम्, 3/46
आसीनभन्ते वसतां पदव्यामनामयं चाप्यनुयुज्य धीरः।
तमूचिवानिन्दुकरावदातश्मश्रुप्रमादन्तुरदन्त कान्तिः।। –रघुवीरचरितम्, 3/47

से विज्ञ होकर मैंने ये फल मँगवाया है जिसे आप ग्रहण करें। राम, लक्ष्मण और सीता इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक लगभग तीन माह तक अगस्त्य मुनि के आश्रम में निवास किये।''[1] एक दिन अगस्त्य मुनि ने राम का सिर सूँघा तथा कहा कि आपका यहाँ निवास करना मुझे सुख की अनुभूति हो रही है लेकिन आपने वनवास की अवधि बहुत ही कम शेष है। यहाँ से आगे जाने पर दक्षिण दिशा में दाहिनी तरफ आपको मधूक के वृक्ष मिलेगें। उसके थोडी दूर पर एक विशालकाय वटवृक्ष है। उसके आगे एक छोटे से पर्वत पर पञ्चवटी नामक स्थान है।

''उस पञ्टवटी में पर्णशाला का निर्माण कर आप निवास करें। यहाँ पर गौतम मुनि उद्भावित ब्रह्मगिरि में गिरती हुई गोदावरी नदी है जिसके तट पर निवास करने वालों की सम्पूर्ण मनोकमनाएं पूर्ण हो जाती हैं।''[2] वहाँ निवास कर अलौकिक कार्यों का सम्पादन कर आप अपने जीवन को सफल करें। ''इसके पश्चात अगस्त्य मुनि ने वैष्णव, धनुष तरकश और एक खड्ग उन्हें प्रदान करते हुए कहा कि यह वस्तु यदि लक्ष्मण के हाथ में हो तो रणक्षेत्र में बज्र के समान होगा।''[3]

राम से अस्त्र–शस्त्रों की विशेषता का वर्णन करते हुए सम्मानपूर्वक समर्पित किया तथा उनकी मङ्गलकामना की तथा अकिंचन मुनिगण की रक्षा

---

1. त्वयि श्रुते राम! वनं त्वदर्थमिल्येभिरूपाहतानि।
   रसाधिकान्येव बहूनि नूनं फलानिनः पर्यषितान्यभूवन्।। –रघुवीरचरितम्, 3/53
2. उद्भाविता स किल गौतमेन बह्मल्यिषा ब्रह्मगिरेः पतन्ती।
   सर्वात्मना राम! निषेव्यमाणां पुंसांर्थीकुरुते मनांसि।। –रघुवीरचरितम्, 3/61
3. तत्र स्थितः पावन! पलायन् नः सत्यव्रतत्वं च पितुर्यधावत्।
   अनन्यसाधारणभूरिकर्मा जन्मेद मुच्चैः सफलीकुरुष्व।। –रघुवीरचरितम्, 3/63
   विपत्त्रियामासमय प्रभाते जाते दुराये समया वसाने।
   समातृदारप्रकृतिः सुखानि निर्वेक्ष्यसि प्राप्य शुभाभयोध्याम्।। –रघवुरीचरितम्, 3/64

का दायित्व उन्हें सौंप और पुनः दर्शन देने का अनुरोध किया। इस प्रकार अगस्त्य मुनि का आशीर्वाद ग्रहण कर राम वहाँ से पञ्चवटी के लिए प्रस्थान किये। पथ में भयंकर आकृति वाला गृद्धराज जटायु दिखायी दिया। राम ने उसे कोई राक्षस समझा और ज्यों ही उसकी ओर बाण चलाने वाले थे त्यों ही उसने अपने नाम, गोत्र तथा दशरथ मैत्री की बात बतायी। उसने कहा कि मेरे अग्रज सम्पाति ने यहाँ रहने के लिए मुझे आदेश दिया है। परिणाम स्वरूप जटायु के साथ राम पञ्चवटी क्षेत्र में पहुँचे जो अनेक राक्षसों से भरा हुआ था। पञ्चवटी में विभिन्न प्रकार के खग कलरव कर रहे थे। रंग–विरंग के मृग क्रीड़ा कर रहे थे, लताएं पुष्प–भार से अच्छादित थीं। जगह–जगह पर गज–झुण्ड विराजमान् थे।

"राम ने प्राकृतिक शोभा से युक्त इस प्रदेश का दिव्य दर्शन किया। चारो तरफ के वातावरण का दर्शन कर गोदावरी नदी के तट पर किसी समुचित स्थान पर पर्णशाला निर्माण कर लक्ष्मण को आदेश दिया। लक्ष्मण ने पथरीले स्थान के चारो तरफ देहली बनाया तथा बाँस और जंगली लकड़ियों को इकट्ठा कर एक मनोरम पर्णशाला बना दिया। बेंत से निर्मित सुकोमल चटाई पर बिछे हुए वल्कल को देखकर राम प्रफुल्लित हुए। लक्ष्मण के द्वारा एकत्र किये गये जंगली फलों को ग्रहण करते हुए राम सीता सहित वहाँ अपना समय व्यतीत करने लगे।"1

चतुर्थ संग –

राम के पञ्चवटी आगमन के समय वसन्त ऋतु का भी आगमन हो चुका। सम्पूर्ण प्रकृति नये–नये किसलय पल्लवों से अपने नये कलेवर को

---

1. दृष्टवा सपत्नीः सरितोऽभियुक्ता पत्या प्रभतोत्कलिकानुबन्धा।
द्रुतं महागोत्रभवा रुषेव स्फुरत्तरंगाधरमापतन्ती।। –रघुवीरचरितम्, 3/83

धारण कर अद्‌भुत छटा बिखेर रही थी। इस प्रकार गोदावरी के तट पर स्वतंत्रता पूर्वक राम, सीता और लक्ष्मण सहित निवास करने लगे। एक दिन राम ने सीता के मनोरंजन तथा वन–विहार हेतु तट पर फैले हुए सुन्दर वन में प्रवेश किया। चारो तरफ वासन्ती सुषमा विस्तारित थी। प्रकृतिं से नैसर्गिक सौन्दर्य का स्फुटन हो रहा था जो पुष्पित तथा पल्लवित थी। खिले हुए सुमन अपनी सुंगन्धि को विखेरते हुए वन–देवी सीता का स्वागत करते प्रतीत हो रहे थे। प्रमुदित सीता वनभूमि की प्राकृतिक शोभा में स्नात हो रही थीं।

धूप की तेजी का अनुभव कर सीता को लेकर राम गोदावरी तट पर पहुँचे। नदी में स्नान तथा नित्य क्रियाकर्म से निवृत्त होकर वे पर्णशाला में वापस आये जहाँ उन्होंने फल का आहार किया। कुछ समय विश्राम कर राम फिर सायं सीता के साथ परिवर्तित प्राकृतिक शोभा निरखने के लिए वन प्रदेश में विचरण करने लगे। सीता को प्राकृतिक छटा से ध्यानव्य कराने लगे कि शीतल, मन्द सुगन्धित वायु कितना रमणीय है। खगों का कल–कल शब्द, पुष्प–पराग रस का पान कर मदमत्त गुञ्जायमान् मधुपावली प्राणियों में विकार उत्पन्न कर रही है। मृदु जल पान कर हंस समूह मानसरोवर के आनन्द को भूल चुका है।

अमृत वर्षा करने वाला चन्द्रमा तारागणों के साथ आकाशमण्डल को विभूषित कर रहा है। सारस पक्षी जल लहरियों में क्रीड़ा कर रहे हैं तो कहीं चकोरों का समूह उतर रहा है। "सीते ! क्या इस मधुमयी समय का अनुभव कर रही हो ? अस्ताचल को अभिगमित भाष्कर दिग्बधुओं के मुखमण्डल पर मानो केसर का लेप कर रहा है। कितनी विचित्र बात है कि दूसरों की विपत्ति को दूर करने में सक्षम व्यक्ति अपनी विपत्ति का

प्रतिकार करने में अक्षम दिखाई पड़ता है।"[1] सागर से निस्सरित चन्द्र बिम्ब की किरणें समुन्द्र पर सुवर्ण–सेतु बना रही हैं। सूर्य को अस्ताचल की ओर जाता हुआ अनुभव कर चक्रवात समूह विकल हो रहा है। सूर्य के भय से गहवरों में छिपा हुआ अन्धकार समय पाकर संसार को आत्मसात करने हेतु उद्यत है। सन्ध्या का समय समझ कर शंकरजी ताण्डव के लिए परिकरबद्ध हैं। शीघ्र ही चन्द्रोदय होगा जिसको सोचकर प्राची दिशा का मुखमण्डल पीत वर्ण का प्रतीत हो रहा है। अपनी चाँदनी से विश्व का प्रसाधन करने वाला कुमुदनीगण को, प्रतिबोधित करने वाला, अन्धकार को विदीर्ण करने वाला चन्द्रमा अपने कलंक को दूर करने में कितना असमर्थ है। इस प्रकार सीता से वार्ता करते हुए राम सन्ध्या समय, सान्ध्य–विधि के लिए गौतमी तट पर आये। रात्रिकालीन चैत्य का अनुभव कर प्रकृति अपने सम्पूर्ण कार्य व्यापार को बन्द कर निवृत्त हो गयी। राम भी सीता–सहित निद्रा की गोद में लीन हो गये।

सीता और लक्ष्मण के साथ आमोद–प्रमोद तथा सुख–शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले राम की विश्रान्ति में एकाएक विघ्न उपस्थित हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही रावण की बहन शूर्पणखा, भयानक वेश धारण कर इस प्रदेश में उपस्थित हुई। उसके सिर के बाल पीले वर्ण के, आग की तरह जलने वाली, आँख ऊपर उठी हुई नाक, रूखी वाणी, ताड़–पत्र की तरह हाथ–पैर वाली उसने वासना से पीड़ित होकर राम की ओर देखा। राम के दर्शन से उसका मनोविकार बलवती हो गया। राम को आकर्षित करने के लिए तत्काल सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर काम से पीड़ित वह राम के समक्ष अपने मनोभावों को व्यक्त करने लगी; किन्तु

---

1. अस्तिकालमतिरित्यविप्लवा काचिदिन्दुमुखि! यद दिवाकरः।
तर्पयन्नपि जगद् वसूच्चयैः स्वां विपत्तिमपनेतुमक्षमः।। –रघुवीरचरितम्, 4/18

वहाँ राम और कहाँ उसकी बातें। राम जरा भी विचलित नहीं हुए। काम के वशीभूत व्यक्ति का मन क्षणमात्र भी प्रतिक्षा करने में असमर्थ होता है।

"शूपर्णखा ने राम से प्रश्न किया, तुम कौन हो ? जटा–जूट तथा चीवर धारण कर पत्नी के साथ इस वन में क्यों आये हो ? तपस्या करने वाले तो अपनी स्त्री के साथ नहीं रहते। सदैव पति का सान्निध्य चाहने वाली भक्तिपूर्वक साथ–साथ जीवनयापन करने वाली, किसी प्रकार का दुःख न सहन करने वाली, प्रिय बोलने वाली स्त्री गणिका कही जाती है। पति का भला चाहने वाली, सुख–दुःख में एकरूपता रखने वाली, गृहकार्य में निपुण, अर्थ धर्म, विधिको बताने वाली स्त्री गृहणी कही जाती है। तुम इसे त्यागो। मेरा मन तुम्हारे अतिरिक्त और किसी को नहीं चाहता।"[1]

"मैं तुम्हें सुर–असुर दुर्लभ सुख प्रदान करूँगी। उसकी इस प्रकार की वाणी का श्रवण कर राम ने मुस्कराते हुए कहा कि तुम्हारा कथन ठीक है। कोई भी व्यक्ति अपनी धर्मपत्नी को नहीं छोड़ता। इसलिए तुम्हें स्वीकार करने में मैं असमर्थ हूँ। तुम लक्ष्मण के पास जाओ।"[2]

लज्जारहित शूर्पणखा तुरन्त लक्ष्मण के पास गयी और अपने मनोभाव को प्रकट किया। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उसे लक्ष्मण ने पुनः राम के यहाँ भेज दिया। कामदेव से पीड़ित यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ दौड़ते हुए क्रोधित होकर वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ गयी। इस

---

1. पत्युरन्तिकमुपेयुषी सदा भक्तितस्तदुपनीतसंविधा।
क्लेशनिस्सहतुनः प्रियंवदा सा वधुषु गणिकेति मन्यते।।
भर्तुरर्थनिरतां सहिष्णुतां गेहकर्मसु परं वितन्वतीम्।
अर्थधर्मविधुषु प्रबोधिनीमामनन्ति गृहिणीं पुराविदः।। –रघुवीरचरितम्, 4 / 49–50
2. मुक्तमेतदिहयद् ब्रवीषिमां कस्त्यजत्यभिसृतां स्वयं।
अप्यहं प्रथमसम्मृतामिमां त्वत्कृतेन परिहातुमुत्सहे।।
मत्सरेणुद्वधतीमयुक्ततां सर्वकर्मस् जनः सचेतनः।
कुण्ठतां सुखपथे वितन्वतीमाद्रियेत बहुदारतां कथम्।। –रघुवीरचरितम् 4 / 55–56

प्रकार अचानक लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में आबद्ध कर आकाश में उड़ गयी उसी समय लक्ष्मण ने उसका नाक–कान काट कर उसक विद् रूप कर दिया। उसके शरीर से झरने के समान रक्त की धारा बह रही थी।

पंचम सर्ग –

"शूर्पणखा के नाक–कान काटने के पश्चात लक्ष्मण ने गोदावरी में जाकर स्नान किया। राक्षसों के साथ बैर–भाव के प्रारम्भ का आकलन कर दोनों भ्राता सावधान हो गये। उधर शूर्पणखा रोती–विलखती जनस्थान में निवास करने वाले अपने भाई के पास आ पहुँची जिसका नाम खर था। उसकी इस विद्‌रूप दशा को देखकर वह विचलित हो उठा तथा अपनी बहन को इस स्थिति में पहुँचाने वाले को दण्ड देने के लिए अपने सेनापति दूषण को सेना सुसज्जित करने का आदेश देकर अपना रथ मँगाया।"[1]

"अपनी सुसज्जित सेना के साथ खर राम से युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। हय, गज, रथ और पैदल विशाल सेना के संचालन से इतनी अधिक मात्रा में धुल उड़ी की सूर्य ढक सा गया। उस समय सारिकायें अमङ्गलसूचक शब्द आस–पास करने लगी। दिशाओं का मुख रजस्वला स्त्रियों की तरह मलिन धूम्रवर्ण का दिखायी देने लगा। उसकी ध्वजा एक गृद्ध ने पादक्षेप किया जैसे मृत्यु के दूत को बुला रही हो। खर के जाने वाले मार्ग में श्रृङ्गालियाँ अशुभ–वाणी बोलने लगी। भावी अमङ्गल को सूचित करते हुए रथ के घोड़े समतल भूमि के होते हुए भी स्खलित पद होने लगे। अनेक अमङ्गलसूचकों के होते हुए भी, वह अपनी बहन को आश्वस्त कर उसे अग्रसर कर राम के आश्रम पर पहुँचा। सेना के पद संचालन

---

1. तं शारिकाः प्रस्थितभाजिहेतोर्निरोद्‌धुकाया इव सम्पतन्त्यः।
विभावितागामीविपत्ति वीचीकू चीतिशब्दानसृजन्नुपान्ते।। –रघुवीरचरितम्, 5/14

से उड़ी धूल को देखकर राम ने अपने धनुष पर दृष्टिपात किया। सीता के रूप का स्मरण करते हुए राम ने सेना की ध्वनि का श्रवण किया। तुरन्त राम सीता को लक्ष्मण के संरक्षण में देकर अकेले ही राक्षसी सेना के आने की प्रतिक्षा करने लगे। उण्डकारण्य में आने के बाद राक्षसों के साथ राम का यह प्रथम युद्ध था। इसे देखने हेतु कुतूहल से विमानचारी देवताओं की उपस्थिति से सम्पूर्ण आकाशमण्डल आच्छादित हो गया। युद्ध के लिए तैयार मुनिवेषधारी अकेले राम को देखकर बहुत से राक्षसों का मन भी राम पर प्रहार करने में हिचकने लगा। यह स्थिति थोड़ी देर तक बनी रही।"[1]

अपनी भयंकर प्रकृति के कारण राक्षसों ने वाण वर्षा प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में राम ने कब धनुष उठाया, कब बाण चलाया और कब उसे छोड़ा, यह किसी को भी दिखायी नहीं दिया। उस समय राम का मण्डलीभूत गोलाकार धनुष ही दिखायी पड़ा। कौन हारेगा, कौन विजयश्री प्राप्त करेगा, इसको न समझ पाने वाले अधिकांश देवता भय से पलायित हो गये। शेष जो रह गये, ऐसा कहते हुए सुने गये कि राम विजयश्री प्राप्त करेंगे। राम के धनुष से प्रक्षेपित बाणों ने राक्षसों के शरीर को कब स्पर्श किया और कब उनका प्राण निकला, इसको कोई लक्ष्य नहीं कर पा रहा था। केवल राक्षस ही प्राण त्याग कर रहे थे। युद्धभूमि में मांस भक्षी कुत्ते, गिद्धि, सियार और पिशाच जाति का कोई नहीं मरा। बिना किसी क्रम के राक्षस मरने लगे। इस प्रकार केवल मात्र धनुष–बाण का सहारा लेकर राम ने वहाँ की विस्तृत पर्वत की ऊँची–नीची उपत्यका को राक्षसों के शरीर से समतल कर दिया। आकाश में उछलने वाले

---

1. असृग्वसाचर्चिततीचञ्चुर्निमन्त्रयिष्यन्निव मृत्यदूतम्।
   रक्षांसि नेतुं पतिसन्निकर्षं केतौ पदं तस्य चकार गृध्रः।। –रघुवीरचरितम्, 5/16

कबन्धों को पिशाच जाति बलात् पकड़ लेते थे।

पिशाचिनी मरे हुए राक्षसों की जीभ और आँख निकाल करके अपने बच्चों को खिलाने के बाद स्वयं मांस भक्षण करती थी। इस प्रकार राम द्वारा राक्षसों का संहार देखकर खर का प्रधान सेनापति दूषण आगे आकर अपना पौरुष प्रदर्शन करने लगा। उसके इस दर्प को राम के बाणों ने क्षणमात्र में चूर–चूर कर दिया। शीघ्र ही त्रिशिरा ने भी दूषण का अनुसरण किया।

"अपने सहायकों को इस प्रकार भूलुण्ठित देख खर ने स्वयं सेना का नेतृत्व किया तथा राम के साथ भयंकर युद्ध करने लगा। दोनों ही तरफ से असंख्य बाण वर्षा होने लगी; किन्तु सूर्य तेज के समक्ष चन्द्रमा निस्तेज हो जाता है। उसी प्रकार दिव्यशक्ति सम्पन्न राम के सम्मुख खर का कोइ वश नहीं चला। इस पर खर आश्चर्यचकित हो उठा। अपनी शक्ति को क्षीण होते हुए पाकर उसे सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा कि यह मेरा मतिभ्रम है या कोई माया है। यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या मेरी शक्ति ही समाप्त हो रही है।"[1] इस प्रकार खर भी इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

युंद्ध विराम के पश्चात ऋषिगण अगस्त्य ऋषि के साथ राम के समीप पहुँचे। मुनि अगस्त्य राम का अभिनन्दन किया और बार–बार आशीर्वाद देते हुए उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की तथा भविष्य में भी राक्षसों के भय से साधु समाज की रक्षा हेतु राम से अनुरोध कर साधुवाद करते हुए महर्षियों के साथ अपने आश्रम को वापस गये।

---

1. मतिभ्रमोऽयं किसु किन्नु माया स्वप्नागमो वा निहतानु शक्तिः।
स्वस्मिन् महिम्न्यस्तमिते दुरन्तां चिन्तामिति ग्रस्तधृतिः प्रमेदे।। –रघुवीरचरितम्, 5/58

युद्धकला के प्रदर्शन में राम के जटा–जूट का बन्धन ढीला पड़ गया था तथा खर के बाणों से उनके सुकुमार शरीर में खरोच भी आ गया था। राम को इसके कारण कुछ शिथिलता का अनुभव होने लगा। धनुष का सहारा लेकर श्रम दूर करने की मुद्रा में राम खड़े हो गये। सीता के प्रणयपूर्ण स्पर्श से उनकी शारीरिक शिथिलता क्षणमात्र में दूर हो गयी। युद्ध की समाप्ति पर महर्षियों ने राम के प्रति विशेष सम्मान भाव प्रकट किया तथा उनके प्रति जय–जयकार शब्द का उद्घोष करने लगे। ऋषियों के लौटने के पश्चात राम भी सीता और लक्ष्मण सहित आश्रम लौट आये।

षष्ठ सर्ग –

"शूर्पणखा लंका में जाकर लक्ष्मण द्वारा की गयी अपनी विद्रूप स्थिति रावण को दिखाती हुई, सीता के अतिसौन्दर्य का वर्णन रावण से करने लगी। उसकी बातों को सुनकर तथा सीता के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर उनके अपहरण के उद्देश्य से रावण मारीच के पास गया तथा जनस्थान में राक्षसों के वध का समाचार मारीच को सुनाया और राक्षसों पर आने वाली आगामी विपत्ति की आशंका प्रकट की। सीताहरण के दृढ़ विचार को भी मारीच के समक्ष प्रस्तुत किया। बढ़ते हुए शत्रु का सिर उठाते ही नष्ट कर देना नीतिगत है। शत्रु की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। शत्रु की उपेक्षा करने वाला राजा दावाग्नि की स्थिति को प्राप्त करता है। राजा को चाहिए कि शत्रु के तेज को आत्मसात कर जाय। विवेकशील व्यक्ति कदापि कुपथ परं नहीं चलता।"[1]

"रावण के सीताहरण के विचार से मारीच सहमत नही रहा। नीतिगत

---

1. रिपोरभिल्यज्जितमाविवृद्धेरुत्थानमेव प्रथमं निरोध्यम्।
नखप्रभेद्येतु तरुप्ररोहे कालेन कुण्ठा हि कुठारधारा।। –रघुवीरचरितम्, 6/14

तथ्यों से उसे समझाते हुए मारीच ने इस कार्य को उचित नहीं ठहराया। क्या तुम्हारे इस कार्य से राक्षस का भला होगा ? मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारे नाश के लिए ही सीता का अवतरण हुआ है। जो व्यक्ति सुविचरित कार्य करता है और साधुजनों में सत्य का व्यवहार करता है, उसके पास गुण और लक्ष्मी स्वयं निवास करती हैं। सभी प्राणियों में काम और क्रोध की स्थिति होती है। समयानुसार इनका आचरण करने वाला कभी दुःखी नहीं होता।"[1]

"सुर–असुर के आचार्यों द्वारा स्थापित इन मार्गों का अनुगमन करने वाला व्यक्ति संकटकाल में भी दुःखी नहीं होता। कतिपय विद्वान् इस सन्दर्भ में भिन्न मत के हैं। उनके अनुसार अपने उत्कर्ष के माध्यम से शत्रु के अपकर्ष हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए। इन दो पक्षों में प्रथम पक्ष मुझे उचित तथा श्रेयस्कर प्रतीत होता है। शत्रुओं से बचकर क्षमतापूर्वक अपना कार्य करते हुए प्रतिष्ठा अर्जित करता है। सर्वशक्तिमान् बनने की इच्छा धारक को यह आवश्यक है कि वह मानसिक पवित्रता पर ध्यान दे। अत एव सीताहरण के उपक्रम को आप अपने मन से निकाल दें। यदि आप ऐसा आचरण करेंगे तो और लोगों का क्या होगा ?"[2]

रावण मारीच के सुझाव को नहीं माना और उससे कहा कि यदि तुम्हें अपने प्राणों का मोह हो तो इस कार्य में मेरी सहायता करो। अपनी माया की रचना से ऐसा करो कि सीता एकाकी हो जाय। रावण के विचार से असहमत होते हुए प्राण भय से मारीच उसके साथ पंचवटी में राम के

---

1. विविच्य कालानुगुणैरुपायैर्यतेत सन्ध्यादिषु युक्तचेताः।
   यत्किञ्चिदित्यादि विचिन्त्य राजा करोति यत् लज्जऽतैकलिगम्।।–रघुवीरचरितम्, 6/17
2. उपेक्षभाणो विकृतिं परेषां प्रवर्तते यः स्वसमृद्धिहेतोः।
   स दावकीलैर्विपिने परीतं पटेन तूर्ण वपुरा वृष्मेति।। –रघुवीरचरितम्, 6/19

आश्रम पर पहुँचा। सीता को मोहित करने हेतु सुन्दर मृगवेश धारण किया। उसके तन की कान्ति विद्युत की भाँति चकाचौंध करने वाली थी। उसके नेत्र अत्यन्त अंचल थे तथा चितकबरे शरीर पर सुवर्ण के बिन्दु थे। उसके खुर वैदुर्यमणि की तरह थे। उसके मुख का ऊपरी भाग अनोखा था। उसकी पूँछ इन्द्रधनुष की शोभा को धारण करने वाली थी। इस प्रकार सुन्दर वेशधारी वह मृग आश्रम से कभी दूर चला जाता था तथा कभी निकट आ जाता था। इसके हाव–भाव अत्यन्त लुभावने थे।

"सीता उस माया–मृग को विलोक कर अतिहर्षित हुई तथा राम से इच्छा प्रकट की कि या तो उस मृग को खिलौने के रूप में जीवित लावें या उसकी खाल को ले आवें। यद्यपि कि लक्ष्मण ने इस पर अपनी असहमति प्रकट की, फिर भी राम धनुष–बाण लेकर उसके पीछे चल दिये।"[1] वह मायावी मृग कभी तो राम के समीप आता और कभी दूर चला जाता था। राम उसके पीछे–पीछे आश्रम से काफी दूर चले गये। उनको अनुभव हुआ कि वह मृग जीते जी पकड़ में आने वाला नहीं है। उन्होंने सरसन्धान किया लेकिन क्षणमात्र के लिए वह मृग अदृश्य हो गया; किन्तु फिर राम के सामने प्रकट हुआ और राम ने अपने बाण से उसे बेध दिया।

बाण लगते ही माया मृग अपने स्वाभाविक रूप में आ गया और मरते समय उसके मुँह से यह शब्द निकला कि "हाँ लक्ष्मण मुझे बचाओ"। इस आर्तनाद का उच्चारण उसने इतनी तेज ध्वनि में किया कि वह सुदूर स्थित आश्रम में सीता और लक्ष्मण को सुनायी पड़ा। राम के इस मायावी आर्तनाद को सुनकर सीता ने लक्ष्मण को उनकी सहायता के लिए भेज

---

1. निषिध्यमानोऽपि स लक्ष्मणेन मायेयमित्यव्यधितेन्द्रियेण।
विश्वस्य योषिद्वचनं मनस्वी तमन्वगात् प्रेरितधीर्नियत्या।। –रघुवीरचरितम्, 6/50

दिया। इसी अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ रावण साधुवेश में सीता के समक्ष उपस्थित हुआ। सीता ने उसे एक तपस्वी समझकर तृण का ओट बनाकर उसका स्वागत किया। अवसर पाकर रावण उनको लेकर आकाश में उड़ चला।

आकाश मार्ग से सीता का क्रन्दन सुनकर जटायु ने अवरोध उपस्थित किया। दोनों में आकाश में ही भयंकर युद्ध हुआ। जटायु के पंख और चोंच के प्रहार से रावण घायल हो गया और उसका रथ छिन्न–भिन्न हो गया। क्रोधित रावण ने जटायु के चोंच और पंख को तलवार से काट कर उसे गम्भीर रूप से घायल कर दिया जिससे जमीन पर आ गिरा। रावण के कुछ और आगे बढ़ने पर सीता को एक पर्वत दिखायी पड़ा जिस पर पाँच बन्दर थे। सीता ने कुछ आभूषण और उत्तरीय वहाँ गिरा दिया।

रावण सीता को लेकर समुद्र पार अपनी राजधानी लंका पहुँच गया। सीता के इस प्रकार हरण से वन देवता भी रो पड़े। पृथ्वी काँप गयी। नदियों का जल कलुषित हो गया। सूर्य का प्रकाश क्षीण हो गया। वायु रुक–सा गया। सारा संसार विषम स्थिति में आ गया। रावण ने सीता को अपने विश्वस्त जनों के संरक्षण में अशोकवाटिका में रक्खा।

सप्तम सर्ग –

मारीच के वध के उपरान्त राम आश्रम की ओर लौटने लगे। उनका बायाँ अंग फड़कने लगा जो अमङ्गल का सूचक है। उन्होंने अनुमान लगाया कि हमारी माताएँ किसी विपत्ति से ग्रस्त तो नहीं हैं। या भरत पर कोई विपत्ति तो नही पड़ी है अथवा खर–दूषण के लोगों ने अयोध्या पर आक्रमण तो नहीं किया अथवा सीता पर कोई संकट तो नहीं आया। इस प्रकार

सोचते हुए तथा लक्ष्मण को आश्रम की ओर लौटते देखकर राम का हृदय सीता के प्रति आशंकित हो उठा। राम ने लक्ष्मण से पूछा कि तुम सीता को अकेला छोड़कर क्यों चले आये हो ? लक्ष्मण ने कहा कि मृग ने मरते समय आपकी ही वाणी में जब हमें पुकारा तो उन्होंने कहा कि जङ्गल में राम पर कोई बड़ी विपत्ति आ पड़ी है, तुरन्त चले जाओ। न मानने पर उन्होंने बहुत ही कटु भाषा का प्रयोग किया जिससे बाध्य होकर मुझे आना पड़ा। दोनों भ्राता तुरन्तु आश्रम आये। सीता से रहित आश्रम को देखकर राम के हृदय तरह–तरह की आशंका होने लगी। यह सोचकर कि पुष्प के लिए जङ्गल में तो नहीं चली गयी या गोदावरी में स्नान हेतु तो नहीं गयी अथवा मुझे छकाने के निमित्त लता की ओट में तो नहीं छिप गयीं। राम ने लक्ष्मण के साथ उन स्थानों पर सीता की खोज की।

"गहन खोज के उपरान्त सीता के न मिलने पर पर्णकुटी पर वापस आ गये तथा सीता के लिए तरह–तरह का विलाप करने लगे। उनकी व्यथित अवस्था को देखकर लक्ष्मण भी हतप्रभ हो गये। लक्ष्मण ने राम को समझाना प्रारम्भ किया कि विषम से विषम अवस्था में भी जिस व्यक्ति का धैर्य विचलित नहीं होता, वहीं आप इस प्रकार सामान्यजन की तरह आँसू बहा रहे हैं। अब इस पर्णशाला को त्यागकर हमें सीता की खोज करनी चाहिए। सीता की खोज में दोनों भ्राता गोदावरी क्षेत्र के जङ्गलों, पर्वतों तथा गुफाओं में छानबीन करते हुए जङ्गल–जङ्गल घूमने लगे। अचानक उन लोगों ने भूमि पर पड़ा हुआ जटायु का शरीर देखा। उसने विवरण दिया कि सीता को रावण दक्षिण दिशा में लंकापुरी ले गया है। उसी ने खड्ग से मेरा चोंच और पंख काटकर मरने के लिए विवश कर दिया। जटायु की इस दशा से राम मर्माहत हुए उसकी राम के सामने ही मृत्यु

हो गयी।"1

जटायु का अन्तिम संस्कार करने के बाद दोनों भ्राता सीता की खोज में आगे बढ़े। सीता के हरण तथा जटायु के मरण से राम क्रोधाभिभूत होकर शोकोच्छवास छोड़ते हुए कहा – "राम की सीता का अपहरण करने वाला रावण यदि जिन्दा रहता है तो मेरे इस धनुष के लिए लज्जा की बात होगी। इतना निश्चित है कि जल–थल या ब्रह्माण्ड से अलग जहाँ कहीं भी वह होगा जीवित नहीं बचेगा। ब्रह्मा और शंकर भी उसे संरक्षण देने में सक्षम नहीं होंगे। अपनी सीता के लिए मैं इस आकाशमण्डल को कड़ाही के रूप में बदल दूँगा। प्रलय का दृश्य उपस्थित होगा। विश्व का इसी में कल्याण है कि नियति सीता से मेरा मिलन करा दे।"2

"राम की उत्तेजना और व्याकुलता को देखकर लक्ष्मण ने अत्यन्त ही विनम्र भाव से राम से कहा कि अपने कुल के उच्छेद के भय से कठिन तपश्चर्या और अनेक तपस्वियों के आशीष स्वरूप महाराज दशरथ ने आपको प्राप्त किया है। वे उचित–अनुचित, बुरा–भला सब कुछ विज्ञ इन्द्र के मित्र थे।"3

"वशिष्ट तथा विश्वामित्र जैसे विद्वान ज्ञानी, तपस्वी आपके उपदेष्टा हैं। आप असाधारण पराक्रमशाली हैं। महाराज दशरथ के आदेश से उनके धर्म के लुप्त होने के डर से जङ्गल–जङ्गल भ्रमण कर रहे हैं। इसमें प्रजा की कौन–सी भलाई है ? सुख–दुःख, अपवृद्धि तथा ह्रास प्राणियों के अंग

---

1. इति रोषराभवोदधुते वदति ज्यायसि भूरितेनति।
   वदति स्म मनः प्रसादयन्नथ सौमित्रिरमित्रशासनः।। –रघुवीरचरितम्, 7/70
2. कुरुपे भरतप्रसूवचः किमु तद्धर्मभयेन केवलम्।
   परिपीड्य निरागसः प्रजाः क इवार्थृरू खलु साधसिष्यते।। –रघुवीरचरितम्, 7/73
3. असुरौ मधुकैटभौ पुराद्रुहिणं प्रत्युयरोद्धुतमुद्यतौ।
   अपनीय तदुत्थितं मयं नियतिस्तं किल पर्यपालयत्।। –रघुवीरचरितम्, 7/75

हैं, परन्तु इनकी समीक्षा करने वाले व्यक्ति कभी भी विपत्ति में नहीं पड़ते। मधु कैटभ को मारकर आपने ब्रह्मा की रक्षा की। नियति ने उसके बदले आपके साथ ऐसा खिलवाड़ किया।"[1]

"धनी व्यक्ति समयानुसार निर्धन हो जाता है। बुढ़ापा से ग्रस्त रूपवान् भी कुरूप हो जाता है। सर्वत्र विजयश्री प्राप्त करने वाला भी कभी कहीं न कहीं हार जाता है। यह विधि का विधान है। क्रोध तथा शोक व्यक्तिकरण से सफलता नहीं मिलती। अतः आपको कलुषित भावना त्याग कर अपने उत्साह और ऊर्जा को जागृत करना चाहिए। इसी प्रक्रिया से भगीरथ आदि राजाओं ने विपत्ति को समाप्त कर संसार में अपना नाम किया। इस प्रकार के अनेकों उपदेशों को आपने मुझे दिया है। मैं उसी का स्मरण आपको करा रहा हूँ। आप धैर्य धारण करें। हम दोनों के प्रयास से ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो सिद्ध न हो सके।"[2]

लक्ष्मण के सारगर्भित प्रत्यावेदन से राम को बहुत ही प्रसन्नता हुई, क्योंकि भाई के समान मनुष्य के लिए न तो कोई दूसरा धन है और पतनरूपी रोग की कोई दवा है। लक्ष्मण द्वारा उत्साहित किये जाने पर राम आश्वस्त होकर आगे बढ़े। थोड़ी दूर आगे जाने पर सीता के पैर का एक नूपुर को प्राप्त कर राम सीता के स्मरण में खोकर विविध प्रकार के वियोगपूर्ण विलाप करने लगे। लेकिन लक्ष्मण के फिर समझाने–बुझाने से वे पुनः सचेत होकर सीता की खोज में अग्रसर हुए। थोड़ा आगे जाने पर एक राक्षसी ने लक्ष्मण को आलिंगनबद्ध कर लिया तथा पत्नी का भाव

---

1. चलति क्षितिरर्कसोमयोरुपरागोऽम्बुधिरौर्ववह्निना।
हियते प्रलयाय विश्वसृग द्विपरार्धान्तमजः प्रतीक्षते।। –रघुवीरचरितम्, 7/76
2. न रुषा परिदेवितेन च क्रियते सिद्धिरमुष्य कर्मणः।
उभयं तदवेक्ष्य सुरिभिर्गुरुपारुष्यमृदुत्वदूषितम्।।। –रघुवीरचरितम्, 7/78

प्रदर्शित करने लगी। उसके ऐसा करने पर क्रोधित लक्ष्मण ने उसका नाक–कान काट लिया। रोती बिलखती वह वहाँ से भाग गयी।"[1]

"वनमार्ग में आगे जाने पर उनसे तुम्बरू नामक गन्धर्व मिला। उसने राम तथा लक्ष्मण को अपनी भुजाओं के अगोश में जकड़ लिया। क्रोधित राम और लक्ष्मण उसकी भुजाओं को काट डाले।"[2] "अपनी उद्उण्डता के कारण वह ऋषि को कोप का भाजन बना था और इस विचित्र भयावह स्वरूप को प्राप्त हो गया था जो राम के सम्पर्क में आकर शापमुक्त हो वस्त्राभूषण से अलगंत दिव्य आकृतिधारी पुरुष के रूप में परिलाक्षित हुआ। राम को स्वयं अपना परिचय देते हुए बोला कि मद किस व्यक्ति को विपत्ति में नहीं डाल देता, परन्तु तपस्वियों का क्रोध स्थायी नहीं होता।"[3] इसलिए मेरी प्रार्थना पर उन्होंने कहा था कि जब दशरथ के राम तुम्हारे पर प्रहार करेंगे तब तुम्हारा उद्धार होगा। "आप लोगों को देखकर मेरे नेत्र तृप्त हो रहे हैं। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आप दोनों दशरथनन्दन राम और लक्ष्मण हैं। आप लोगों के कष्ट को मैं समझता हूँ जिसके लिए प्रयास अपेक्षित है। बिना प्रयास के भविष्य का निर्माण नहीं हो सकता। आपका दुःख दूर होगा। शीघ्र ही सीता से आपका मिलन होगा। आपके पास अमोघ शक्ति का धनुष–बाण है और लक्ष्मण जैसा वीर पराक्रमी आपके साथ है। सबके बावजूद भी आपको एक सच्चे मित्र की आवश्यकता है जो आपके प्रत्येक कार्य में

---

1. इति मामनुशिष्टवान् भवान् बहुशः स्मारयितुं ममोद्यमः।
   मतिमत्तम ! सुप्तमाधिना तदिदं त्वां प्रतिबोधयाभ्यहम्।। –रघुवीरचरितम्, 7/80
2. इति तावदच्च्व तापसं कमपि प्रागमिभूतवाहनम्।
   अवलेपमुपाश्रितः प्रभो! न मदः कंनु विपत्सु पातयेत्।। –रघुवीरचरितम्, 7/101
3. न माया नभता प्रसादितः यप्रकृतिं स्वां प्रतिपन्नवान् पुनः।
   न हि हेतुकृतस्तपोमृतां सुचिरं तिष्ठति मन्युराशये।। –रघुवीरचरितम्, 7/103

सहायक सिद्ध हो।"[1]

"पम्पा तट पर एक बुद्धिमान वानर निवास करता है। उससे आपको मित्रता करनी चाहिए। वह इन्द्रपुत्र बालि द्वारा प्रताड़ित है। बालि से भी आप मित्रता कर सकते हैं; किन्तु वह आपका सहायक सिद्ध नहीं होगा। जिस वानर को आपको मित्र बनाना हे वह असाध्य कार्य का सम्पादन करने में समर्थ है। वह सभी गुणों से युक्त है। ऐसा कहकर वह गन्धर्व प्रसन्नतापूर्वक चला गया।"[2]

इसके बाद राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवर की ओर अग्रसर हुए। सूर्यास्त के पूर्व ही वे तपस्विनी शबरी के आश्रम पहुँच गये। शबरी ने राम और लक्ष्मण का आंतिथ्य सत्कार किया। उसने मतंग आश्रम का परिचय दिया। ये दोनों भ्राता सूर्यास्त के पूर्व ही मतंग ऋषि के आश्रम पहुँच गये।

अष्टम सर्ग –

राम मतंग के आश्रम पर इसलिए रुक गये ताकि सुग्रीव से उनकी मैत्री हो सके। दूसरे दिन ऋष्यमूक पर्वत पर भ्रमण करते राम और लक्ष्मण को सुग्रीव ने देखा। उसके मन में तरह–तरह की आशंका उठने लगी। उसने सोचा कि बालि द्वारा भेजे गये ये लोग उसके दूत तो नहीं हैं। आशंकाग्रस्त अपने साथियों से मन्त्रणा के पश्चात बुद्धि तथा विवेक से युक्त हनुमान को जानकारी हेतु भेजा। सुग्रीव की आज्ञा पाकर कामरूप हनुमान भिक्षु का वेश धारण कर तथ्य को ज्ञात करने के लिए चल पड़े। मार्ग

---

1. गलितं मुनिशापकल्मषं हृदिमे संविदुदेति काचन।
   विचिनु त्वमुपायमात्मवाननुपायैर्नहि साध्यते विधिः।। –रघुवीरचरितम्, 7/106
2. उपकारि न बालिसौहृदं तव मन्ये न स कृत्यवान् यतः।
   असमव्यसनेषु न क्वचित् पणबन्धः खलु कर्मसिद्धये।। –रघुवीरचरितम्, 7/112

की धूलि पर पड़े हुए पैर के निशान (जिसमें शंख, चक्र, धनुष, मत्स्य आदि राजोचित चिन्ह अंकित थे) को देखकर हनुमान आश्चर्यचकित हो उठे। राम और लक्ष्मण को अतिमानव समझ कर उनके समीप पहुँचे। हनुमान ने विस्मय से उनसे प्रेच्छा की कि आप लोगों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोग असाधारण व्यक्ति हैं।

"सामुद्रिक विद्या—ज्ञान से उनके विशेष लक्षणों का वर्णन करते हुए हनुमान जी ने कहा कि इन लक्षणों को देखकर बरबस आप लोगों को नमस्कार करने तथा स्तुति करने की प्रेरणा जागृत हो रही है जिसके ऊपर आपकी क्षणमात्र भी कृपा हो जाय, वह परम यशस्वी छः दोषों से रहित संसार में निश्चित रूपेण प्रशंसा का पात्र होगा। चिर—वसन धारण कर इस कण्टकपूर्ण वन में भ्रमण करने वाले आप लोग कौन हैं ? हनुमान के इस प्रकार प्रच्छा किये जाने पर राम के संकेत पर लक्ष्मण ने अपना वृतान्त परिचय हनुमान को दिया।"[1] विश्वास हो जाने पर हनुमान अपना भिक्षुवेश त्यागकर वास्तविक रूप में परिवर्तित हो गये। उन्होंने अपने को सुग्रीव का विश्वासपात्र सहयोगी बताया। इस पर राम ने सुग्रीव के साथ मैत्री की इच्छा व्यक्त की। हनुमान राम और लक्ष्मण सहित सुग्रीव के यहाँ पहुँचे।

सुग्रीव ने राम के समक्ष अपना मनोभाव इस प्रकार व्यक्त किया। "भगवान ! विपत्तिग्रस्त की बात किसी को अच्छी नहीं लगती। उसे लोग प्रलापमात्र समझते है। ऐसी दशा में मौन रहना ही उचित है। फिर भी आप जैसे महान् विभूतियों के समक्ष अपना दुःख प्रकट करना उचित है, क्योंकि आप सभी पर अनुकम्पा करने वाले हैं।"[2] "विपत्तिकाल में किसी

---

1. उपच्छति शिरो नन्तुं हस्तौ में बन्धुमज्जलिम्।
   जिह्वा स्तोतुं मनः स्मर्तुं बाहू चालिंगितु युवाम्।। —रघुवीरचरितम्, 8/48
2. आपद्भिरमिभूतानां शौच्यां भवति भारती।
   चपलानां प्रकृत्यैव मादृशां लु विशेषतः।। —रघुवीरचरितम्, 8/61

का भी स्वाभाविक स्नेह तथा मैत्री सर्वथा दुर्लभ है, परन्तु नियति ने आपको भेजकर ये दोनों चीजें मुझे प्राप्त करा दी। शरणागत की रक्षा और पतित का उद्धार करने वाला मानवीय धरातल से ऊपर उठकर आचरण करने वाला विशिष्ट गुणों से विभूषित व्यक्ति ही प्रभु विशेषण को धारण करने वाला होता है। आप मुझे अन्यथा न लें। मैं हर प्रकार से आपका सहयोग करूँगा।''[1]

''तत्पश्चात सुग्रीव ने अपने मनस्ताप के कारण को बताना प्रारम्भ किया। प्रभो ! मेरा भाई बालि अद्वितीय वीर और योद्धा है। देव, दानव, गन्धर्व और मनुष्य कोई भी उसके सम्मुख युद्ध नहीं कर सकता। हम दोनों भ्राताओं में मधुर प्रेम व सद्भाव रहा। किन्तु नियति को यह सहन नहीं हुआ।''[2] एक दिन बालि के पूर्व बैरी दुन्दुभि नामक राक्षस ने किष्किन्धा में आकर युद्ध के लिए बालि का आह्वान किया। बालि मुझे साथ लेकर उसका पीछा करने लगा। ''भय से कातर दुन्दुभि सिर पर पैर रखकर वहाँ से भाग लिया। बालि ने उसका पीछा किया। कुछ दूर जाने पर उस राक्षस ने एक गह्वर में प्रवेश किया। बालि भी मुझसे प्रतिक्षा करने का आदेश देकर, उसके पीछे चल पड़ा। द्वार पर बैठे हुए मैंने उसके लौटने की प्रतीक्षा बहुत काल तक किया लेकिन अन्त में निराश होकर शिलाखण्ड से गह्वर के द्वार को बन्द कर दिया और मन्त्रियों के साथ किष्किन्धा वापस चला आया।''[3] कभी–कभी रंचमात्र असावधानी भातृभाव में बाधक बन जाती है।

---

1. यस्मिन् भवेत् प्रलपितं दीनानामप्रतिक्रियम्।
   दौरात्म्याच्छक्त्यभावाद् वा तत्र तूष्णीं स्थितिवरम्।। –रघुवीरचरितम्, 8/62
2. पुंसामकृत्रिमस्नेहं मित्रं दुर्लभमापदि।
   विशेषण च तत् तावन्नियत्या मह्ममर्पितम्।। –रघुवीरचरितम्, 8/64
3. पतितान् विनिपातेषु शरण्यः शरणागतान्।
   पशूनिवान्धकूयेषु यस्तारमति स प्रभुः।। –रघुवीरचरितम्, 8/66

बाद में उसके लिए कितना भी प्रयास क्यों न किया जाय, फिर भी पुराना भाव स्थापित नहीं हो पाता। ऐसी ही घटना मेरे साथ घटित हुई।"[1]

कुछ दिनों के उपरान्त बालि वापस लौटा। मुझे राजा के रूप में देखकर आग बबूला हो उठा और मुझे मारपीट कर किष्किन्धा से बहिष्कृत कर दिया। उसे अनकों प्रकार से समझाने का प्रयास किया लेकिन वह नहीं समझ सका। उसके भय से सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर मैं इधर से उधर भटकता रहा। कोई मेरा रक्षक नहीं मिला। मतंग ऋषि के शाप के कारण वह यहाँ नहीं आ सकता। इसलिए अपने सहयोगियों के साथ फल, पत्र और तृण के द्वारा जीवनयापन कर रहा हूँ। इसका अन्त कब होगा, ज्ञात नहीं है। नियति द्वारा प्रताड़ित मेरे पास कुछ भी नहीं है। फिर भी मैं आपका सहयोग करूँगा।

सुग्रीव ने कहा कि सीता का पता लगाने के लिए नव खण्डों में विभाजित सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल तथा इसके अतिरिक्त अन्य द्वीप और सागर तल का भी खोजबीन कराऊँगा। ऐसा कहते हुए सीता का आभूषण और उत्तरीय सुग्रीव ने राम के समक्ष उपस्थित कर दिया। परम धैर्यवान् होते हुए भी राम उन वस्तुओं को देखकर विचलित हो उठे। धैर्य धारण का प्रयास करते हुए राम सुग्रीव से इस प्रकार बोले – "यद्यपि मैं दुःखी हूँ। मेरी बातों का किसी को विश्वास नहीं होगा। फिर भी आप धैर्य रक्खें। शीघ्र ही आपकी विपत्ति दूर होगी और आपको राज्य मिलेगा।"[2]

प्रसन्नता से गद्‌गद हनुमान राम को सुनकर उसके बारे में इस

---

1. अल्पेनापि निमित्तेन सौभ्रात्रं भिद्यते नृणाम्।
   पुनस्तत्प्रतिसन्धानं महतापि न लभ्यते।। –रघुवीरचरितम्, 8/86
2. अपदानफलोदर्क स्वराज्यादवरोपणम्।
   त्वादृशां मद्विधानां तु दौर्गत्यायैव केवलम्।। –रघुवीरचरितम्, 8/111

प्रकार बोले, "आप उचित–अनुचित के ज्ञाता है तथा सब कुछ करने में समर्थवान् हैं। फिर भी अच्छे कार्यों के परिणामस्वरूप अपने स्थान से भ्रष्ट होना सबके लिए दुर्गति का कारण बनता है। जिन लोगों का शील और व्यसन बराबर हो उन लोगों की परस्पर मैत्री ठीक होती है। इस दृष्टि से आप और सुग्रीव समतुल्य हैं।"[1] जिस प्रकार शंकर का भिक्षाटन ठीक समझा जाता है, उसी प्रकार सब कुछ करने के समर्थ परम शक्तिमान् आपका जङ्गल प्रवास भी उचित है। तिर्यक योनि के हम लोग आपको किस प्रकार विश्वास दिला सकते हैं ? फिर भी जो कृपा–बल्ली आपने फैलायी है, वह शीघ्र ही फलवती हो।"

"हनुमान की बातों को सुनने के बाद राम ने सुग्रीव से कहा, "मैत्री वही अच्छी कही जाती है जो एक दूसरे का पूरक हो। तुम सूर्यपुत्र हो। हमलोग उनके वंशज हैं। दूरस्थ होने से यह सम्बन्ध टूट गया था।"[2] संयोग से यह पुनः स्थापित होने जा रहा है। एतदर्थ हम लोगों की मैत्री अग्नि को साक्षी मानकर होनी चाहिए। इसके बाद हनुमान ने काष्ठद्वय के संघर्षण से उत्पन्न अग्नि के सान्निध्य में राम और सुग्रीव की अचल मैत्री सम्पन्न करायी। सुग्रीव ने राम के बल पौरूष का परीक्षण करने के लिए एक पंक्ति में स्थित वृक्षों को दिखाकर उनका वेध करने के लिए राम से निवेदन किया। इस पर राम ने अपने एक ही सर से एक साथ ही सातों शाल वृक्षों को धराशायी कर दिया।

राम के बाण के भीषण तथा प्रचण्ड गर्जना से बालि आश्चर्य चकित

---

1. शीलव्यसनसाम्ये हि पुंसां सख्यं प्रशस्यते।
अत्र नान्वेति तद् यस्माद् धीरोदात्तोऽस्ययं कपिः।। –रघुवीरचरितम्, 8/112
2. सुहृदौ तौ हि यौ लोके परस्परकृाश्रयौ।
वंशस्थितिं वितन्वानौ वेश्ममल्लाविवोच्छितौ।। –रघुवीरचरितम्, 8/118

हो उठा। राम का सम्बल मिलने पर सुग्रीव तीव्र गर्जना करता हुआ किष्किन्धा में पहुँच कर युद्ध के लिए बालि को ललकारा। पत्नी तारा ने बालि को बहुत समझाया–बुझाया और मना किया लेकिन बालि ने उसका एक न सुना बाहर आकर सुग्रीव से संघर्षरत हो गया। दोनों में भयंकर मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया। उसी क्षण–अवसर पाकर राम ने बालि पर लैगस (अग्नि) बाण का प्रहार कर दिया। महाबलि बालि राम के एक ही बाण के प्रहार से भूलुण्ठित हो छटपटाने लगा। एक ही क्षण में उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

इसके पश्चात राम ने कपिराज के रूप में सुग्रीव का अभिषेक किया। राम की कृपा से सुग्रीव ने अपनी राजश्री को पुनः प्राप्त किया। इसके बाद राम और सुग्रीव में सहमति हुई कि वर्षाकाल में सीता की खोज उचित नहीं होगी। अतः शरद् ऋतु की प्रतीक्षा करना श्रेयस्कर है। सुग्रीव अपने महल में राज–सुख का आनन्द लेने लगा। राम माल्यवान् पर्वत के शिखर पर विश्राम करने लगे।

नवम सर्ग –

वर्षा ऋतु में माल्यवान पर्वत की मनोरम प्राकृतिक शोभा दर्शनीय थी। विभिन्न प्रकार के तरु समूह और लताएं पुष्पभार से झुक गयी थीं। शीतल, मन्द सुगन्ध चारो ओर प्रवाहित थी। माल्यवान् पर्वत हिमगिरि के दर्प को चूर्ण कर रहा था। कमलिनियों का पुष्प–पराग मधु घोल रहा था। गुफाओं में अवस्थित सिंहों की भयंकर गर्जना से गज–समूह भयभीत प्रतीत हो रहा था। रात्रि में तुषार से रहित स्फटिकमणि की भाँति चमकने वाले पर्वत शिखर रजनीश की छटा धारण कर रहे थे। ऊँचाई से पात झरने

अपनी मनोरम ध्वनि से गतिमान् थे। पर्वत पर विभूषित पुष्करिणयों में मराल–पंक्ति–मण्डल विचरण कर रहे थे। श्रुति–सुखद, किन्नर, चारण और अप्सराओं के लास्य से शुक, पिक, कपि और यहाँ तक कि वृक्ष भी झूम रहे थे।

मतवाले मतंग की चाल से चलने वाले जगत् विख्यात पौरुष वाले श्रीराम, पर्वत के इस प्रकार उद्दीपक रूप का दर्शन कर सीता के वियोग में कहने लगे कि किसलयरूपी अंगुलियों से यह पर्वत मुझे तर्जित कर रहा है और भ्रमरों के हुंकार से हूं–हूं कर रहा है। खिले हुए फूल मेरी अवस्था पर हँस रहे हैं। इस प्रकार यह मेरे दुःख का वर्धन कर रहा है। लगता है कि यह भी पुराना राक्षस है तभी तो मेरे मन को व्यथित कर रहा है। अरे ! मैंने तुम्हारा क्या अपकार किया है जो इस प्रकार वियोग को अवस्था में मेरे मन में काम–वासना का सृजन कर रहे हो। यह तुम्हारे लिए अनुचित है।

राम पर्वत श्रेणी के प्राकृतिक प्रतीकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "पूर्वकाल में तुम ब्रह्मा के आश्रय रहे हो। तुम्हें प्राप्त कर सूर्यपुत्र सुग्रीव ने राजश्री को प्राप्त कर लिया है। मुझे भी मेरी प्रिया से मिला दो। तुम कामधेनु के समान हो। कामधेनु सभी उन्नत गुणों का आश्रय है। इसकी सेवा विफल नहीं जाती। मेरी प्रिया यदि मुझे मिल जाती तो मैं इन पुष्पों से उनका श्रृङ्गार करता। राम की इस विषादयुक्त वाणी का श्रवण कर लतायें किसलयरूपी हाथों को हिलाती हुई राम से कह रही हैं कि हे राम धैर्य करो। तुम्हारी सीता तुम्हें शीघ्र मिलेगी।"[1]

---

1. त्वं ब्रह्मणाश्चितिभूः किल पूर्वकाले,
स्वमाश्रितस्तपनसुनुरवाप लक्ष्मीम्।
मामप्यगेन्द्र!घटय प्रिययार्तिभाजा,
मभ्युन्मताश्रयगुणः खलु कामधेनुः।। –रघुवीरचरितम्, 9/12

चारो ओर भ्रमण करने वाले गुंजायमान् भ्रमर–समूह राम के प्रति अपनी संवेदना प्रकट कर रहे हैं। गिरते हुए पुष्पों द्वारा वृक्ष अपने आँसू बहाते प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार विकल भाव में राम को देखकर लक्ष्मण चिन्तित हो उठे। इस प्रकार राम सीता के वियोग में अनेक प्रकार का प्रलाप कर रहे थे। अपनी चिन्ता को छिपाते हुए लक्ष्मण ने राम से कहा, "आर्य ! आप जैसे धैर्यवान् और बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा इस प्रकार का शोक व्यक्त करना उचित नहीं प्रतीत होता। मायावी राक्षसों से दुश्मनी लेकर आपका इस प्रकार दुःख प्रकट करना, क्या उस बैर की यही प्रतिक्रिया है ? यदि आप ही ऐसा करने लगेंगे तो मेरी स्थिति क्या होगी ?"[1]

लक्ष्मण ने कहा कि मैं किसंके सामने जाकर धैर्य धारण करूँगा, क्योंकि मेरा कोई आश्रय नहीं रह गया। माता, पिता, भाई, बन्धु सभी बिछुड़ गये। इस भयंकर वन में भ्रमण करते हुए हम लोगों के लिए वन्यवृत्ति ही एकमात्र सहारा है। विवशता में जमीन पर सोना पड़ रहा है। घोर जङ्गल में ठोकरे खा रहे हैं। राक्षसों से वैर हो गया है। मेरा अनुरोध है कि आप इस प्रकार के प्रलाप को न करें तथा साहस एवम् उत्साहपूर्वक राक्षसों के समूल विनाश करने की प्रक्रिया में संलग्न हो। जिस प्रकार आपने अपने चरित्र से कौशिक मुनि को प्रफुल्लित किया था। राक्षसी ताड़का का वध किया। शंकरजी के धनुष को खण्ड–खण्ड कर दिया। परशुराम के मद को समाप्त कर दिया। आपने सदैव सत्य मार्ग का अनुसरण किया। मुनियों को सदा के लिए रक्षा का वचन दिया। खर जैसे महाशक्तिशाली

1. पीत्वा विषं जलनिधेः सहसोत्पतन्तः,
कृत्वा निनादमथ दिक्षु पिरभ्रमन्तः।
आधूर्णमानतुमुलश्वसनावखिन्ना,
तेधाः प्रसह्य पुनरेव तदुद्वमन्ति।। –रघुवीरचरितम्, 9/21

का युद्ध में वध किया। बालि के दर्प को समाप्त कर उसकी इहलीला समाप्त की। लक्ष्मण के यथार्थ सामयिक नीतियुक्त वाणी का श्रवण कर राम के अन्तस्तल में नये उत्साह का संचार हुआ। उनका दैन्य तथा करुण–भाव समाप्त हो गया।

दशम सर्ग –

"वर्षाऋतु की समाप्ति के बाद शरद ऋतु का आगमन अपनी प्राकृतिक शोभा का संचार नये कलेवर में कर रहा था। शारदीय–सुषमा तरुओं एवं लताओं के साथ अठखेलियाँ कर रही थीं। उदित अगस्त्य तारा से वन पथ निर्मल हो गया था। सभी नव उत्साह से अपनी क्रिया–कलाप में लीन हो गये।"[1]

शरद् के आगमन से राम को भी अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा मिली। "यथोचित काल समझकर राम ने लक्ष्मण से कहा कि उद्यमी पुरुषों की सहायक शरद् ऋतु निज के सम्पूर्ण यौवन से विभूषित है। हम लोग बिना कियी उद्योग के शान्त बैठे हैं।"[2] कबन्ध और शबरी की बात में आकर विश्वास पूर्वक सुग्रीव के साथ मैत्री स्थापित की गयी। एतदर्थ निरपराध बालि का वध किया गया। "हमें नवनीत के समान कोमल नहीं होना चाहिए। सुग्रीव की सहायता की अपेक्षा में चिन्तित होकर इस प्रकार बैठने के बजाय एक बार सुग्रीव के पास जाना उचित होगा। राम की आज्ञा को शिरोधार्य कर लक्ष्मण सुग्रीव से मिलने के लिए किष्किन्धा को प्रस्थान किये।"[3]

---

1. उदयेन प्रसन्ननि मुनेः सागरपायिनः।
   शूराणां च नदीनां च मनांसि च पयांसि च।। –रघुवीरचरितम्, 10/6
2. प्रागनिर्विष्ट विस्त्रम्भे मैत्रीमभ्यर्थयत्यपि।
   पुमानतिप्रसज्येत सहसा नेति नः श्रुतम्।। –रघुवीरचरितम्, 10/17
3. विशुद्धया विशद्धस्य वाचोयुक्त्या हनूमतः।
   विलोभितस्य मेंबुद्धिरति चार मुपाश्रिता।। –रघुवीरचरितम्, 10/18

सुग्रीव के पास जाकर लक्ष्मण ने कहा कि कपिराज ! आपका दर्शन करने के लिए आया हूँ। ध्यान से मेरी बाते सुने। राम सत्यनिष्ठ, प्रतापी तथा सच्चरित्र बल से युक्त हैं। विमाता कैकेयी के कारण उनको वनवास मिला। उन्होंने दण्डकारण्य को राक्षस–विहीन कर दिया। गोदावरी के तट पर निवास करते हुए उनकी भार्या सीता का अपहरण हुआ। सीता को वनों तथा पर्वतों पर खोजते हुए उन्होंने तुम्बुरु नामक गन्धर्व को मुनि–शाप से मुक्त किया। यहाँ थोड़ी दूर पर स्थित पम्पा पुष्करिणी के तट पर मतंग ऋषि के आश्रम पर उन्होंने अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए चार माह तक निवास किया; किन्तु इस लम्बी अवधि में एक बार भी आपने तपस्वी–जीवन व्यतीत करने वाले वियोगी राम को देखने का कष्ट नहीं किया।

मैं राम का अनुज लक्ष्मण हूँ तथा जन्म से ही उनका प्रियभाजन रहा हूँ। राम के मङ्गल कार्यों का सहचर रहा और जब वे वनवास मार्ग पर चले तो मैंने भी सहर्ष उसे स्वीकार किया। राम की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने में मैं सक्षम भी हूँ। "गुरुओं का अनुसरण हर स्थिति में फलप्रद होता है। आपने कृपापूर्वक हम लोगों को निवास का स्थान दिया, जहाँ हम लोग इतने दिनों तक आनन्दपूर्वक रहे। अपने कार्यवश हम लोग जाना चाहते हैं। आपको यही सूचना देने चला आया।"1 सिद्धान्त है कि जिसके घर में रहा जाय उसे बिना बताये नहीं जाना चाहिए। राम की चरणधूलि को सिर पर धारण करने वाले मेरे लिए जब तक हाथ में धनुष है, कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।"[2]

---

1. अद्य युद्धाय सन्नद्धं तमन्वग् यामि सायुधः।
   अनुवृत्तिर्गुरूणां हि लोकद्वयफलप्रदा।। –रघुवीरचरितम्, 10/31
2. साम्प्रतं गन्तुमिच्छामस्ततः कार्यान्तरोद्यताः।
   न गन्तव्यं ह्यनामन्त्र्य परं परगृहोषितैः।। –रघुवीरचरितम्, 10/41

लक्ष्मण की व्यंग मिश्रित वाणी का श्रवण कर सुग्रीव तत्काल लक्ष्मण के चरणों को पकड़कर कृपा की याचना करने लगा और तुरन्त राम के पास पहुँचा। भय से कातर उसका शरीर पसीना–पसीना हो गया। सुग्रीव की इस दशा को देखकर परम कृपावत्सल राम मधुर वाणी में बोले, "मित्र सीता के खोज का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। राम की इस बात को सुनकर सुग्रीव ने वानरों का आह्वान किया।

वे असाधारण वानर थे। उनके किलकिलाने की ध्वनि से सम्पूर्ण दिगन्त काँप उठा। पृथ्वी मण्डल को मसल देने की उनकी क्षमता थी। वायु के मार्ग को भी रोकने में वानरी सेना हाथ जोड़कर राम के समक्ष आकर खड़ी हो गयी। हनुमान, अंगद, नील और जामवन्त को लक्ष्य कर सुग्रीव ने कहा कि आप लोग सेना को विभक्त कर प्रत्येक दिशा में भेजें और पता करें कि सीता कहाँ हैं किस अवस्था में हैं ? सुग्रीव के आदेश को स्वीकार करते हुए उन लोगों ने अपने भाग्य को सराहते हुए कहा कि हम लोग कितने भाग्यशाली हैं कि विश्व का उपकार करने वाले का हम लोग उपकार कर रहे हैं। सुग्रीव ने उन्हें फिर आदेश दिया कि यह कार्य एक माह के भीतर अवश्य हो जाना चाहिए।

चारो दिशाओं में प्रस्थान करने उद्धत वानरों को देखकर संकेत से हनुमान को राम ने अपने समीप बुलाकर कुछ विशेष वार्ता की कि सभी वानरों के प्रति मेरा प्रेम समान हैं, परन्तु तुम्हारे प्रति विशेष। सीता की खोज में जाते हुए तुम्हें देखकर मेरे नेत्र प्रसन्न हैं। मुझे विश्वास है कि तुम सीता का अवश्य पता लगा लोगे। यद्यपि कि सभी वानर मेरे लिए भयंकर कार्य करने में पीछे नहीं रहेंगे लेकिन तुम्हारे प्रयास से ही सिद्धि प्राप्त होगी। अतः ऋषि द्वारा प्रदत्त यह रत्न की अंगूठी जो मेरे प्राण के

समान है। सीता में विश्वास उत्पन्न करने के लिए दे रहा हूँ। अंगूठी प्रदत्त करते हुए राम ने हनुमान से कहा कि तुम हर प्रकार से योग्य और सक्षम हो। तुमसे इससे अधिक कहना उचित नहीं है।

राम ने हनुमान से कहा कि "सीता के मिलने पर इतना कहना कि अयोध्या के उपवन में हम दोनों के बीच जो केलि होती थी, उसे आप भूली नहीं होगी। ऐसा कहकर सीता को उत्कण्ठित करना। अपने प्रिय से वियुक्त स्त्रियों के लिए प्रिय का सन्देश महौषध का कार्य करता है।"[1] उनसे यह भी कहना कि राम ने कहा है कि आप जहाँ कहीं भी होंगी, आपको खोजकर अपने साथ ले जायेंगे। राम की दी गयी अंगूठी को लेकर उनको शीष नवाते हुए वानर–समूह के साथ दक्षिण दिशा को प्रस्थान किये।

पर्वतों पर उछलते–कूदते वानरों सहित हनुमान सीता की खोज करते–करते कण्डमुनि द्वारा शापित मरुस्थली में पहुँच गये। पथ भूलने के कारण चञ्चल वानर–समूह सहसा एक भयंकर बिल में प्रवेश कर गये। भूख तथा प्यास सहित खिन्न मन से वे इधर–उधर घूम रहे थे। बिल से बाहर आने पर इन लोगों की भेंट सम्पाति से हुई जिससे इन लोगों ने जटायु का वृतान्त कहा। सम्पाति ने कहा कि सीता इस समय लंका में है। लंका की दुर्गम भयंकरता से वानर–समूह हताशा से हतप्रभ हो उठा, परन्तु जामवन्त ने उत्साहवर्धन से ये लोग आगे बढ़े और समुद्र तट पर आ पहुँचे।

समुद्र पार करने हेतु आपस में विचार–विमर्श होने लगा। कोई भी पार जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस पर हनुमान को लक्ष्य कर जामवन्त

---

1. इति विज्ञाप्य मद्वाचा तामुच्छ्वासय सुब्रताम्।
   स्त्रीणां हि प्रियसन्दिष्टं वियुक्तानां रसायनम्।। –रघुवीरचरितम्, 10/78

ने कहा, "अति प्राचीन समय में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के शरीर से प्रातः मेरी उत्पत्ति हुई। उसके बाद मुनियों और मन्वादि की रचना हुई। ब्रह्मा के सारे सृष्टि–क्रम, प्रलय, कल्पभेद और मुनियों की उत्पत्ति का मुझे पूर्ण संज्ञान है। इतना ही नहीं, प्रलयकाल में वेदों की खोज करने वाले मत्स्यावतार समुद्र–मन्थन को सफल बनाने वाले महाकूर्म, हिरण्याज्ञ से पृथ्वी का उद्धार करने वाले महाबराह, हिरण्यकश्यप के विकट वक्षस्थल को विदीर्ण करने वाले नरसिंहावतार, तीन पग से तीनों लोक को नापकर जीतने वाले वामनावतार, इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश करने वाले परशुराम आदि को मैंने देखा हे और उनके क्रिया–कलापों को जानता हूँ। इस वक्त ब्रह्मलोक या आकाश–पाताल की यात्रा मेरे लिए एक क्रीड़ा मात्र थी। तब मेरी युवावस्था थी। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अब उतना साहस नहीं है। दूसरी बात यह कि सीता की खोज में उद्यत लोगों के बीच से राम ने तुमको बुलाकर अंगूठी दी तथा तुम्हारे पर अपना विश्वास व्यक्त किया। अङ्गदादि भी समुद्र पार करने में सक्षम हैं। फिर भी राक्षसों से बचकर लौटना दुष्कर है। इस कार्य में तुम पूर्ण सक्षम और समर्थ हो।

जामवन्त के ऐसे उत्साहपूर्ण सम्बोधन का श्रवण कर हनुमान में अनोखी स्फूर्ति का संचार हुआ। परिणामस्वरूप तन और मन दोनों तरह से वह दृढ़ प्रतीत हुए।

एकादश सर्ग –

ताम्बवान् के उद्‌बोधन से अत्यन्त प्रेरित पराक्रमी हनुमान अपहरण की गयी सीता की खोज में प्रस्थान किये। सीता के विरह सन्तप्त राम और सुग्रीव की सदाशा की पूर्ति के लिए हनुमान सागर पार करने के

दृढ़ संकल्प का धारण करते हुए महेन्द्र पर्वत के ऊँचे शिखर पर बढ़े। उस समय हनुमान का शरीर विलक्षण शोभा से परिपूर्ण था। राम के कार्य के लिए परिकरबद्ध हनुमान का दर्शन कर सारी प्रकृति जय–जयकार तथा कल्याण की कामना करने लगी।

पवन वेग से शक्तिशाली हनुमान ने जिस समय समुद्र लंघन के लिए छलाङ्ग लगायी, महेन्द्र पर्वत का ऊँचा शिखर पृथ्वी के गर्भ में समा गया। देवाङ्गनायें ध्यान से हनुमान को देखते हुए सुगन्धित सुमन का वर्षा करने लगीं। अपनी विशाल काया की गुरुता से सूर्य की किरणों को विदीर्ण करते हुए हनुमान बिना किसी बाधा के अग्रसर होने लगे। उनके वेग की वायु से समुद्र में भयंकर लहरों का उत्थान होने लगा। जल के हट जाने से उसमें छिपे हुए विशालकाय जीव–जन्तु तथा राक्षस दिखायी पड़ने लगे।

हनुमान को वेग से जाते हुए देखकर समुद्र के अन्दर से मैनाक पर्वत जल के ऊपर आकर उनका स्वागत करने लगा। हनुमान जी थोड़ी देर रुक कर उसे कृतार्थ करते हुए अग्रसर हुए। इसी बीच उनके बल–पौरुष के परीक्षण के लिए नागमाता सुरसा मार्ग रोक कर खड़ी हो गयीं और अपना विशाल रूप दिखाया। हनुमान ने उसके रूप और आकार से अपना रूप और आकार दुगुना कर दिया। इससे प्रसन्न होकर सुरसा ने इनका मार्ग छोड़ दिया। कुछ दूर और जाने पर आकाश–पाताल को एकाकार करने वाला एक भीमकाय राक्षस दिखायी पड़ा। हनुमान जी वायु वेग से उसके मुख मार्ग से उसके उदर में प्रवेश कर अपने नखों से उसे विदीर्ण कर दिया। इसी प्रकार छाया–ग्रहणी राक्षसी का वध कर सारी विघ्न–बाधाओं को दूर करते हुए सहज भाव से समुद्र को पार कर त्रिकूट पर्वत पर पहुँच गये।

द्वादश सर्ग –

त्रिकूट पर्वत पर आरोहण कर वहीं से हनुमान ने लंकापुरी पर दृष्टिपात किया। वे लंकापुरी के वैभव तथा उसकी अभेद्य सुरक्षा का निरीक्षण कर आश्चर्यचकित हो उठे। उसके उत्तरी द्वार पर आ पहुँचे। लेकिन रक्षा में संलग्न राक्षस–सैनिकों को शीघ्रता से देखकर उधर से पुरी प्रवेश का विचार त्यागकर परिखा को लाँघकर अन्दर प्रवेश करने का विचार किया। सन्ध्या के अन्धकार का लाभ उठाते हुए लघु रूप धारण कर लंकापुरी में प्रवेश कर गये। एक अट्टालिका से दूसरी अट्टालिका को द्रुतगति से लाँघते हुए हनुमान जी रावण के महल के अन्दर प्रवेश कर गये। वहां देवता, दैत्य और मानव वर्ग की बहुत सी नारियाँ दिखायी पड़ी, परन्तु उनमें सीता नहीं थी।

हनुमान उद्यान, वाटिका, तालाब, गलियों और बाजारों में तथा अन्य अन्तःपुरों में सीता के खोज का अथक् प्रयास किया। यहाँ तक कि परस्पर वार्ता करते हुए लोगों को भी सुना लेकिन सीता का कोई भी संकेत नहीं प्राप्त हो सका। प्रयास की विफलता पर हनुमान अत्यन्त चिन्तित हो उठे। समुद्र–लंघन को निष्फल प्रयास मानते हुए उनको विचार आया कि यदि सीता का पता नहीं चला तो किस मुँह से अपने मित्रों के पास जा सकूंगा।

"किसी पर भी स्वामी का विशेष विश्वास कील के समान चुभा रहता है। वह कृतज्ञ व्यक्ति के हृदय में चुभा रहता है। जब तक उसे निकाल नहीं लेता, तब तक चैन नहीं मिलता। स्वामी के कार्य में आलस्य करने वाले व्यक्ति का जीवन दुष्कर होता है। हनुमान सोचते हैं कि मैंने सीता का अथक् खोज किया लेकिन वे कहीं भी दिखायी नहीं पड़ी। इस सूचना

को सुनकर राम के मन में क्या प्रतिक्रिया होगी।''[1]

"सेवा–कार्य में संलग्न बहुत से लोगों में से यदि गुणों के कारण किसी व्यक्ति विशेष में यदि स्वामी अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है तो अन्य लोग उसके कार्यों में छिद्रान्वेषण करते हुए उसे नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। अच्छी प्रकार से कार्य सम्पन्नता पर भी भृत्य को उसका यश नहीं मिलता।''[2]

"आज्ञापालक, सदा हितचाहक व्यक्ति राजा का प्रिय नहीं होता जबकि कुछ लोग कार्य पूरा होने पर राजा के विशेष प्रिय हो जाते हैं। प्रभु के कार्य के प्रति जागृत रहना भृत्य का प्रधान गुण तथा कर्त्तव्य है। इसके विपरीत चिकनी–चुपड़ी बात कर विश्वास उत्पन्न कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले पौरुषहीन व्यक्ति पिशुन और चोर के जाते हैं।''[3]

आत्म–मन्थन करते हनुमान ने दृढ़ निश्चय किया कि सीता का पता लगाये राम के समक्ष उपस्थित नहीं होऊँगा। चाहे सीता आकाश में हो या पाताल या कहीं भी हो। देवताओं की प्रार्थना कर वे पुनः सीता की खोज में रत हो गये। वे एक वाटिका में पहुँचे। वहाँ अस्त्रों–शस्त्रों से सुसज्जित राक्षसियों के बीच एक दीन–हीन नारी का उन्हें दर्शन हुआ। उसे देखकर हनुमान का मन कुछ हिर्षत हुआ। उन्होंने सोचा कि यह रावण द्वारा बन्दिनी बनायी गयी स्त्री के अतिरिक्त और कौन हो सकती है ? उसकी दीन–हीन स्थिति वियोगिनी की दशा बता रही है।

---

1. सामान्यवृत्तिं परिलङ्घ्य पुंसां सम्भावना भर्तकृताहि शल्यम्।
गाढ़ं निमग्नं हृदये कृतज्ञस्तदुद्धरिष्यन् लभते न निद्राम।। –रघुवीरचरितम्, 12/23
2. सेवामृतां भावितया गुणैर्वा प्रसादभूमिर्यदि कोऽपि भर्तुः।
विशेषतः कर्मसु तस्य दोषानारोप्य चान्ये परिभावयन्ति।। –रघुवीरचरितम्, 12/25
3. फलन्ति चेत्स्वाभिगुणाः समस्ताः क्रियां विमूढा यदि भृत्यदोषः।
निरन्तरक्लेश निदानभूतां धिगीदृशीं किंकरतामनाधाम्।। –रघुवीरचरितम्, 12/26

उन सब को देखकर हनुमान के मन में विचार उठने लगे कि न जाने वह कौन–सा पुरुष है, विधाता ने उसकी रचना की है या नहीं, जिसके हेतु इसने इस प्रकार का वेश धारण किया है। उसी के अनन्तर प्रकाश–साधन धारण की हुई कुछ नारियों के साथ रावण आता हुआ दृश्यगत हुआ। जब वह उस दीन–हीन की स्त्री के समीप आ पहुँचा तो उसने तृणा से अपना मुख दूसरी दिशा में फेर लिया। सीता के इस आचरण से रावण अनेक प्रकार की धमकियाँ तथा कटु वाक्य कहते हुए अत्यन्त कुपित होकर चला गया।

रावण के इस प्रकार लौट जाने के पश्चात् राक्षसियाँ नींद में आ गयीं। रात्रि का कुछ ही भाग शेष था। वह स्त्री विलाप कर रही थी। उस समय झाड़ी की ओट में छिपकर हनुमान सारे दृश्य का अवलोकन कर रहे थे। वे एकाएक सीता के समक्ष प्रकट हो गये लेकिन उन्हें देखकर भी वे इसे राक्षसी माया ही समझी। लेकिन हनुमान के हाव–भाव और विनम्रता को देखकर सीता को कुछ विश्वास हुआ।

त्रयोदश सर्ग –

हनुमान को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह स्त्री सीता के अतिरिक्त और कोई नहीं है। वे विनम्र भाव से करबद्ध होकर सीता के समक्ष उपस्थित हुए। उनकी दीनदशा को देखकर कुछ समय के लिए हनुमान की वाणी अवरुद्ध हो गयी। फिर संयमित होकर सीता को प्रणाम करते हुए उन्होंने अपने परिचय देने के ध्येय से राम के जन्म से लेकर आज तक की घटनाओं का वृतान्त उपस्थित किया।

हनुमान ने सीता को सुनाया कि वर्तमान में उनके वियोग से राम

की क्या स्थिति है ? कितने मर्माहत हैं ? रावण द्वारा आपका अपहरण किये जाने पर वे किस प्रकार व्याकुल होकर दण्डकारण्य का कोना–कोना आपकी खोज में छान डाले। इसी खोज में आपके पैरों का नूपुर प्राप्त हुआ जिससे राम ने धैर्य धारण किया। ऋष्यमूक पर्वत पर किस प्रकार के कष्ट से उन्होंने चार माह तक वियोगी अवस्था को व्यतीत किया। वर्षाकाल की समाप्ति पर शरद ऋतु के आगमन के बाद आपके खोज की प्रक्रिया अत्यन्त गतिमान् हुई।

महाराज सुग्रीव के आदेश से कि एक माह के भीतर आपका पता लगा लिया जाय सभी दिशाओं में वानरों का समूह आपके त्वरित खोज के कूच कर गया। गिने–चुने विशिष्ट वानरों को उन्होंने दक्षिण दिशा में भेजा, मैं भी उनमें से एक हूँ। प्रस्थान करते समय आपके विश्वास हेतु राम ने इस मुद्रिका को मुझे प्रदत्त किया। वयोवृद्ध जामवन्त के आदेश को पाकर अनेक प्रकार के विघ्न बाधाओं को झेलते हुए समुद्र का लंघन कर आपकी खोज में तल्लीन हुआ।

खोज की प्रक्रिया में लंकापुरी की प्रत्येक अट्टालिकाओं, अन्तःपुरो, बिथियों का चप्पा–चप्पा खोज डाला लेकिन कहीं भी आपको नहीं पाया। मैं अत्यन्त निराश हुआ। आपके पता लगाने से मेरे जीवन–मरण का प्रश्न खड़ा था। सहसा मेरी दृष्टि अस्त्र–शस्त्र धारण की हुई जातुधानियों पर पड़ी जो आपको घेर कर खड़ी थीं। मैं लता की ओट में छिप गया। इसी बीच रावण को देखकर तथा उसकी बातों को सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि आप ही राम की धर्मपत्नी सीता ही हैं। आप मुझे राम का भक्त समझ कर कृतार्थ करें।

इस वार्ता के बाद सीता को प्रणाम कर उनके हाथों में राम की दी

हुई मुद्रिका को सौंप दिया। हनुमान ने राम के आदेश के रूप में अयोध्या के केलि का उन्हें स्मरण दिलाया। सीता को भी पूर्ण विश्वास हो गया कि कोई अन्य नहीं अपितु राम का अत्यन्त विश्वासी विशेष दूत है।

सीता ने जयन्त द्वारा दिये गये अपमान् का वृतान्त राम को सन्देश के रूप में स्मरण दिलाने के लिए हनुमान से कहा। उन्होंने अपनी चूड़ामणि हनुमान को प्रदत्त कर तत्काल विदा किया। सीता के दर्शन से हनुमान अत्यन्त भाव–विभोर हो उठे।

हनुमान मनोमान् अशोक वाटिका को उजाड़ कर लता, कुंज, वापी, तड़ाक तथा सुन्दरतम भव्य भवनों को तहस–नहस करने लगे। बन्दर के उत्पात से नगर की स्त्रियाँ भय से कातर होकर अपने पुत्रों तथा पतियों को छोड़कर छिपने लगीं। वाटिका की रक्षक राक्षसियों ने एक बन्दर के ऐसे उत्पात को रोकने का अथक प्रयास किया लेकिन वे सभी कालकवलित हो गयीं। इस प्रकार आतंकित होकर शेष बची रक्षक राक्षसियाँ इसकी सूचना रावण को दी।

हनुमान के आतंक से पीड़ित लंकापुरी की अबला, वृद्ध और अन्य पुरुष–स्त्री वर्ग भय से कांपते हुए इधर–उधर भागने लगे। रक्षकों द्वारा अशोक वाटिका को उजाड़े जाने की सूचना से रावण आग बबूला हो उठा। उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार और मेघनाद को भारी सेना के साथ उस वानर को जीवित या मुर्दा पकड़ कर लाने का आदेश दिया। ऊपर से आते देख हनुमान ने विशालकाय वृक्षों को उखाड़–उखाड़ फेकना शुरु कर दिया। इस प्रबल प्रहार से त्रस्त अनेक सैनिक भाग खड़े हुए।

अक्षयकुमार युद्ध से विरत हो गया। कोई उपाय न देखकर मेघनाद ने अभितन्त्रित ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। अस्त्र की मर्यादा में हनुमान उसके

वशीभूत हो गये। पकड़ कर जब हनुमान को रावण के समक्ष पेश किया गया, इस बात को सोचकर कि दूत अबध्य होता है, तैलयुक्त वस्त्र हनुमान की पूँछ में लपेटकर आग लगा दी गयी। हनुमान ब्रह्मपाश मुक्त थे। बिना किसी बाधा के उछलकर अट्टालिका पर जा चढ़े।

अपनी जलती हुई पूँछ की लपटों से हनुमान दौड़–दौड़ कर चारो तरफ आग लगाने लगे। देखते ही देखते स्वर्णपुरी लंका आग की लपटों से घिर गयी। रावण इस सारे दृश्य को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया और किसी भी प्रकार के प्रतिकार करने में सर्वथा असमर्थ था। हनुमान ने अपनी छलाङ्ग सागर में लगायी और अग्नि को बुझा लिए तथा वापस लौट पड़े।

कार्य सम्पन्नता पर हनुमान से मिलकर अङ्गदादि वानरों को अतीव प्रसन्नता हुई। मुदित मन उछलते–कूदते सभी वानर सुग्रीव की प्रिय वाटिका मधुवन में अवस्थित होकर ताजा–ताजा मधुपान करने लगे। रक्षक दधिमुख ने जब यह समाचार राम के साथ विराजमान् सुग्रीव को सुनाया तो सभी लोग अत्यन्त ही गदगदायमान् मुदित हुए, क्योंकि दक्षिण दिशा से लौटे वानरों के इस कृत्य से उन लोगों को विश्वास हो गया कि सीता का पता इन लोगों को मिल गया।

मधुपान से छक कर जामवन्त के नेतृत्व में यह वानर–समूह राम के समक्ष उपस्थित हुआ। प्रणाम कर ज्यों ही हनुमान राम के सामने पहुँचे, त्यों ही राम ने प्रश्न किया कि सीता का कुछ पता चला। हनुमान ने सीता की व्यथा और दीन–दशा का वर्णन राम से किया तथा कहा कि एक दिन का विलम्ब हो जाने पर कुछ अन्यथा होने वाला था।

सीता के समाचार को राम को सुनाते हुए सीता द्वारा निर्दिष्ट जयन्त

की कथा से राम को स्मरण कराया तथा सीता द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि को उनके हाथों में दे दी।

चतुर्थ सर्ग –

"सीता द्वारा हनुमान को प्रदत्त चूड़ामणि को प्राप्त कर राम भाव–विभोर होकर परम आह्लादित हुए। राम के नेत्रों से आनन्द के अश्रु प्रवाहित होने लगे। सामान्य स्थिति प्राप्त होते ही राम ने हनुमान को आलिंगनबद्ध कर लिया तथा लक्ष्मण और सुग्रीव की ओर दृष्टिपात किया।"[1]

"लक्ष्मण तथा सुग्रीव राम के आशय का परिज्ञान कर लिया तथा वानर–नायकों से विचार–विमर्श के उपरान्त लंका पर चढ़ाई करने का निश्चय किया और तुरन्त सेना के कूच करने का आदेश दिया।"[2]

लंका की ओर कूच करती हुई वानरी–सेना के सैलाब को विलोक कर ऐसा प्रतीत होता था सारा भूमण्डल तथा व्योममण्डल वानरमय हो गया है। आश्रम को प्रणाम कर धनुर्धारी राम जब प्रस्थान किये तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि सेना के साथ सम्पूर्ण प्रकृति भी उनका अनुगमन कर रही है। जामवन्त द्वारा अनुशासनबद्ध नील के नतृत्व में सेना अग्रसर हुई। पीछे–पीछे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान तथा अंगद के अतिरिक्त अन्य प्रमुख वानर–वृन्द नायक चल दिये। मार्ग के अवरोधों को समाप्त करते हुए सेना समुद्र तट पर आ पहुँची। सागर के वंशज राम को अपने क्षेत्र में आया देखकर सागर उत्तल तरंग लेने लगा, और इन लहरियों के माध्यम से ढेर

---

1. अवलेपमशान्तानां भ्रंशयत्यापदागमः।
   समुच्छ्रितं नदीकूलं वेणीवेग इवोद्धतः।। –रघुवीरचरितम्, 14/22
2. स सान्त्वपूर्वमानीय सचिवान् मन्त्रेसम्मातान्।
   प्रयुक्तसमुदाचारान् गिरिमित्थं मसादये।। –रघुवीरचरितम्, 14/23

का ढेर रत्न राम के स्वागत में उपस्थित कर दिया। उसी समय रावण का एक दूत शुक समाचार लेने के निमित्त वहाँ आया। इसे बुरी तरह बाँधकर वानरों ने राम के समक्ष प्रस्तुत किया। राम ने उसका बन्धन खुलवाकर उसे मुक्त भी कर दिया।''[1]

अपने दूत शुक के माध्यम से समाचार से विज्ञ रावण ने परामर्श हेतु अपने मन्त्रिमण्डल की बैठक आहूत की। उसने मन्त्रियों के गुण तथा कर्त्तव्य बोध के साथ–साथ राजा के गुणों और कर्त्तव्यों का उल्लेख किया कि ''राज्य का कार्यभार मन्त्रियों को सौंपने तथा उन पर विश्वस्त राजा कभी भी बैरियों से पराजित नहीं होता। मन्त्रियों से हीन राजा कर्णधार–रहित नौका के समान होता है। दूत के समाचार से मन्त्रियों को अवगत कराया।''[2]

रावण ने कहा कि लंका पर आक्रमण के उद्देश्य से राम और लक्ष्मण वानरी सेना के साथ समुद्र तट पर आ पहुँचे हैं। इस बात को सुनकर मेघनाद आदि ने युद्ध करने का अपना विचार प्रकट किया। ''व्यसन में लिप्त मेघनाद आदि के अपमार्ग में प्रवृत्त करने वाली इस प्रकार की बात को सुनकर रावण ने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए विभीषण ने टिप्पणी की। प्रारम्भ से परिणाम तक कर्म के प्रति एकरूपता अत्यन्त दुर्लभ है। तुम्हारी प्रवृत्ति सदा कुमार्ग पर रही है।''3 यही कारण है कि राजा बालि, सहस्त्रार्जुन और बलि के द्वारा पराजय के स्वाद को जानते हुए भी तुम

---

1. विवेकोऽभ्युचितज्ञान भर्तृचित्तानुसारिता।
   एतलायममात्यानां गुणः शश्वत्सुखावहः।। –रघुवीरचरितम्, 14/24
2. नृपश्वीर्मन्त्रिणा हीना कर्णधारेण नौरिव।
   विपत्तरंगसंक्षोभैरपविद्धावसीदति।। –रघुवीरचरितम्, 14/28
3. आजन्मनः प्रवृतस्य प्रारम्भपरिणामयोः।
   एकधैव स्थितं कर्म पुरुषस्यातिदुर्लभम्।। –रघुवीरचरितम्, 14/37

यह नहीं सोच पा रहे हो कि तुम्हारे लिए किस प्रकार की विपत्ति आने वाली है। अनास्थापूर्वक जिस वस्तु की पहले उपेक्षा कर दी जाती है, बाद में घोर प्रयास करने पर भी वह प्राप्त नहीं होती। पहले तुमने ध्यान नहीं दिया और आज नीति की बात कर रहे हो। इस प्रकार रावण की कमजोरी बताते हुए विभीषण ने कहा कि सूर्पणखा जङ्गल में रहने वाले राम को पति रूप में प्राप्त करना चाहती थी जिसके कारण लक्ष्मण द्वारा नाक–कान काट कर विद्रुप कर दी गयी। उसी ने खर–दूषणादि महाशक्तिशाली राक्षसों को राम के तेजरूपी अग्नि में झोंक दिया। अब वह ऋषि–प्रयुक्त कृत्या की भाँति तुम्हारे पास आयी है। निश्चय ही यह राक्षस कुल के समूल नाश का कारण बनेगी। आज तुम्हारे मन्त्री और तुम युद्ध की बात करते हो। सीता का हरण राम की अनुपस्थिति में तुमने चोरी से किया। राम के सामने जाने का तुम्हारा साहस नहीं हुआ।"

विभीषण ने फिर कहा कि "इस बात को तुम भूल गये हो कि तुम्हारे और तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाने वाले तुम्हारे योद्धाओं के सामने एक अदना बन्दर लंका को राख कर गया। इस समय युद्ध की बात करने वाले तुम्हारे शुभचिन्तकों में से कोई भी उसे रोकने का साहस तक नहीं कर सका, फिर भी मद्र और अहंकार से अभिभूत तुम उचित–अनुचित का विचार नहीं कर रहे हो। "तुम्हें इस बात को अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि राम सामान्य मनुष्य नहीं हैं। इस पृथ्वी पर राक्षस–कुल का नाश करने वाले दैवीशक्ति के रूप में अवतरित हुए हैं। अतः तुम्हारी भलाई इसी में है कि पुलस्त्य ऋषि को आगे कर ससम्मान सीता को राम को सौप दो।"[1]

---

1. इति विज्ञापिते तेन मामाबाहुल्यदर्शिभिः।
कपिभिः शंकितं सर्वै सुग्रीवेण च धीमता।। –रघुवीरचरितम्, 14/59

विभीषण की समझाने की बातों को सुनकर क्रोधाग्नि में जलता हुआ रावण खड्ग लेकर तमतमाया हुआ खड़ा हो गया तथा अनेक प्रकार के बुरे वचनों का प्रयोग किया।

रावण के कुवचनों को सुनकर विभीषण तत्काल अपने चार सहायकों के साथ राम की शरण में आ गया। "विभीषण के मुख से रावण की स्थिति को सुनकर उसी समय राम ने राक्षस–राज्य के पद पर लक्ष्मण द्वारा विभीषण का अभिषेक कराया।"[1] सीता के वियोग से अत्यन्त दुःखी राम ने तीन दिन तक वरुण की प्रतीक्षा की; किन्तु वरुण पर इसकी कोई प्रतिक्रया नहीं हुई जिससे वरुण के प्रति राम में अत्यन्त आक्रोश उत्पन्न हुआ।

राम के मानसिक स्थिति का परिज्ञान कर सुग्रीव तथा विभीषण आदि विशेष रूप से चिन्ताग्रस्त थे। उधर देवगण भी आशंका में डूबे प्रतीत हो रहे थे। तत्काल लक्ष्मण ने हनुमान पर दृष्टि निक्षेप किया। अपना धनुष–बाण सम्भाला और गायत्री का उपस्थान कर समुद्र के प्रति अभिमन्त्रित अग्नि बाण का प्रयोग किया। सागर में निरन्तर वास करने वाला बड़वानल को भी उस वाणाग्नि ने आत्मसात कर लिया जिससे वाणाग्नि की प्रचण्डता और अधिक वढ़ गयी।

समुद्र के गर्भ में सन्निहित पर्वतों में भयंकर विस्फोट होने लगा। सभी जीव–जन्तु अग्नि–ज्वाला से दग्ध होते हुए बाहर आ गये। इस प्रकार की भयावह स्थिति को देखकर सागर शोणभ्रद को आगे कर गंगा आदि नदियों को साथ लेकर राम की शरण में आ गया। उसे देखकर राम का

---

1. दैवादुयनते विन्दे मूहूतैऽभिजिता युते।
रामस्तं राक्षसैश्वर्से जक्ष्मणेनाभ्यषेचयेत्।। –रघुवीरचरितम्, 14/61

क्रोध समाप्त हो गया। उनका मुखमण्डल देदीप्यमान हो उठा।"[1]

सागर ने नदियों का परिचय कराते हुए उनकी कृपा की याचना की तथा कहा कि मैं किस योग्य हूँ ? आपकी सहायता किस प्रकार कर सकता हूँ ? मुझे आज्ञा दें। राम ने इस पर लंका जाने के लिए सेतु निर्माण की बात बतायी। सागर ने तथास्तु कहा। राम ने इस कार्य में प्रवीण विश्वकर्मा के सपुत्र नल को बुलाया और आदेश दिया कि हनुमान द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर सेतु का निर्माण होना चाहिए। सेतु निर्माण का आकार–प्रकार भी बता दिया। सेतु निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया। अपने–अपने कार्य में सब लोग संलग्न हो गये।

"लंका को जोड़ने वाले सेतु का निर्माण पाँच दिनों में पूरा हो गया। जिस समुद्र की स्थिति से रावण लंका को दुर्गम समझ लिया राम ने उसे सुगम बना दिया। तुरन्त राम सागर को पार कर सेना के साथ लंका में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने अपनी सेना का व्यूहन किया तथा आगे की रणनीति पर विचार–विमर्श करने लगे।"[2]

पंचदश सर्ग –

समुद्र को पार कर राम ने त्रिकूट पर्वत पर सेना का निवेश बनाया। दूसरे दिन प्रातः वानरी सेना इधर–उधर चक्रमण करने लगी। सागर के जल में कतिपय सैनिक बैठकर जल क्रीड़ा करते हुए जल में लहर उत्पन्न करने लगे। "जो त्रिकूट पर्वत सारे राक्षस समूह को धारण करने में समर्थ

---

1. येन रामप्रसादार्थी पथा सञ्चरते स्म सः।
तस्मिन् प्रत्याहृतज्वालः शशाभास्त्राग्निरुल्वणः।। –रघुवीरचरितम्, 14/91
2. सफेनबुद्बुदः सिन्धुर्विभक्तौ नलसेतुना।
सीमन्तित इवाकाशश्छायामार्गेण सग्रहः।। –रघुवीरचरितम्, 14/135

था, वहीं वानरी–सेना के गहन भार से कुछ झुक गया।"[1] "वानरों के कोलाहल से सम्पूर्ण लंका का व्योममण्डल प्रतिध्वनित होने लगा। रावण के रक्षक कोलाहल को सुनकर शीघ्रता से अट्टालिकाओं पर आरोहण कर विशाल वानरी–सेना को देखे तथा तत्काल रावण को इसकी सूचना दी। रावण ने अपनी सेना को बुलाकर तत्काल युद्ध का आदेश दिया। शंखनाद करती राक्षसी सेना सेनापतियों के नेतृत्व में युद्धस्थल पर पहुँच गयी। देखते ही देखते दोनों सेनाओं के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया।"[2]

वानरी–सेना हाथी–घोड़ों पर सवार राक्षस सैनिकों को उछल–उछल कर नीचे फेकने लगी। हाथी–घोड़ों को भूमि पर धराशायी करने लगी। रथों पर पत्थरों के टुकड़े और विशालकाय तरुओं को उखाड़कर फेकने लगे जिससे रथ सवार घोड़ों सहित चूर्ण–चूर्ण होने लगे। कुछ बन्दर राक्षसों के ही अस्त्र–शस्त्र को छीन–छीन कर उनका नाश करने में जुट गये। इस अप्रत्याशित मार से राक्षस सेना घबरा उठी और युद्ध से भागने लगी। इसी वक्त कालनाम का पुत्र विद्युतजिह्व ने वानरों को सम्मोहित करने हेतु माया का प्रयोग किया। इससे चौतरफा पृथ्वी धूम से आच्छादित हो गयी। युद्धस्थल में जलते हुए अंगारों की वर्षा होने लगी। दूसरी ओर माया के द्वारा राम का कटा हुआ कृत्रिम सिर सीता को दिखाया गया। इसे देख शोक–सन्तप्त होकर प्राणोत्सर्ग हेतु उद्यत हो गयी। इसी बीच सीता की हित–रक्षक़ एक राक्षसी सीता को ढ़ाड्स बधाती हुई बोली कि बहन विचलित न होवो। यह सब मात्र राक्षसी माया है। राम–लक्ष्मण के धनुष

---

1. निशिचरकुलधारणक्षमोऽपि प्लवगबलेन गिरिर्दृढाधिरुढः।
अजनि कतिपमाँगुलावगाढः पुनरपि पाथसिवारिधेस्तदानीम्।।–रघुवीरचरितम्, 15/10
2. इति चिरगदितं निशम्य कोपाद् भृशमुपरक्त तनुः स्वयूधनाथान्।
त्रिभुवविजयप्रगल्भवीर्यान् रचनीचराधिपतिर्न्ययुंक्तयोद्धुम।। –रघुवीरचरितम्, 15/13

की ध्वनि को तो सुनों। राक्षस सभी प्रकार से राम–लक्ष्मण का सामना करने में असमर्थ हैं। राम तुमको वापस ले जाने हेतु भयंकर युद्ध में तल्लीन हैं। राम का ईश्वर मङ्गल करें। यह मेरी हार्दिक कामना है।

राम की वानरी सेना तथा राक्षसों के बीच चल रहे घमासान युद्ध को देखने के लिए रावण प्रासाद के ऊपरी भाग पर चढ़ गया। मायावी बात को सुनते ही राम ने दावाग्नि की तरह युद्ध में प्रवेश किया। चारण ने रावण को बताया कि लंकापुरी वानरी सेना से आप्लावित हो उठी है। राक्षस सेना के असंख्य वीर योद्धा मारे जा चुके हैं। रावण ने तुरन्त अपने मरे हुए सैनिकों को युद्धस्थली से हटाने का आदेश दिया। मरे हुए सैनिक घसीट–घसीट कर समुद्र में फेके जाने लगे।

राम के समीप खड़े सुग्रीव को प्रासाद पर आरोहित रावण दृष्टिगत हुआ। वायुवेग से छलांग लगाकर रावण के निकट पहुँच कर सुग्रीव ने उसका मुकुट उतार कर लाकर राम को दिखाया। इस दृश्य को देखकर राक्षस–समूह में हाहाकार मच गया। सायंकाल के पश्चात् चारो ओर निशा का गहनतम अन्धकार फैल गया। दोनों तरफ से सैनिक थकान मिटाने के लिए सागर में प्रविष्ट हो गये। पिता के अपमान से क्रोधित मेघनाद रात्रि के अन्धकार का लाभ उठाकर उग्र माया का प्रयोग किया। इससे आकाश से माँस और खून की वर्षा होने लगी। मेघनाद ने राम और लक्ष्मण पर उरगास्त्र चलाया। दोनों भाई उरगपाश में बद्ध हो अचेतन अवस्था को प्राप्त हो गये।

ज्ञात होते ही गरुड़ तत्काल पहुँच कर दोनो भाइयों को पाश से मुक्त कर दिया। उन दोनों के कल्याण की कामना करते हुए अपने स्थान को प्रस्थान किया। दोनों भाइयों को पाशमुक्त देखते ही मेघनाद तुरन्त

पलायित हो गया।

दूसरे दिन प्रातः युद्ध प्रारम्भ होते ही घोर चित्कार करते हुए जामवन्त अकेले ही राक्षसों की सेना की टुकड़ी को समाप्त कर दिया। नील के द्वारा अत्यन्त पीड़ित किये जाने पर रावण का प्रधान सेनापति युद्ध में विमुख हो गया। इस प्रकार अपनी सेना संहार देखकर रावण अस्त्र–शस्त्र से सज्जित होकर स्वयं युद्ध में आ धमका। उसने वानर–सेना तथा लक्ष्मण को बाण वर्षा से विकल कर दिया। इस स्थित को देखकर कुपित राम हनुमान के कन्धे पर आरूढ़ होकर रावण के समक्ष आ गये।

"क्रोधित राम को देखकर रावण भय से काँप उठा। दोनों महारथी एक–दूसरे के प्रति घात–प्रतिघात करने लगे। दो भुजा वाले राम ने बीस भुजा वाले रावण के बाणों को विफल कर दिया।"[1] "ज्यों ही रावण ने राम के ऊपर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, त्यों ही राम ने जल–दैवत का प्रयोग कर उसे शान्त कर दिया।"[2]

"अनन्तर राम ने अपनी युद्ध–कला तथा हस्त लाघव से रावण के सारे अस्त्र–शस्त्र को काट डाला और उसके रथ को विचूर्ण कर दिया। अत्यन्त घायलावस्था में विकल रावण किसी प्रकार पैदल ही पलायित होकर अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट कर गया। उसे इस अवस्था में देखकर सारे उत्सव बन्द कर दिये गये।"[3]

"चिरकाल से निद्रा की गोद में सुसुप्त कुम्भकर्ण को जगाने का

---

1. प्रमुखोपनते विभौ समन्यौ विधिना निष्पतिधेन लंघितायुः।
   पशुरास स यूपबन्धनेन प्रतिपन्नार्तिरूपाकृतः क्षणेन।। –रघुवीरचरितम्, 15/75
2. बहुबाहुदशाननप्रयुक्ता शरवृष्टि प्रभुणा भुजद्वयेन।
   सशरासनसायकेन रूद्धा परिमा चेत् करणेषु सातिकांक्षा।। –रघुवीरचरितम्, 15/77
3. अथ रामशरैर्निकृत्तशस्त्रप्रकारो भग्नरथो विभिन्नगात्रः।
   अपसृत्य ततः पदातिरन्तः पुरमस्तोत्सवमत्थरं विवेशा।। –रघुवीरचरितम्, 15/79

प्रयास किया जाने लगा। इसके कान के समीप विविध प्रकार के वाद्य–यन्त्रों का प्रयोग किया गया। उसके न जागने पर उसके शरीर पर से ही चतुरङ्गिणी सेना का संचार कर दिया गया।"[1] जागने पर जब कुम्भकर्ण महल के ऊपरी भाग से वानरी–सेना का अवलोकन किया तो उसका भी हृदय कुछ देर के लिए कम्पसयमान् हो उठा।"[2]

वानरों को प्रताड़ित करता हुआ कुम्भकर्ण राम की ओर अग्रसर हुआ। दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में राम ने उसे मार गिराया। उसके मृत्यु के बाद राक्षस शोक में डूब गये। वानर–सेना तथा देवगण हर्षित होकर राम का जय–जयकार जोरों से करने लगे।

षोडस सर्ग –

"कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात रावण ने युद्ध–विद्या में महारथ हासिल करने वाले विशालकाय वाले राक्षसों की सेना को युद्ध के लिए रवाना किया। युद्ध में 80 करोड़ राक्षस मारे गये जिनको घसीट–घसीट कर सागर में डाला जाने लगा।"[3]

"अकेले विभीषण ने रावण के पाँच करोड़ सैनिकों को रणस्थली में काल–कवलित कर दिया। दोनों ओर से घमासान संग्राम होने लगा। कभी एक पक्ष दूसरे पक्ष पर आक्रमण कर भारी पड़ता था, तो कभी द्वितीय पक्ष अपना प्रभाव प्रदर्शित करता था। मेघनाद ने

---

1. बुबुधे विबुधारिणा न तेषाभकृशैः कर्मभिरप्युपद्रुतेन।
   अथ तस्य महत्तमें शरीरे चतुरंगा पृतनाम चारयंस्ते।। –रघुवीरचरितम्, 15/83
2. तमभिक्रममाचरन्तभग्रं निगिरन्तं भिदुरभ्रुणा मुखेन।
   अभिलक्ष्य बलं प्लवंगमानां क्षणमापद्यत चायलं भयेन।। –रघुवीरचरितम्, 15/85
3. अशीतिकोटिसंख्यातैर्बलेनैरावतोपमैः।
   किंकरैराज्ञया भर्तः कृष्टास्ते सागरे कृताः।। –रघुवीरचरितम्, 16/4

दक्षिण दिशा में स्थापित अग्निकुण्ड में यज्ञ–हवन किया। वह क्रोध से सबको भयभीत करने की आवाज करते हुए युद्ध के लिए रथारूढ़ हुआ।"[1]

मेघनाद ने जामवन्त, नील और अङ्गद आदि महारथियों द्वारा सुरक्षित सेना को अपने अस्त्र–शस्त्रों से तितर–बितर कर दिया। "मेघनाद के इस घमासान आक्रमण को देख राम उसके समक्ष स्वयम् आये। दोनों में भयंकरतम युद्ध होने लगा। महान् पराक्रमी और युक्तिशाली हनुमान औषधि के प्रयोग से मारे गये वानरों को फिर से जीवित करने लगे।"[2] फिर से जीवित ये वानर–सैनिक द्विगुणित वेग से राक्षस सैनिकों पर टूट पड़े। इस अप्रत्याशित योजना से राक्षसों का इस प्रकार भयंकर संहार देखकर मेघनाद निकुम्भिला नामक यज्ञशाला में प्रवेश किया। उसकी इस क्रिया में विघ्न बाधा उत्पन्न करने के लिए राम ने विभीषण के साथ लक्ष्मण को भेजा।"[3]

विभीषण के साथ पहुँचकर मेघनाद को यज्ञ में तल्लीन देखकर लक्ष्मण ने उसे युद्ध–के लिए ललकारा तथा कहा कि मैं तुम्हारी सभी मायाओं से विज्ञ हूँ। भागने का प्रयास न करना। लक्ष्मण के इस वाणी का श्रवण करते ही मेघनाद युद्ध में कूद पड़ा। इन दोनों के भयंकर युद्ध को देखकर राम और रावण दोनों आश्चर्यचकित हो उठे। मेघनाद जो भी अस्त्र–शस्त्र चलाता था लक्ष्मण उसे विफल कर देते थे। मेघनाद ने लक्ष्मण पर ज्वलनशील अग्निवाण चलाया। उस समय लक्ष्मण ने ऐसा सरसन्धान

---

1. विभीषणः स्ववीर्येण रामं विस्मापयन रणे।
   रावणानीकयोधानां पञ्चकोटिरचूचुरत्।। –रघुवीरचरितम्, 16/9
2. मेघनादास्त्रनिर्दग्धां कपिसेनामजीवयत्।
   रामदूतः क्षणानीतदविष्टौषधि पर्वतः।। –रघुवीरचरितम्, 16/6
3. स्वबलक्षयभालक्ष्य कृत्याशालां निकुम्भिलाम्।
   प्रविष्य होष्यत कामं विभुर्भेने विभीषणात्।। –रघुवीरचरितम्, 16/18

किया जिससे एक देव आविर्भूत हो उठा तथा उसने मेघनाद के उस अमोघ अस्त्र को तुरन्त शान्त कर दिया।

"मेघनाद और लक्ष्मण दोनों ही महारथी एक दूसरे पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगे। बीच में ही कुछ क्षण के लिए मेघनाद अन्तर्ध्यानित हो गया। माया की सीता का रुदन सुनायी पड़ा। इससे राम और लक्ष्मण के साथ सारी वानरी–सेना शोक के सागर में डूबी हुई प्रतीत होने लगी। प्रकृतिस्थ हो लक्ष्मण ने राम का स्मरण किया और अदृश्य मेघनाद के प्रति सत्यास्त्र का प्रयोग किया। उसे वीरगति प्राप्त करा दिया। मेघनाद के मरते ही लंकापुरी में हाहाकार मच गया जो कि रावण दुष्कर्म का परिणाम था।"[1]

आल्हादित मुदित मन से देवगण नृत्य करने लगे। पुत्र–शोक में रावण घोर विलाप करने लगा। उधर आधा दिन व्यतीत होते–होते राम ने असंख्य राक्षसों को मौत के घाट उतार दिया। कुम्भकर्ण तथा मेघनाद जैसे महाबली के मारे जाने पर भी विजय के आशा से रावण रणस्थली में आ पहुँचा। उसकी पत्नी मन्दोदरी पुत्र–शोक में विलाप करती हुई राम से युद्ध न करने हेतु उसे समझाया भी।

"रावण ने राम को लक्ष्य कर कहा कि यमराज ने तुम्हे मेरे सामने भेज दिया है। इस बात पर राम मुस्कराये। इसी समय एक सहस्त्र अश्वों से जुते हुए इन्द्र के सारथी मातली द्वारा प्रस्तुत रथ पर राम आसीन हुए। उस बेला मे राम उदयाचल पर स्थित भाष्कर के समान दिव्य रूप से देदीप्यमान हो रहे थे। देवता, सुर और महर्षिगण राम का जयगान गाने लगे। पहले रावण ने ही राम पर वाणों की वर्षा की; किन्तु राम ने स्वयं

---

1. भुजातोलतरुद्राद्रौ जीवत्यपि दशानने।
तस्यापक्रमणेनासीन्निष्प्राणं रक्षसां कुलम्।। –रघुवीरचरितम्, 16/35

के हस्तलाघव से उसे विफल कर दिया। राम ने भी प्रत्यावर्तित सरसन्धान किया। उनके वाणों से व्याकुल रावण ने कुछ पीछे हटकर अमोघास्त्र चलाया।"[1]

सूर्य के तेज से तप्त प्रकाशित अगस्त्य ऋषि वहाँ तत्काल पहुँच अपने प्रभाव से रावण के अमोघ अस्त्र से राम की रक्षा की। अन्ततः विषदग्ध वाणों से बेधकर राम ने रावण को मर्माहत कर दिया; किन्तु बेपरवाह रावण राम पर काल के समान झपटा। राम ने खड्ग के प्रहार से उसके दशों सिरों को काट डाला लेकिन फिर भी रावण मरा नहीं। इसके बाद राम ने उसकी बीसों भुजाओं का भी भेदन कर दिया। अन्ततः रावण भूमि पर गिर कर अन्तिम साँस लेने लगा।

"देवतागण राम पर सुमन वर्षा करने लगे। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपने समस्त परिवार को साथ लेकर राम का साधुवाद करने के लिए उपस्थित हुए सपत्नीक ऋषिगण, गरुड़ और मनोकामना पूरित करने वाली कामधेनु भी उपस्थित हुए।"[2]

"उपस्थित देवी–देवताओं का सम्मान कर उनसे आशीर्वाद लेकर उनकी अनुमति से राम स्वयं सीता को ले आये। सीता को सभी ने देखा जो कि दुःखी होकर कृशकाय हो चुकी थीं और उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। इसके बाद वहाँ उपस्थित महादेव, ब्रह्मा तथा अन्य ऋषियों से आज्ञा लेकर राम ने अपने आप में पूर्ण पवित्र सीता की शुद्धि

---

1. अथ मातलिनानीतं सहस्त्राश्वयुजं रथम्।
   आरुरोह विभुर्धोमान् सवितेवोदयाचलम्।। –रघुवीरचरितम्, 16/51
2. अथाभाष्य समाजं तं यथार्ह विहितार्हणः।
   सीतामाययाभास मूर्ता चरित्रदेवताम्।। –रघुवीरचरितम्, 16/72

हेतु अग्नि के हवाले कर दिया।"[1]

वियोग की अग्नि से परितप्त सीता को उस अग्नि ने जलाने की अपेक्षा शीतल कर दिया। वहाँ पर उपस्थित लोगों के बीच राम ने अपनी धर्मपत्नी पवित्र सीता को ग्रहण किया। राम ने विभीषण को बुलाकर रावण और मेघनाद आदि का अन्तिम संस्कार करने का निर्देश दिया। बन्दी बनाये गये असुरों तथा स्त्रियों को उनके–उनके स्थानों पर भेजने का भी आदेश दिया। विभीषण को शेष राक्षसों के साथ राज्य–व्यवस्था ठीक–ठाक करने को भी कहा। राम की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए विभीषण उनके द्वारा निर्दिष्ट सम्पूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर पुनः उनके समक्ष उपस्थित हुए।

आये हुए सभी ऋषिगण तथा देवतागण अपने–अपने स्थानों पर प्रसन्नतापूर्वक वापस चले गये। हनुमान द्वारा लाये गये पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर सभी के साथ राम अयोध्या को प्रस्थान कर गये।

सप्तदश सर्ग –

अपनी धर्मपत्नी सीता को पाकर राम अत्यन्त ही मुदित थे। जब पुष्पक विमान आकाश में पहुँचा तो राम ने कहा "प्रिय सीते ! नीचे लंका दिखायी पड़ रही है। यह सभी भौतिक साधनों से परिपूर्ण अमरावती के सदृश है। इसकी रचना देव–शिल्पी विश्वकर्मा ने कुबेर के लिए किया था, परन्तु कुबेर की इस पुरी के साथ–साथ इस विशिष्ट पुष्पक विमान को भी रावण ने बलपूर्वक अधिगृहीत कर लिया था। देव, दानव तथा मनुष्य सबके लिए दुष्कर अगम्य, इसके वैभव को प्रथमतः हनुमान ने नष्ट किया।

राम ने सीता से कहा कि यह कालिरात्रि की क्रीड़ास्थली युद्धभूमि

---

1. अपवारितसंचारपरिस्पंदपदार्पिणीम्।
   विदूरीभूतसंस्कारशोचनीय नखांगुलिम्।। –रघुवीरचरितम्, 16/75

है। यहीं वह नल द्वारा निर्मित सेतु है जिससे वानरी–सेना ने समुद्र पार किया था। यह विस्तृत अपार सागर है जिसके अन्तराल में रत्न, जीव–जन्तु तथा पर्वत श्रेणियाँ समाहित हैं। यह सात भागों में विभक्त होकर विभिन्न प्रकार के जल से युक्त संसार की सेवा में रत है। सारी प्रकृति के समाप्ति के उपरान्त भी यह और अधिक विस्तृत हो जाता है। महाकल्प की समाप्ति पर भी यह अस्तित्व में रहता है।

मन्दराचल की मथनी से सम्पूर्ण सुर–असुर समूह ने इसका मन्थन किया जिससे लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ जिसे प्राप्त कर विष्णु सम्पूर्ण सौभाग्य के देवता बने। यह हमेशा अपनी मर्यादा में रहता है तथा भगवान मुकुन्द का यह अत्यन्त प्रिय पात्र है। इस प्रकार आकाश मार्ग से प्रस्थान करते समय मार्ग में अवस्थित विशेष स्थानों का परिचय सीता से राम कराने लगे। आगे पथ में चन्दन के विशाल वृक्षों से भरा हुआ मलयपर्वत पड़ा तथा मरुभूमि के उस भयानक बिल को दिखाया जिसमें मार्ग से भटक कर वानर–समूह प्रवेश कर गया था। सीता से राम ने बताया कि ये सम्पूर्ण पर्वत–श्रेणियाँ योगमाया की आवासस्थली विन्ध्य पर्वत की हैं। माल्यवान् पर्वत को भी दिखाते हुए राम ने बताया कि अपने भ्राता बालि के भय से सुग्रीव यहीं निवास करते रहे। इस पम्पा पुष्करिणी पर मतंग ऋषि का आश्रम है।

आकाश मार्ग से अग्रसर होते हुए कबन्ध के मिलन, सीता के नूपुर की प्राप्ति तथा घायल जटायु के निवासस्थान का भी दर्शन कराया। गोदावरी के ऊपर से विमान द्वारा जाते राम ने लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला को भी दिखाया जहाँ वे तीनों लोग सुखपूर्वक निवास करते रहे। मारीच के मायावी छल तथा शूर्पणखा की कहानी का भी वर्णन किया।

तत्पश्चात् अगस्त्य के आश्रम को इंगित करते हुए सुतीक्ष्ण के आश्रम पर पहुँच कर वहाँ विमान से उतरने की अपनी इच्छा प्रकट की।

राम ने सीता को अत्रि के आश्रम को भी दिखाया और स्मरण दिलाया कि यहीं पर अनुसुया ने सुगन्धित से युक्त अनुलेपन तुम्हें लगाया था। सहस्त्रों छात्रों को यम–नियम से अध्ययन करते हुए भरद्वाज आश्रम का दर्शन कराया।

हम लोगों के समक्ष जीते–जी अग्नि में प्रविष्ट हो जाने वाले यह शरभंग ऋषि का आश्रम है। यह निषादराज का स्थान है जहाँ हम लोगों से विछुड़ कर सुमन्त अयोध्यापुरी वापस चले गये। यह ख्यातिलब्ध गंगा तथा यमुना की धारा प्रवाहित हो रही है।

दूर से ही अयोध्यापुरी का झलक दिखाते हुए राम ने सरयू नदी को दिखाया। इस प्रकार सीता का मनोरंजन करता हुआ विमान भरत के आश्रम पर रुक गया। सभी लोगों के उतर जाने पर राम ने पुष्पक को कुबेर के यहाँ भेज दिया। महर्षि वशिष्ट, कुल–गुरु के निर्देशानुसार भरत के आश्रम पहुँच कर राम से भरत के कल्पवास व्रत की समाप्ति की तथा अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक प्रकार के वाद्ययंत्र मधुर स्वर से राम के स्वागत में ध्वनियुक्त थे। बन्दीगण स्तुति कर रहे थे।

अयोध्या नयी दुल्हन की भाँति सजायी गयी थी। जनपथों पर सुगन्ध–द्रव्य का अनुलेपन किया गया था। अट्टालिकाएँ नाना प्रकार के तोरण तथा पताकाओं से विभूषित हो रही थी।

अपने पूर्वजों द्वारा सेवित राजसिंहासन के पास राम सात ड्योढ़ी लाँघकर उपस्थित हुए तथा उनका श्रद्धापूर्वक स्पर्श किया। इसके बाद तीनों माताओं को ससम्मान प्रणाम कर उनका आशीष प्राप्त किया। सीता को

उनके कक्ष में अवस्थित कर विशिष्टजनों को राज्याभिषेक की तैयारी के निमित्त आदेशित किया। भरत राम का धरोहर उनको सौंपकर अप्रतिम आनन्द में विभोर थे।

राम के साथ आये हुए विशिष्टजन राम की आज्ञा से एक वर्ष तक अयोध्यापुरी में निवास किये। फिर राम की आज्ञा को पाकर अपने–अपने स्थानों को प्रस्थान कर गये। राम ने हनुमान को उत्तर दिशा में स्थित भगवान शंकर की क्रीड़ास्थली तथा तपस्वियों की तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध पारिजात पर्वत पर भेज दिया। हनुमान से आग्रह भी किया कि मेरे स्मरणमात्र से ही तत्काल तुम अयोध्यापुरी लौट कर आ जाओंगे।

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार रघुवीरचरितम् का विवेचन

महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। लक्ष्य के आधार पर लक्षण की कल्पना की जाती है – इस नीति के अनुसार वाल्मीकि रामायण तथा कालिदासीय महाकाव्यों के विश्लेषण करने से आलोचकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय रूप का अनुगमन किया तथा आलंकारिकों अपने अलंकार ग्रन्थों में उसके लक्षण प्रस्तुत किये। इन अलंकारिकों में दंडी सर्व प्राचीन है जिनका महाकाव्य का लक्षण सर्वप्राचीन माना जाता है। उनके अनुसार महाकाव्य की रचना सर्गो में की जाती है। उनमें एक ही नायक होता है। जो देवता होता है अथवा वीर उदात्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है। वीर श्रृंगार अथवा शान्त इनमें से कोई रस मुख्य (अंगी) होता है। अन्य रस गौण रूप से रखे जाते हैं।

कथानक इतिहास में प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन का चरित्र वर्णन किया जाता है। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार के वृत्त में रचना की जाती है, पर सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया जाता है। सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए और न बहुत छोटे। सर्ग आठ से अधिक होने चाहिए और प्रसर्ग के अन्त में आगामी कथानक की सूचना होनी चाहिए।

वृत्त को अलंकृत करने के लिए संध्या सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, वन ऋतु, समुद्र, पर्वत आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य किया जाता है। बीच–बीच में वीर रस के प्रसंग में युद्ध मन्त्रणा, शत्रु पर चढ़ाई आदि विषयों का भी सांगोवांण वर्णन रहता है। नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष काव्य की मुख्य वस्तु हसेती है। महाकाव्य का मुख्य

उद्देश्य धर्म तथा न्याय की विजय तथा अर्धम और अन्याय का विनाश होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ प्रणति साहित्य दर्पण (6/779) के अनुसार महाकाव्य के लक्षण –

1. सर्गबन्धों महाकाव्य अर्थात महाकाव्य सर्गों में निबद्ध होना चाहिए तद्नुसार विवेच्य महाकाव्य रघुवीरचरितम् सप्रदश सर्गो में निबद्ध है।
2. महाकाव्य में कोई एक देव या उत्तम वंशज धीरोदान्त क्षत्रिय अथवा एक कुल में उत्पन्न अनेक राजाओं के चरित्र का वर्णन आवश्यक होता है। तद्नुसार इस महाकाव्य में उत्तम सूर्यकुल में उत्पन्न धीरोदान्त क्षत्रिय एवं देव ही नहीं वरन् परमात्मा श्री रामचन्द्र जी का वर्णन किया गया है।
3. एक एवं भवेदंगी श्रंगारों वीर एवं वा अथवा शान्त रस के अनुसार यहाँ एक मात्र वीर रस की ही प्रधानता है। श्री राम एवं रावण के मध्य युद्ध वीर रस का सांगोपांग चित्रण करता है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य में प्रायः सभी रसों का समावेश है किन्तु वे अंगी अर्थात प्रधान न होकर गौण रूप से ही उपस्थित हुए हैं। प्रधानता केवल वीर रस की ही है।
4. महाभारतांदि इतिहास प्रसिद्ध अन्य किसी सज्जन के चरित्र का वर्णन न होना चाहिए। प्रस्तुत महाकाव्य में आदिकाव्य रामायण (बाल्मीकिकृत) जो इतिहास प्रसिद्ध है तथा सभी महाकाव्यों का आधारभूत प्राणतत्व के सदृश्य है उसकी कथा श्री रामचन्द्र जी के वनवास काल से प्रारम्भ होकर लंका युद्ध के विजय पर्यन्त अबाध गति से चल रही है।
5. महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थी चतुष्टय में से कोई

एक फल लक्ष्य हुआ करता है। रघुवीरचरितम् महाकाव्य में धर्म नामक पुरुषार्थ फल के रूप में रावणबधात्मक दुष्ट निग्रह यही लक्ष्य है, यही फल की प्राप्ति भी है जो नायक को अभीष्ट है।

6. महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण होना आवश्यक होता है वह तीन प्रकार है –

(1) नमस्कारात्मक (2) आशीर्वादात्मक (3) वस्तुनिर्देशात्मक

इन तीनों में से कोई एक प्रकार का मंगलाचरण प्रारम्भ में आवश्यक माना गया है। तद्नुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में रघुवीरचरितम् महाकाव्य के प्रणेता कोलाचल मल्लिनाथ सूरि लिखते हैं –

"श्रियः शिवं धाम सदारसोदर
प्रविश्य रामः पित्वाक्य गौरवात्
वनं महद् दण्डकमाश्रयः सताम्
तपस्विनामाश्रमजातमैक्षत्।।"

इस प्रकार सिद्ध होता है कि यह मंगलाचरण नमस्कारात्मक एवं वस्तु निर्देशात्मक दोनों ही श्रेणियों में आता है।

7. सम्पूर्ण सर्ग में एक ही प्रकार का छन्द होना आवश्यक तथा सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन अपेक्षित है। इस परिभाषा के अनुसार इस महाकाव्य में इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन हुआ है और उदाहरण के लिए प्रथम सर्ग का प्रथम श्लोक द्वादश वर्णात्मक है तथा अन्तिम श्लोक त्रयोदशात्मक है। बीच में अलग–अलग सर्गों में अलग–अलग प्रकार के छन्द भी यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं।

8. कम से कम महाकाव्य आठ सर्गों में अवश्य ही निबद्ध होना चाहिए। यदि इससे अधिक सर्ग हे तो कोई हानि नहीं। साथ ही ये सर्ग न

तो बहुत बड़े हो न ही बहुत छोटे। वरन मध्यम स्थिति के हों।

तद्नुसार महाकाव्य में सप्रदश सर्ग है न तो बहुत बड़े हैं और न ही बहुत छोटे। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत भी हुआ है जो महाकाव्य की कसौटी है।

9. संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष काल, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्यान्ह, आखेत, पर्वत, ऋतु वन, समुद्र, संयोग एवं विप्रलम्भ श्रंगार, मुनि, सर्वग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति, जलक्रीड़ा, वनविहार, आदि में से किन्ही का यथायोग, सांगोपांग वर्णन किया जाता है।

तद्नुसार आलोच्य महाकाव्य में उपयुक्त सभी बिन्दुओं का वर्णन विधिपूर्वक किया गया है। मुनियों के आश्रमों, पर्वतों, वनों, ऋतुओं तथा मुनियों का वर्णन तो यहाँ अनेकशः उपलब्ध हो रहा है। समुद्रवर्णन, युद्ध यात्रा का वर्णन, वन विकारादि सभी दृश्य अपने आकर्षक एवं मनोरम रूप में महाकाव्य में उपनिबद्ध किये गये हैं।

10. कवि, वृत्त, नायक या किसी अन्य मुख्य के नाम पर महाकाव्य का नामकरण किया जाता है।

तद्नुसार रघुवीरचरितम् महाकाव्य में महान प्रख्यात नायक श्री रामचन्द्र जी के नाम पर ही आधारित रघुवीरचरितम् महाकाव्य में इसका नमकरण किया गया है।

अतः विवेच्य महाकाव्य के निष्कर्ष पर पूर्णतया खरा उतर रहा है। इसमें किसी भी प्रकार की विचिकित्सा नहीं है।

रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' में दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षणों को कुछ विस्तार के साथ दुहराया है। ध्यान देने की बात यह है कि रुद्रट

ने उतने ही विषय के उपबृंहण तथा अलंकरण को उचित माना है जिससे कथावस्तु का कथमपि विच्छेद न हो सके। कालिदास के काव्यों में अलंकरण काव्य वस्तु का विच्छेद कथमपि नहीं करता, परन्तु भारवि तथा माघ इस दुष्प्रभाव से बच नहीं सके।

भारवि में मूल कथा के साथ दूरतः सम्बद्ध ऐसे विषय पाँच सर्गों तक तथा माघ में 6 सर्गों तक रखे गये हैं। इस प्रकार इस काल में प्रबन्ध काव्यों में एक्य तथा समन्यव का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है और श्रंगार प्रधान विषयों का उपबृंहण मूल आख्यान के प्रवाह को बहुत कुछ रोक देता है। विषय वर्णन में चमत्कार की कमी नहीं है, परन्तु इन नवीन वस्तुओं के योग से काव्य का विस्तार, अलंकार का विन्यास इतना अधिक हो जाता है कि पाठकों का हृदय आप्यायित न होकर उनका मस्तिष्क पुष्ट होता है। वर्ण्य विषय तथा वर्णन प्रकार के सामजस्य का अभाव जो कालिदास तथा अश्वघोष में खोजने पर भी नहीं मिल सकता इस युग के मान्य कवियों के काव्य की जागरूकता विशेषता है। ब्राह्मण कवियों में चार महाकवि–भारवि, भट्टि, कुमारदास तथा माघ–इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं।

महाकाव्य पर पश्चात्य मत –

पाश्चात्य मत से महाकाव्य दो प्रकार के होते है (1) विकसित महाकाव्य (एपिक ऑफ ग्रोथ), (2) कलापर्ण महाकाव्य (एपिक ऑफ आर्ट) विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों में अनेक कवियों प्रयत्न से विकसित होकर अपने वर्तमान रूप में आया है।

वह प्राचीन गाथाओं के आधार पर रचित महाकाव्य होता है, जैसे

ग्रीक महाकवि होमर का 'इलियड' और आडेसी नामक युगल महाकाव्य इनका वर्तमान परिष्कृत रूप होमर की प्रतिभा का फल है परन्तु गाथाचक्रों के रूप में वे प्राचीन काल से बन्दीजनों के द्वारा गाये जाते थे।

कलापूर्ण महाकाव्य वह है जिसे एक ही कवि अपनी काव्यकला से गढ़कर तैयार करता है इसमें प्रथम श्रेणी के काव्यों के समग्र गुण विद्यमान रहते हैं, परन्तु यह रहता है कवि की प्रौढ़ प्रतिभा का परिणाम जैसे लैटिन भाषा में वर्जिल कवि द्वारा रचित 'इनीड' महाकाव्य वर्जिल ने अपने लिए होर को आदर्श माना और उन्हीं की काव्यकला का पूर्ण अनुसरण अपने महाकाव्य में किया। मिल्टन के पैरेडाइस लास्ट तथा पैरेडाइस रिगेण्ड होमर, वर्जिल तथा दाँते के महाकाव्यों के समान उत्कृष्ट मान्य कलापूर्ण महाकाव्य है। इस दृष्टि से यदि संस्कृत काव्यों का वर्गीकरण किया जाय तो वाल्मीकीय रामायण प्रथम श्रेणी में रखा जायगा तथा रघुवंश एवं शिशुपालबध आदि द्वितीय श्रेणी में।

महाकाव्य का विकास –

लौकिक संस्कृत में कविता लिखने का उदय वाल्मीकि से हुआ। रामायण हमारा आदिकाव्य है। वाल्मीकि हमारे आदिकवि हैं। कौंच बध की जो घटना साधारण दर्शकों के हृदय में थोड़ी सी सहानुभूति उत्पन्न करने में समर्थ होती वही वाल्मीकि के रससिक्त हृदय में शोक–तरंणी के प्रवाहित होने का कारण बनती है और रसावेश में महर्षि का श्लोक के रूप में परिणत हो जाता है। जिस अवसर पर 'मा निषाद प्रतिष्ठां ध्म' के रूप में वाल्मीकि की करुण रसाप्लुत बैखरी स्खलित हुई, उसी समय भारतीय काव्य की दिशा का परिचय संहृदयों को मिल गया। काव्यतरंणी रसकूल

का आश्रय लेकर ही प्रवाहित होती रहेगी, इसकी पर्याप्त सूचना उसी समय मिल गयी। वाल्मीकि का आदिकाव्य संस्कृत भारती का नितान्त अभिराम निकेतन है सरसता और स्वाभाविकता ही इसका सर्वस्व है।

पंचम अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय विवेचन, चरित्र-चित्रण, रस एवं ध्वनि, अलंकार, छन्द

हस्तलेख।

पंचम अध्याय

खण्ड (क)

रघुवीर चरितम् के पात्रों का चरित्र–चित्रण

रघुवीर चरितम् सत्रह सर्गो में रचित महाकाव्य है। इसमें मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के अलौकिक व्यक्तित्व की कीर्ति–गाथा सन्निहित है, इस कीर्ति–गाथा के गतिशील संवाहक अन्य सहयोगी, सहकर्मी तथा प्रेरणादायक पात्र भी हैं। साथ ही विघ्न बाधायुक्त प्रतिपक्ष भी है। इस तरह महाकाव्य में अनेक पात्रों का चरित्र परिलक्षित होता है। काव्य के आदि ओर अन्त तक प्रथम पक्ष के तीन चरित प्रधान रूप में अवस्थित है– राम, सीता और लक्ष्मण। षष्ठ सर्ग से रावण के चरित का सन्निवेश होता है। यहीं काव्य–जीवन को गति प्राप्त होती है। कीर्ति–गाथा के नायक राम तथा रावण ऐसे पात्र हैं जो कथा के प्रबल सूत्रधार हैं। अष्टम सर्ग में राम के अत्यनत सहयोगी वीर हनुमान के चरित्र का उदय होता है। हनुमान जैसे असंख्य कपियों के अर्धिराज सुग्रीव से श्रीराम का सम्पर्क हनुमान कराते हैं। हनुमान तथा सुग्रीव दोनों की कथा के अन्त तक उपस्थित हैं। काव्य–नायक रघुवीर राम हैं।

राम, सीता तथा लक्षमण तथा अन्य सहयोगियों के कार्य–व्यापार ने जिस जिस प्रसंग में कवि को प्रभावित किया उसी रूप में कवि–गिरा से शब्दायमान् हुआ। अतः पूर्ण काव्य में कवि–वाणी रघुवीर चरितानुगामिनी बनकर स्वयं में सफलीभूत है। इसी के अनुरूप रावण तथा उसके सहयोगी चरित्रों का उल्लेख भी है। चरित्र के अंकन में कृत्रिमता तथा अतिशयता की पृष्टिभूमि कहीं भी परिलक्षित नहीं है। कवि की भावना से पात्रों के चरित्र का

अंकन उनके मौलिक तथा वास्तविक परिवेश में उचित रूप से किया गया है। इसी स्थिति से पात्रों के चरित्र का विधिवत् वर्णन करना स्वाभाविक भी है।

काव्य की सर्जनशीलता तथा गतिशीलता में विभीषण का चरित्र भी चतुर्दश सर्ग में अविमुक्त होता है। कैकेयी, भरत, अंगद, जटायु, जामवन्त, नल, नील, अगस्त्य, मतंड., सुतीक्षण, शबरी तथा मारीच, कुम्भकर्ण, खरदूषण, शूपर्णखा, मेघनाद ओर अक्ष्य कुमार समय–समय पर दृष्टिगत होते हुए अपने कर्त्तव्य तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुये कथा को गतिमान करते हैं। सम्प्रर्ण काव्य दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं से युक्त हैं जिसके दो पक्ष हैं। एक पक्ष राम तथा उनके सहयोगियों का है जो लोकहित का पोषक है तथा दूसरा पक्ष दशानन तथा उसके सहयोगियों का है जो लोक मर्यादा का उल्लंघनकर्ता है।अतः विचार की सरिता के धारित ज्ञानभृत नीर के दोनों तटों का अवगाहन करना उचित है ताकि पात्रों का चरित्र–चित्रण प्रकृतिशः स्वाभाविक रूप से किया जा सके।

एतदर्थ काव्य के पात्रों का चरित्र–चरित्र दो पक्षों में किया जाना श्रेयष्कर होगा। प्रथम पक्ष में राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, भरत तथा सुग्रीव आदि एंव अन्य सहयोगीगण तथा द्वितीय पक्ष में रावण, कुम्भकर्ण, शूपर्णखा तथा मेघनाद आदि एंव सहयोगीगण। उभय पक्षों के चरित्राकंन में उसके वाह्य एंव आन्तरिक समग्र सर्वांगीण व्यक्तित्व का ध्यान रखना उचित होगा तथा कृतित्व एंव व्यक्तित्व को दृष्टिगत कर निष्पक्ष विवेचन करना मेरा प्रयास होगा।

महाकाव्य के नायक राम का चरित्र–चित्रण

सम्पूर्ण मानवीय गुणों की समग्रता

रघुवीर चरितम् महाकाव्य के नायक राम लोकोत्तर गुणों से परिपूर्ण सर्वांगींण व्यक्तित्व एवं अप्रतिम प्रतिभा के धनी हैं। सत्यपथी प्रथम पक्ष के पात्रों में राम का चरित्र लोक मंगल की भावना से ओत–प्रोत है। आलोच्य इस महाकाव्य के नायक राम का व्यक्तित्व अमल तथा निर्मल है जो पूर्वाग्रहों से अवमुक्त है तथा राम के चरित्र–विवेचन का आधार है। राम एक धीरोदात्त वीर नायक है जिनमें सम्पूर्ण मानवीय–गुणों की समग्रता समाहिता है। "राम क्षमाशील, स्थिर प्रकृतियुक्त निरभिमानी, विनम्रता की प्रतिमूर्ति, संकल्पधनी, दृढ़निश्चयी तथा आत्मप्रशंसा रहित प्रकृति से विभूषित है।"[1] श्रियः शिवं ध ाम" राम की आन्तरिक मनसा उदात्त है जो नवनीत के समान तरल तथा सुकोमल है जो सत्य का आत्मसाती है। इस प्रकार नायक राम सम्पूर्ण मानवीय गुणों से परिपूत होकर लोकहितकारी तथा मंगलकारी प्रवृत्ति के विशिष्ट प्रतीक हैं।

स्नेह एवं श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

राम अत्यन्त ही विनयशील तथा उदात्मना हैं। श्रद्धा और स्नेह उनका स्वाभाविक एंव जन्मजात अवलम्ब है। उनका क्षत्रिय रूप परित्राणाय साध ूनाम का है। सीता के साथ अनुज लक्ष्मण के साथ वनपथ में प्रवेश करते हैं। ऋषि समूह पुष्पम् फलं तोयं के साथ उनका स्वागत सत्कार करता है। निज धनुष् को शिथिल कर वे ऋषियों को प्रणाम करते हैं। राम अपने सहज तथा स्वाभाविक स्वभाव को स्नेहपूर्वक अभिव्यक्त करते हैं। आर्तनाद से महर्षिगण ऋषियों के मुण्ड, जटा तथा अस्थिपंजर को दिखाते हुए कहा कि –

'इमाम वेक्ष स्व तपोवस्थली तपस्विनां मुण्ड जटास्थिदु: स्थिताम्"।
काकुत्सथवंश्येत्वयि तादृशोदये सति प्रपन्नावयमीदृशी दशाम्।।
"काकुत्स्थवंश्येत्वयि तादृशोदये सति प्रपन्नावयमीदृशी दशाम्।।"[2]

इस उक्ति पर राम ने कुलरीति कर्तव्य एवं परम्परा का स्मरण किया। राम प्रत्येक आश्रम पर जाकर स्थिति का परिज्ञान करते हैं। राम सभी के

का स्नेह ओर श्रद्धा से श्रवण करते हैं। वे राजर्षियों के पक्ष के अनुगमन करने का निर्देश महर्षियों से प्राप्त करते हैं कि–

"रामः राजर्षिभिः पूर्वैसुण्णेन महता पथा।
सचरस्व यतस्तेम विचरणनवसीदति।"[1]

इस प्रकार वंश–गौरव, मर्यादा नीति तथा रक्षक आदि कर्त्तव्यों का स्मरण ऋषिगण राम को कराते हैं। इस प्रकार स्नेह तथा श्रद्धापूर्वक राम प्रकृतिशः चैतन्य हो पड़ते है।

त्यागी, धीर, गम्भीर तथा संकल्पशील

विपत्ति में न्याय और धर्मपक्ष पर आरूढ़ राम सत्यनिष्ठ, वीर, धीर, गम्भीर , दृढ़निश्वयी तथा शुद्ध चरित्र स्वभाव से परिपूरित है। माता कैकेयी के कुकृत्य से व्यथित भरत जब बन्धु–बान्धवों तथा परिजनों सहित राम को अयोध्या वापस ले जाने के लिए आते हैं तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उनका सुकोमल तथा विशाल हृदय लोकानुकम्पा से व्यथित हो गया, लेकिन राम ने धैर्य धारण किया। उन्होंने भरत को अपने धरण पादुका को प्रदान करते हुए अयोध्या लौट जाने का आदेश दिया। राम हर्ष–विषाद दोनों ही स्थितियों में धीर तथा गम्भीर रहते हैं। तथा संकल्पशील हैं। राजप्रासाद के ऐश्वर्य तथा सुख और आनन्द का उपभोग करने वोल राम सुकोमल सीता और अनुज लक्ष्मण सहित सब कुछ त्याग कर बीहड़ कण्टकपूर्ण वनपथ में विचरण कर रहे हैं, किन्तु राम अविचल हैं। लेशमात्र भी उन्हें विषाद–भाव आक्रान्त नहीं कर पाये, क्योंकि वे हर्ष–विषाद से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं हैं।

1. रघुवीरचरितम्, 1/54 तथा 58, 2/40.

स्वकुल की मर्यादा के रक्षक

राम जब वन–सम्पदा और समृद्धि का दर्शन करते हुए विचरण कर रहे थे, मुनि सुतीक्ष्ण उनके पूर्वजों का यशोगान करते हुए उनको अविचल प्रतिष्ठा का स्मरण दिला रहे थे–

"मुक्तमेतदिह यद् बवीषि मांड.स्त्य जत्यमिपृसृतां स्वयं वधूम्।
अप्यहं प्रथमसम्मृतंभिमां तत्कृते न परिहातुमुत्सहे।।
मत्सरेण उदधीमयुक्तता सर्वकर्मसु जनः सचेतनः।
कुण्ठतां सुखपथे वितन्वतीमाद्रियेत बहुदारतांकथम्।।"[1]

राम सहजतापूर्वक ऋषि सुतीक्ष्ण की वाणी का श्रवण कर रहे थे, परन्तु अपने कुल के यशोगान से वे अप्रभावित रहे। वे तो सागर की तरह आपूर्यमाणः अचल प्रतिष्ठा के स्वयं नियामक हैं। जैसे कि वायु के वेगातिवेग गति से पर्वत में कदापि प्रकम्पन नहीं होता। क्या मूसलाधार वर्षातिरेक के द्वारा समुद्र में उफान उठ सकता है? ऐसा कभी भी नहीं हो सकता तो राम भी इसी प्रकृति के हैं और वे स्वुल मर्यादा में स्थितप्रज्ञ हैं।

मनोनिग्रही शरणागत वत्सल तथा क्षमाशील

राम मनोनिग्रही हैं। शूपर्णखा के प्रणय निवेदन का उत्तर देते हुए राम ने उससे कहा कि तुम्हारे हेतु प्रथम परिणीता पत्नी का त्याग नहीं कर सकता। सुखपंथ को कुण्ठित करने के मत्सर–प्रेरित कौन होगा जो बहुपत्नीत्व अंगीकार करे। शूपर्णखा द्वारा अभिप्रेरित खरदूषण की विशाल सेना के समक्ष राम नतमस्तक नहीं हुए। रावण द्वारा प्रताड़ित विभीषण राम के शराणागत हुआ। विपक्षी पक्ष से उसके आगमन पर वानर समूह मयाक्रानत हो उठा किन्तु भगवान राम जो

1. रघुवीरचरितम्, 4/55–56

शरणागत वत्सल है विभीषण को अपने शरण में लेकर लंकापति के रूप मे उसे विभूषित किया। इसी क्रम में क्रोधित राम के समक्ष उपस्थित सागर की प्रार्थना पर उसे क्षमा कर दिया। यह राम की शरणागत–वत्सलता तथा क्षमाशीलता का परिचायक है।

आज्ञापालक पुत्र तथा स्वकुलधर्मपालक

राम श्रेष्ठजनों के प्रति विनयशील, सहृदय सेवक–जनों के प्रति स्नेही, सखा–धर्म पालक तथा क्षत्रिय धर्मधुरीण होने के कारण अन्याय के प्रतिरोध के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर रघुकुल–रीति पालक राम वनप्रान्त को प्रस्थान किये। कुल की मर्यादा की रक्षा हेतु भार्या सीता के हेतु मायामृग मारीच का वध किया। पिता के मित्र जटायु के क्षत–विक्षत घायल तन को देखकर वे अत्यन्त उद्वेलित हो उठे। वे सीता के अपहरणकर्ता रावण के विनाश का दृढ़ संकल्प लेते हैं, "मुझ राम की पत्नी का इस प्रकार माया से अपहरण करने वाला रावण यदि जीवित रह जाता है तो मेरे इस धनुष को धिक्कार है आदि।"

"दयितामपहृत्य मायया मम रामस्य तथाविधां तथा।
यदि जीवति रावणः वचचिद् धनुरेतत् त्रपयैव यन्नतम्।।
स्फुटिता निलनेमिसयप्तकं शखह्वयस्तमितेन्दुतारकम्।
श्रृणु मानद! मैथिलीकृते गमयाम्यम्बरमम्बरी षताम्।।"[1]

"राम स्वकुलधर्म, मर्यादा, पूर्वज प्रतिस्थापित यज्ञ–ध्वज कथमपि कलंकित न हो, एतदर्थ पग–पग पर सचेष्ठ प्रतीत होते हैं। उसके स्मरण से उनको उत्प्रेरणाभाष मिलता है। रावण ने पत्नी का अपहरण कर लिया, राम बन्दरों की सहायता से प्रतीक्षा करते रहें! ऐसे जनापवाद का पात्र बनना उचित नहीं है।"

---

1. रघुवीरचरितम्, 7/63–65

"हृतदारो दशास्येन सहायार्थी प्लवङ.मम्।
लिप्सुः प्रतीक्षते रामोमा मूदिति जन श्रुतिः।।"[1]

सफल सैन्य व्यूहक, संचालक तथा शौर्यशालीन वीर पुरूष

राम एक सशक्त सैन्य–व्यूहक, संचालक तथा पराक्रमी वीर पुरूष हैं। विपत्ति काल में भी आपूर्णमाणः सागर के समान अविचल है। जब कभी भी दर्पपूर्ण वैरी उनके समक्ष अपनी सारी शक्ति से संयुक्त उपस्थित हुए राम ने शरसंथान से उनके पैर पखेरू उड़ा दिया। "उनके शरसंथान का हस्तलाघव शत्रुदल में ऐसी विस्मयकारी स्थिति उत्पन्न कर देता है कि शत्रु किंर्त्तव्यविमुढ़ होकर पराजय का ही वरण करता दृष्टिगत होता है।"

रामानुमावेन निजे निर्गीर्णे सुरासुरध्वंसकृति प्रताये।
और्वाग्गिनिष्पीत जलस्य सिन्धौः कष्टादशा निर्विविशे खरेण।।
मतिभ्रमो ऽयं किमुकिन्नु माया स्वप्नागमोवा निहता नु शक्तिः।
स्वस्मिन महिम्न्य स्तमिते दुरन्तां चिन्तामिति ग्रस्तघृति प्रपेदे।।[2]

राम की ओजस्वी वाणी उनके आत्मबल की परिचायिका है।

"रणभूमि में वैरियों के लिए वे सदैव साक्षात् काल के समान है। राम, रावण द्वारा बीस भुजाओं से छोड़े गये सरजाल को हस्तलाघव से विर्दीर्ण कर देते हैं, जैसे– सूर्य किरण द्योततमावृत को प्रभासित कर देती है।"

बहुबाहुदशाननप्रयुक्ता शरवृष्टिः प्रमुणा भुजद्वयेन।
सशरासन सायकेन रूद्धापटिमाचेत् करणेषुनातिकांक्षा।।

---

1. रघुवीरचरितम्, 10/21

2. रघुवीरचरितम् 5/57–58

असृजत सतमः प्रकाशविद्यां विमुरस्त्रज्वलनं निशाचरेन्द्रः।
जलदैवतमीश्वरो रघूणामिति भूयानभवत् तयोर्विरोधः।।

कैलाशोद्धरणक्रीडादर्शित स्वभुजाबलः।
रावणः प्रगुणान् वाणान् मुमोच रघुनन्दने।।
रामः क्षिप्तानिषूंस्तेन द्विबाहुर्बहु बाहुना।
अर्धमार्गे चक तोंच्चैर्दर्शयन. हस्तालाधवम्।।1

पूर्णा मानवीय व्यक्तित्व

रघुवीरचरितम् में कवि ने राम के शिवरूप का स्मरण कर वन में निवास करेन वाले तपस्वियों के शब्दों में अभिव्यक्त किया है– "राम रूप का दर्शन कर महर्षिगण संतृप्त नहीं हो पा रहे हैं। वे सभी प्रत्येक क्षण उनके शिव धाम रूप का दर्शन के अभिलाषी है। समस्त वनस्थली लक्ष्मण सहित तुम्हारा शरण चाहती है। ऐसा कहकर अपने पूर्वपुण्यों का स्मरण करते हैं।"

"कृतं वचोमिर्बहुभिः श्रप्रदैर्धनुर्धनुर्धराणां वर भद्रमस्तु ते।
तवेक्षमाणा न वपुर्मनश्शिवं ब्रजन्ति पर्याप्तिमरण्यवासिनः।।
इयं द्विजातिप्रचुरा निशाचरैर्महद्रमिरारण्यक जातिरातुरा।
क्षषावली धर्महतेन वारिदं सलक्ष्मणं त्वां शरणं प्रतीच्छति।"2

"सीता का अपहरण हो जाने पर पत्नी–रक्षण दायित्व के निर्वाह में स्वयं को असमर्थ समझते हुए कातर हो उठते हैं।"

"स पिता सकलार्थतत्वविक्तव विक्रान्ति कृतेन्द्रसौहृदः।
उपदेशकृतौ च तौ तपः परिपक्वौ हि वसिष्ठकौशिको।।

---

1. रघुवीरचरितम्, 15/77–78 ; 16/54–54

2. रघुवीरचरितम् , 1/48/50

सुख दुःखविवृद्धिविप्लवाः सह देवेन भवन्ति देहिनाम्।

विमृशन्निति तत्वमात्मना न बुधस्तत्र विपद्यते क्वचित्।।"[1]

राम अपनी प्रकृति के प्रतिकूल कदापि आचरण नहीं करते। रावण का संहार करने के बाद उन्होंने सीता को, देवगण–समूह के समक्ष परीक्षण के पश्चात् ही स्वीकार किया। ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि किसी प्रकार जनपवाद सुनने को न मिले। इस प्रकार रघुवीरचरितम् में रघुवीर का चरित असाधारण व्यक्तित्व से परिपूत पूर्ण मानव का है। वे पूर्ण मानवीय प्रवृत्ति के द्योतक है।

नायिका सीता

प्रथमतः सीता के चरित्र–चित्रण को सामान्य नारी के रूप में प्रस्तुतीकरण करना उचित होगा तत्पश्चात् लोकोत्तर नारी के रूप में। चंचल, हठी, क्षणबुद्धि, शंकालू, आत्मपोषणी, ईषालु स्वाभाव से युक्त

सीता इस महाकाव्य की नायिका हैं। जिनके कारण राम–रावण युद्ध हुआ। वे एक सामान्य नारी के अवगुणों से भी युक्त हैं, लेकिन भारतीय मर्यादा के अनुरूप पतिव्रता नारी की साकार प्रतिमूर्ति हैं। वे त्रिया–हठ के वशीभूत होती है क्योंकि – "मायामृग का सौन्दर्य देखकर सीता ने बीहड़ वन में ऐसे मृग की सम्भावना, असम्भावना पर तनिक भी विचार किये बिना उसके चर्म की प्राप्त्याकांक्षा के वशीभूत हो गयी। तत्काल राम से उसका वध करके सुन्दर मृगछाल लाने का स्त्री–हठ उपस्थित कर दिया।"

"तं पर्णशालासविधे चरन्तं चरन्तमन्यग्रतया तृणाग्रम्।

कुतूहलावेगतरंगिताक्षी लीलार्धमादातुमियेष सीता।।

---

1. रघुवीरचरितम्, 7/72–74

इत्याह चेक्ष्वाकुकुलावतंसं रामं प्रभो। पपूय मृगं विचित्रम्।

क्रीडार्थमस्मैस्पृह्यलुशस्मि समानयैन सपदित्वचंवा।।"[1]

विवेकशून्या तथा शंकालु नारी–सुलभ स्वभाव को फिर सीता ने उपस्थित कर दिया जब राम उस मायामृग के पीछे दूर तक चले गये। "आहत होने पर अपने माया–स्वर में त्रायस्त 'हा ! लक्ष्मण माभिहेति' आर्त वाणी को जब मायामृग ने मुखर किया तो तत्काल मयातुर सीता ने लक्ष्मण से वहाँ पहुँच जाने का अनुरोध किया। लक्ष्मण ने माया कहकर उनको भय से विरत करने का जो प्रयास किया तो वह शंकालु हो उठी।"

"निशम्य तद्वाक्यमथ मायेति सौमित्रिभुवाच सीता।

नाहं वयस्यामिहिरव्यपाये दिनश्रियः पावकमाविशन्त्याः।।"[2]

त्रिया–हठ तथा शंका से ग्रस्त सीता के कारण लाचार होकर फिर लक्ष्मण को पर्णशाला छोड़कर प्रस्थान करना ही पड़ा। इस प्रकार सीता भी सामान्य नारी की तरह चंचल, हठी, शंकालु, कलुष हृदय तथा आत्मपोषी परिलक्षित होती हैं।

अधीरता क्षणिक–कातरता, विवेकहीनता तथा उचित–अनुचित ज्ञान का अभाव

यद्यपि की सीता का रूप एक आदर्श भारतीय नारी का द्योतक है फिर भी वे विभिन्न स्थलों तथा घटनाओं के प्रति विवेकहीनता तथा उचित–अनुचित परिज्ञान के अभाव का परिचय देती है।

एक सामान्य नारी की तरह सीता में धीरता के भाव का सर्वथा अभाव है। स्त्री सुलभ क्षणिक–कातरता उनके गौरव को, आच्छादित कर कलंकित कर देता है। जब उनके समक्ष राक्षसी माया से निर्मित राम का शीश प्रस्तुत किया

---

1. रघुवीरचरितम् 6/48–49

2. रघुवीरचरितम्, 6/56

जाता है, तो वे एकदम कातर होकर प्राणोत्सर्ग को उद्यत हो उठती है। उन्हें अपने वीर पतिदेव राम तथा देवर लक्ष्मण की सक्षमता ओर पूर्व में उपस्थित हनुमान के पराक्रमी पौरूष पर भी विश्वास नहीं रहा जिन्होंने अकेले ही एकमात्र होकर भी राक्षस–सेना का संहार किया तथा लंकापुरी को भस्म कर दिया। सहानुभूति प्रकट करने वाली किसी राक्षसी के समझाने–बुझाने पर वे शान्त हो पाती है। ऐसी स्थिति में सीता का कार्य–व्यापार एक सामान्य नारी के समान है। यदि सीता एक सहज नारी जैसा आचरण न करती तो पतिव्रता–तेज तथा सनाथ भारतीय नारी के लिए अनुकरणीय कैसे हो पाती? इस प्रकार सीता अधीरता, क्षणिक कातरता, विवेकहीनता तथा उचित–अनुचित परिज्ञान के अभावत्मक स्थिति की बोधक हैं।

लोकोत्तर, शीलगुण, सम्पन्न परम साध्वी

सीता लोकोत्तर दैवी, गुणों से परिपूत है। वह शील, गुण, सम्पन्न परम पवित्र नारी की प्रतिमूर्ति हैं। उनका अपने प्रतिदेव राम पर अगाध प्रेम तथा विश्वास है। वे अखण्ड पातिव्रत प्रभामण्डल से विभूषित है। रावण की लंका में अशोका वाटिका में अत्रास देने वाली अनेक राक्षसियों से अस्त्र–शस्त्र के साथ धिरी होने पर भी रावण जैसे पराक्रमी व्यक्तित्व को तृणवत समझती हैं, क्योंकि सीता लोकोत्तर हैं।

अक्षयशक्ति, सत्यनिष्ठ प्रकृति तथा अप्रतिम् साहस

सीता को सत्यनिष्ठा में पवित्र तथा परम आस्था थी। उनके तेजस्वी स्वरूप का प्रतिविम्ब अदृश्य रूप में प्रतिक्षण उनकी अपूर्व आस्था बनी रहती थी। हनुमान की पूँछ की आग की लपटों ने सम्पूर्ण लंकापुरी को भस्मीभूत कर दिया। हनुमान के लिए वह अग्नि चन्दन के समान शीतल रही। ऐसा सीता के पतिव्रता धर्म की साधना का सुन्दर प्रभाव था। वास्तव में सीता, राम

की अक्षय शक्ति हैं। वे राम–रूप भानु की दिव्य प्रभा हैं। चन्द्ररूप राम की वे चन्द्रिका हैं। राम ईश्वर रूप हैं तो सीता जी महाशक्तिस्वरूपा है। राम और सीता का वियोग असम्भव है क्योंकि वे उन्हें अपने अन्तः अन्तः स्थल में धारण करती हैं। रावण की लंका से जो एकाकी राम–वियुक्ता सीता का दर्शन होता है, वह तो मात्र मायारूप वाह्य वियोग है। शक्तिस्वरूपा सीता रामरूप ईश्वर से पृथक हो ही नहीं सकती।

हनुमान ने अशोक वाटिका में "विष–बल्लरियों द्वारा आवेष्ठित कल्पलता के सदृश एक स्त्री को देखा जो मात्र उत्तरीय धारण किये, धरणी पर बैठी, राहु द्वारा ग्रसित चन्द्रमा जैसे–मलिन कान्ति हो जाता है, तथैव विराग भावपन्न सी, धूम–सदृश कृष्ण तथा लम्बायमान अलकरात्रि वक्रता को प्राप्त हो चुकी है। विशुद्ध मुक्तमणि की कान्ति वोल अश्रुविन्दु स्तनों पर गिरते हुए स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। ऐसी रूपसी एक स्त्री अन्तर्मन से सन्तप्त चिन्तातुरा सी अवस्थित है।"[1]

निर्मल–रूप सम्पन्न, परम साध्वी तथा अपूर्व सौन्दर्य

लंकापुरी की अशोक वाटिका में सीता की निर्मल कान्ति को देखकर हनुमान निश्चयपूर्वक कहते हैं कि "यह अपूर्व सौन्दर्याभा त्रिलोक में दुर्लभ है। निश्चय ही त्रिलोक में स्वच्छन्द तथा निर्दन्द विचरण करने वाला अधर्मशील रावण ने सिकी की जयश्री को बन्दी बना रखा है।"

"निरर्गलं पर्याता जिलोकीमधर्मशीलेन दशाननेन।

उच्चैरपात्रपतिपत्तिशोच्या बन्दीकृता किंस्विदियं जयश्रीः।।"[2]

फिर हनुमान सोचते हैं कि विप्रयुक्त रूपवाली यह स्त्री जिस किसी के

1. रघुवीरचरितम् 12/43–47

2. रघुवीरचरितम् 12/52

लिए व्रत धारण किये हुए हैं, वह पुरूष कौन है? यह अज्ञात है। यही नहीं अनुमानतः कमलयोनि ब्रह्मा ने कदाचित् लोक में उस पुरूष की सृष्टि ही नहीं की है।

"पुमान् स को नाम न वेद्मिलोके स्रष्टा न तस्य ध्रवमब्जयोनिः।
इमाममवस्थां मदनोपसृष्टामेषा परं यस्यकृते विमर्ति।।"[1]

इस प्रकार की निर्मल रूप सम्पन्ना एंव साधु चरित्रा सीता के पास पहुँचकर पवनसुत में "यातुधान कुलका ननानलः सानुजो जयति पतिः"[2] कहकर अपना परिचय देते हुए राम का सन्देश सुनाया। "सानुजो जयति जानकी पतिः" कर्णप्रिय मधुर वाणी का श्रवण करते ही सीता का अन्तः स्थल आनन्द विभोर हो उठा। सम्पूर्ण वृतान्त श्रवण करने के पश्चात् सीता ने पूर्ण विश्वास के साथ कहा, "रावण सहबल निहत्य मां स्वां पुरीं नयतु कोशलेश्वरः।"[3]

राम पर सीता का अगाध तथा अटूट विश्वास है। इस विश्वास की पुष्टि हेतु उन्होंने बताया कि– जब इन्द्रपुत्र ने वायस का रूप धारण कर मेरे उरोजस्थल पर प्रहार किया था, उस समय मेरे पति ने उसके ऊपर ब्रह्मस्त्र का प्रयोग किया था।

"एकदा विपिनगोचरां पुरा मामुरोजमुवि वासदात्मजः।
वायसः परितुतोद तत्कृते ब्राह्ममस्त्रम सृजत पतिर्मम।।
तं कृपालुरतिदु र्विनीतमप्येक नेत्रविकलं व्यधात् तदा।
प्रेम्णि जाग्रत तडिल्लताचलं तन्नृणां खलु वधूजनं प्रति।।"[4]

---

1. रघुवीरचरितम् 12/54
2. रघुवीरचरितम्, 13/4 .
3. रघुवीरचरितम् 13/52
4. रघुवीरचरितम्, 13/54–56

इस प्रकार सीता साधु चरित्रा, पतिव्रत धर्म परायण, अप्रतिम साहस युक्त प्रखर तेजस्विनी, धीर, गम्भीर तथा कुलशील मर्यादा से विभूषित आदर्श नारी है।

लक्ष्मण

अनुज लक्ष्मण राम के अनुगामी

सर्वप्रथम राम के अनुज लक्ष्मण की उपस्थिति महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में होती है। "इतः पर स्तादपनी तराङ्गसप्रचारमुःच्छन्न मयं तपोवनं। करिष्यते सावरजोव दाभिवः स्थितः पुरस्ता प्रगृहीत कार्मुकः।"[1] लक्ष्मण के चरित्र का समवाय राम से समायोजित होकर पूर्णता का निर्माण करता है। राम संकल्प हैं तो लक्ष्मण उसके क्रियान्वयक। लक्ष्मण राम की आकांक्षा , संयम, संकल्प तथा घृति के साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। तपोवन में ऋषियों ने राक्षसों द्वारा बध किये गये महार्षियों का अस्थि–समूह दिखाया। इससे लक्ष्मण उतने ही द्रवित हुए जितने राम। राक्षण कुल के विनाश का आमन्त्रण देने वाली रावण की बहन शूपर्णखा माया रूप धारण कर जब राम को सम्मोहित करने के ध्येय से उनके समक्ष अपने को स्त्री–हाव भाव का प्रदर्शन करते हुए प्रस्तुत करती है तो विवेकवान राम ने उसे निरूत्साहित कर दिया तथा लक्ष्मण के पास भेज दिया। वह लक्ष्मण को अपने विशाल बाहुओं मे समेट कर गगनचारिणी बनी। उस समय रघुवीर के संकल्प को प्रथमतः लक्ष्मण ने उसे कर्ण तथा नासिकाविहीन कर दिया।

"खरदूषण सैन्य को देख रघुवीर द्वारा उसके विनाशार्थ उपक्रम करते समय रघकुल कीर्ति–मर्यादा स्वरूपिणी सीता–संरक्षण का दायित्त्व लक्ष्मण के ऊपर पड़ा।"

"सीतां निधायावरजेऽसहिष्णुः स्वान्ते स सन्धाभिव सत्यसन्धः।
नमश्वरानानन चन्द्रकान्त्या प्रत्यायय (तान्) प्रत्युदियाय सैन्यम्।"[2]

1. रघुवीरचरितम् 1/59
2. रघुवीरचरितम्, 5/22

यह राम के संकल्प निर्वहन का क्रियान्वयन ही है।

प्रत्येक विपरीत स्थिति के सचेतक तथा आगाहकर्त्ता

लक्ष्मण, राम को प्रत्येक विपरीत स्थिति से सचेत तथा आगाह करते हैं। संकल्प की पूर्णताहेतु यह एक आवश्यक तत्त्व है। अपेन परिवेश का आकलन तथा अलामकर, विध्नकारी स्थिति से बचना। लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष से विरत होना भी अनिवार्य है। इसलिए कि संकल्प पूर्णता को प्राप्त करे। मायामृग मारीच पर्णशाला के समीप अपने मायावी चित्र–विचित्र अंगो का प्रदर्शन सीता को आकर्षित करने हेतु करने लगा। सीता उस पर मोहित हो उठीं। राम ने उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए दौड़कर उसके बध करने का निश्चय किया। "लक्ष्मण ने जाना पहिचाना, उस मृगरूप का सूक्ष्मतः निरीक्षण किया, उनका मन आश्वस्त न हो पा रहा था। इसलिए लक्ष्मण ने राम को सतर्क किया, मुझे यह माया प्रतीत हो रही है। अतः इसका मोह त्याग दें।"

"निषिध्यमानोऽपि स लक्ष्मणेन मायेयमित्यव्यथितेन्द्रियेण।
विश्वस्य योषिद्वचनं मनस्वीतमन्वगात् प्रेरितथीर्नियत्या।।"[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'राम की सफलता का श्रेय लक्ष्मण को ही है। राम उनके अग्रज हैं तथा रघुकुल रीति ओर मर्यादा के कारण वे उनके अनुगामी हैं। लक्ष्मण ने केवल आगाह किया लेकिन वे राम को आदेश कदापि नहीं दे सकते। परिणाम स्वरूप चेतावनी के होते हुए राम ने उस मायामृग का पीछा किया, लेकिन लक्ष्मण पर्णशाला के समक्ष सीता–रक्षण में तल्लीन रहे, लेकिन बध किये जाने के पश्चात् उस मायामृग ने राम की ही वाणी में आर्तनाद किया। 'त्रायस्व हा लक्ष्मण! भाभि हेति।" व्याकुल सीता ने लक्ष्मण को राम की रक्षा के लए अन्ततः भेज ही

---

1. रघुवीरचरितम् 6/50

दिया। जानते हुए कि यह मायावी आवाज है लक्ष्मण सीता का प्रतिकार न कर तत्काल पर्णकुटी से प्रस्थान कर गये। इस प्रकार लक्ष्मण मर्यादा अवगुंठित होकर राम को यथोचित सावधानी बरतने का विचार देते रहते हैं।

राम के पूरक तथा चारित्रिक सहायक

कतिपय घटनाओं, स्थितियों तथा परिवेश को ध्यान मे रक्खा जाय तो ऐसा अनुभव होता है कि यदि लक्ष्मण राम के साथ वन न आये होते तो कदाचित् उनका चरित्र इतना–इतना लोक मनभावक न बन पाता। मायामृग का वध कर राम पर्णशाला पधारते हैं तो सीता को अनुपस्थित पाते हैं। वे हतप्रभ होकर विलाप करने लगते हैं। उस समय लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना देते हैं। वे राम से कहते है। कि आप जैसा विवेकवान पुरूष संकट काल में असंयमित नहीं होते। वन, पर्वत, गिरि, गहर, सर–सरिता के तट पर सीता की खोज आवश्यक है। हो सकता है कि पर्णशाला से निकल कर वे इन स्थानों पर हों। सीता के वियोग में जब राम विचलित होते हैं, उस समय लक्ष्मण पुनः राम को प्रकृतस्थ करने का प्रयास करते हैं। वे राम के शौर्य और तेज को जागृत करने का प्रयास करते हैं। वनवास में अनेक प्रकार के क्लेशों का स्मरण दिलाकर, निशिचरों से शत्रुता के प्रति उन्हें सोचने की प्रेरणा देते हैं।

अतिशय , उत्साही , निर्भय तथा दूरदर्शी व्यक्तित्व

सुग्रीव और राम के मैत्री के समय एक–दूसरे की सहायता का निश्चय हुआ। सुग्रीव ने सीता की खोज का वचन दिया। राम ने सुग्रीव के राज्य को बालि का वध कर हस्तगत भी करा दिया। वर्षाकाल के पश्चात्

शरद ऋतु के आगमन पर भी सुग्रीव द्वारा सीता के खोज की कोई भी चेष्टा न की गयी। राम ने लक्ष्मण को किषकिन्धा जाकर सुग्रीव से मिलने का आदेश दिया। राम के निर्देश पर लक्ष्मण , सुग्रीव से सम्पर्क करते हैं तथा समस्त वृतान्त को मधुर तथा संयमित वाणी से सुग्रीव से निवेदन करते हैं। इस प्रकार रघुवीरचरितम् के लक्ष्मण अत्यन्त सौम्य प्रकृति, संयत वक्ता मर्यादापूर्ण, नीति–रीति से पूर्ण निष्णात तथा एक दक्ष संदेश वाहन हैं। वे अतिशय उत्साही, निर्भय, निर्मल हृदय तथा दूरदर्शी व्यक्ति हैं।

राम के प्रति अगाध आस्था तथा अनन्य भाव–पोषित

लक्ष्मण, राम के प्रति अनुरक्त अगाध आस्था तथा भाव के पोषक हैं। उन्होंने राम की भावना का प्रकटीकरा हनुमान से करते हुए कहा कि "हे कपीश्वर! मै। उनका भ्रात लक्ष्मण हूँ। मैं उनका अनुगामी होकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हूँ। गुरूजनों की वृत्ति और उनके धर्म का अनुसरण दोनों ही लोकों में लाभ प्रदान करने वाला होता है।"

"तस्य भ्रातास्भि नाभ्यनाहं लक्ष्मणस्तत्प्रियंकरः।
प्रसादभांजनं चास्मि परमारम्य जन्मनः।।
अद्य युद्धाय सन्नद्धं तमन्वग् यामि सायुधः।
अनुवृर्त्तिर्गुरूणांहि लौकद्वयफलप्रदा।।[1]

श्रेष्ठजनों के प्रति आस्थावान हृदय ही इतनी ओजस्वितापूर्ण, निर्भय वाणी का प्रयोग कर सकता है। घृति, बल और तेज से प्रस्फुटित लक्ष्मण का अजेय अस्त्र है। उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए निवेदन किया कि "उस रघुवीर के चरण कमलों की रज धारण करने वाले, इन हाथों में यह धनुष रहते हुए मेरे लिए, कहीं भी तथा कुछ भी दुष्कर नहीं है।"

---

1. रघुवीरचरितम् 10/37–39

"शिरसा वह तस्तस्य पदपद्यरजः कणान्।

करेण चेदम् कोदण्डं दुष्करं में न किन्चन।।"[1]

यह है लक्ष्मण का क्षत्रिय–तेज। तत्क्षण सुग्रीव उनके चरणों में नतमस्तक हो गये।

राम के अन्तस्थ भावों का रूपायन तथा एक अद्वितीय सखा

"सागर तट पर जब सिन्धु ने कोई युक्ति न सुझाई, तो रघुवीर के मनस्थ भावों का लक्ष्मण को आभास हुआ। तत्काल उन्होंने तट पर उनके लिए कुशासन निर्मित कर दिया।"

"लक्ष्मणेनोपतीनेषु दर्भेषु वांगमुखेपु सः।

कालरूद्र प्रतीकाशो विशश्राम विशांपतिः।।"[2]

अन्त में भयातुर समुद्र ने व्यवस्था दिया। सेतु निर्मित हुआ। सेना ने लंकापुरी प्रस्थान किया। "विश्वस्त सखा रूप लक्ष्मण प्रत्येक क्षण राम को छाया के सदृश अनुगमन करते हुए परिलक्षित होते हैं।"

पृतनां व्यूह्य, निविऽम् क्षणादुल्लंघ्योच्चैरनितरसुलंघं जलनिधि सुवेलस्थस्तस्मिन् ल्लवगमी सपौलस्त्यं कृत्वा कपिकुल पसिं प्राक्पदगतं ससौभिजिस्तस्थौ विमुरनु पमारम्भ निरतः।।[3]

इस प्रकार लक्ष्मण राम के अन्तस्थ भावों को रूप देने वाले एक सुन्दर सखा की भाँति हैं।

---

1. रघुवीरचरितम् 10/42
2. रघुवीरचरितम्, 14/73 ; 14/139
3. रघुवीरचरितम् 11/28–29

अद्वितीय शौर्य तथा पराक्रम

कुम्भकर्ण के वध के पश्चात् मेघनाद के युद्धभूमि में पदापर्ण करते ही समस्त वानरी सेना चित्कार करती हुयी पलायित होने लगी, लेकिन अन्ततः लक्ष्मण ने घमासान युद्ध कर मेघनाद को पराजित हीं नहीं अपितु वध कर डाला। जिससे रावण का दर्प चूर–चूर हो गया। इस प्रकार लक्ष्मण अतुल पराक्रम तथा शौर्य के सुन्दर समन्वय हैं। लक्ष्मण का चरित्र राम के लिए अतयन्त प्रेरणादायक है।

भरत

रघुवीरचरितम् के भरत प्राण स्वरूप है। यद्यपि कि इस काव्य में उनका वर्णन बहुत ही कम है। भरत मातृभाव के परिपोषक हैं तथा राम के प्रति अत्यन्त ही अनुरक्त हैं। क्ष्वाकुवंशीय भरत स्वकुल की मार्यादा के अनुरूप आचरा करते है। मां कैकेयी के कुकृत्य का उत्तरदायित्व अपने मस्तक पर धारण कर रघुवीर से वनमार्ग से अयोध्या लौटने का आग्रह किया। असफल होने पर राम के आदेश से उनकी चरणपादुका को शिरोधार्य कर अयोध्या लौटने के लिए विवश होना पड़ा। वे राम के गौरव की रक्षा करते हुए स्वर्गवासी पिता दशरथ की राज्य–व्यवस्था को अविछिन्न रूप से राम के वन से वापस लौटने तक पूरे मनोयोग से नियमन तथा संचालन किया। सर्वस्वत्यागी भरत को एतदर्थ आमात्य परिजन तथा सैनिकों का उपयोग करना पड़ा जिसे उन्होंने रघुवीर तथा कुल की मर्यादा के लिए स्वीकार किया। स्वयं राम ने सीता को सम्बोधित करते हुए कहा कि "भक्तिभाव से पूर्ण निर्मल –मन, अंग–प्रत्यंग में शिष्टता, सौजन्यता के भाव प्रस्फुटित हो रहे हें। बल्कल धारण किये हुए, कृशशरीर अपनी जटाओं में मेरे चरणों की पादुका सँजोये, मुनिजनों को भी अपने स्वरूप से प्रभावित कर देने वाले यह भरत हैं।"

अन्तिम सर्ग में जब सीता सहित लक्ष्मण के साथ तथा समस्त कपिदल समाज से संसुक्त राम पुष्पक विमान से अयोध्यापुरी लौटते हैं तब स्वजनों, परिजनों तथा आमात्यें सहित भरत गदगद हृदय से राम तथा सीता का भूरि–भूरि स्वागत करते हैं। उस समय भरत का स्वरूप एक तपोनिष्ठ लोकधर्म व्रती का था। जो प्रत्येक के लिए प्रभावक तथा आदर्शयुक्त था। भरत राजमोह से निर्लिप्त थे। अतः इस प्रकार महाकाव्य में भरत का चरित्र–चित्रण स्वल्प ही है।

वीर हनुमान

हनुमान महाकाव्य के अष्टम् सर्ग में उपस्थित होते हैं तथा अन्त तक अपने विशिष्ट क्रिया–कलापों से काव्य में महत्वपूर्ण चरित्र हैं। काव्य में उपस्थित होते ही अपने स्वामी सुग्रीव के विश्वस्त दूत के रूप में वनमार्ग में सानुज राम से साक्षात्कार करते हैं। इसके बाद काव्य–कथा कीसमग्र गतिशीलता का श्रेय हनुमान को ही है। पवन सुत का व्यक्तित्व सर्वांगींण समायोजित है। हनुमान समग्र वानरों के प्राणक हैं। उनके अदंम्य उत्साह, स्फूर्ति तथा स्वामी–निष्ठा तथा राम–भक्ति ने सीता अन्वेषण में उनको अग्रगणी बनाया। उनकी साहस, शौर्य तथा अदम्य संकल्प का अभिप्रेरण रामदल तथा रावण दल दोनों में अतुलनीय तथा अद्वितीय था। सागर पर जाने का प्रथम दायित्व हनुमान पर पड़ा जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

पिता के वायुवेग का आशीर्वाद ग्रहण कर वे लंकापुरी को अकेले ही समुद्र पार कर प्रस्थान करते हैं। "जलविधितरा का कार्य समस्त व्यवधानों से रहित हो, किंचिदवि अशुभ न हो, तुम्हारे प्रयास से रजनीचर रावण की यह पताका खण्डशः होकर चिथड़ा हो जाय। अपनी गति लंका में प्रवेश कर विवेकधीर तुम सर्वत्र अन्वेषण कर रामपत्नी सीता का शुभ ज्ञात करो।"

भवतु शिवमपांनिधिं तितोर्षोर्विषमफलान्युशुभानिमा स्म भूवन्।

रजनिचरपतेयशः पताका व्रजतु पटच्चरतां तवेहिते न।।
जवजिजनकः प्रविश्य लंकामधरितदेवपुरी विभूतिमूम्ना।
अवहिमति सर्वतो विचित्य क्लभविधुरामथिगच्द रामपत्नीम्।।[1]

दुर्गम तथा अमेध लंकापुरी में हनुमान ने संकल्प तथा दृढ़ता से प्रवेश किया जो सुग्रीव के प्रति निष्ठा ओर राम के प्रति समर्पण का प्रतिफल था। विशालकाय दुर्दान्त राक्षसों के रक्षक होते हुए भी वे निर्भय दशानन के समक्ष प्रस्तुत हो गये। उसके वीरों के शयन कक्ष तथा सारे अन्तःपुरों का निरीक्षण त्वरित गति से कर डाला। सरित–तट, उपवन, राजपथ तथा हाटो तक सावधानी से सीता का खोज किया किन्तु असफल रहें। हनुमान सोचते हैं, "यदि मैं राम को, स्वामी सुग्रीव तथा पिता समान जामवन्त को यह सूचना दूँगा कि सर्वत्र खोजने के उपरान्त सीता का दर्शन न कर सका तो उन सबको कितनी निराशा होगी। मुझ पर से उनका सदा के लिए विश्वास समाप्त हो जायेगा ओर मैं उनके समक्ष कौन सा मुँह लेकर जाऊँगा।"

हनुमान दायित्व–निर्वाह के महत्व को समझते थे। प्रथम प्रयास में सीता को न खोज पाने पर वे निराश नहीं हुए। बल्कि उनका शौर्य और भी द्विगगित हो उठा। वे अपने कर्तव्य के निर्वाह के लिए परिकर बद्ध है ताकि कपि समूह तथा रघुवीर के वे विश्वास पात्र बन सकें। हनुमान ने सोचा कि रावण द्वारा संरक्षित समस्त लंकापुरी को विनष्ट कर दूँ, परन्तु दूत की मर्यादा कलंकित होगी।

"हनुमान राजनीति तथा राज–मर्यादा तथा एक राजा और दूसरे राजा के पारस्परिक नीति–संरक्षण की गम्भीरता को भलि–भाँति जानते थे।"

तक्ष्याम्यसूंश्वेदयशः पदं तद् ध्रुव तदन्ये कपयोऽपि कुर्युः।
धक्ष्यामि पौलस्त्यमुजानिगुप्तांलंकामिमां चेन्न सदूतंधर्मः।।[2]

---

1. रघुवीरचरितम् 12/34
2. रघुवीरचरितम्, 1/29

इस प्रकार हनुमान राजनीति के पण्डित थे।इसी कारण से सुग्रीव ने उन्हें अपना सचिव नियुक्त किया था। वे अपनी कर्तव्य निष्ठा के साथ–साथ राम की मर्यादा के भी पोषक थे। हनुमान श्रेष्ठजनों तथा देवताओं के प्रति श्रद्धावान हैं। सीता की खोज में चिन्ताकुल वे देवगणों की वन्दना करते हैं।

अन्ततः हनुमान अपने अथक प्रयास में सफलीभूत हुए। उनको लंकापुरी की अशोक वाटिका में सीता का दिव्य दर्शन हुआ। सीता के समक्ष प्रस्तुत होकर उन्होंने सारे वृतान्त को सुनाया। फिर दशानन की रमणीय वाटिका को उजाड़ना प्रारम्भ कर दिया। भयाकान्त रक्षकगण मागने लगे। विषम परिस्थितिवश मेघनाद तथा हनुमान के बीच घमासान युद्ध हुआ। निराश मेघनाद ने हनुमान पर ब्रह्मस्त्र चलाया, लेकिन उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होंने अपने को आबद्ध होने दिया। वे रावण के सामने प्रस्तुत किये गये जिसने उनकी विशाल पूँछ में आग लगवा दी । हनुमान ने लंकापुरी को अपने पूँछ की आग की लपटों से भस्म कर दिया। वापस लौटते समय वे संदेष–प्राप्ति के निमित्त फिर सीता के समक्ष उपस्थित हुए। सीता ने उन्हें अपनी चूड़मणि को प्रदत्त किया। इस प्रकार फिर समुद्र लाँघकर अपनी कपि सेना में उपस्थित हो गये।

हनुमान सीता द्वारा प्रदत्त्त चूड़ामणि समर्पित कर राम की चरणों में विनयावत हुए। उनके साथ जामवन्त तथा सुग्रीव भी थे। चतुर्दिक आनन्द की वर्षा होने लगी। इसके बाद वानरी–सेना का प्रस्थान लंकापुरी को हुआ। इस प्रकार हनुमान राम के परम सहायक हैं। हनुमान लंका–विजय के अद्वितीय पात्र हैं।

सुग्रीव

अपने भ्राता बालि द्वारा प्रताड़ित सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे कपिपति है। संयोगवश वनपथ में सीता के

वियोग में सन्तप्त तथा उनकी खोज की प्रक्रिया में राम और सुग्रीव का साक्षात्कार हुआ और दोनों में प्रगाढ़ मैत्री इस शर्त पर हुई कि वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। सुग्रीव की सहायता के लिए राम ने सुग्रीव के भ्राता बलि का वध किया। पुनः सुग्रीव अपने राज्याधिकार से प्रतिष्ठित हुआ। सुग्रीव ने राम को वचन दिया कि तत्परता से वह सीता का अन्वेषण करेगा। इस दायित्व का निर्वाह भी उसने किया। सुग्रीव स्वाभिमानी, बली , नीतिपट तथा महत्वाकांक्षी प्रकृति का है। ऋष्यमूक पव्रत की ओर ज्ञानुज राम को आते देख प्रथमतः तो वह मयातुर हो उठा, लकिन दूत हनुमान के उपक्रम से वह शाान्त हुआ।

राम की मैत्री का लाभ पाकर वह राज्याधिकारी तो बना, लेकिन वैभव विपासु सुग्रीव राम–काज को विस्मृत कर गया।

लेकिन राम ने लक्ष्मण को उसके पास स्मरण के लिए भेजा। इस पर सुग्रीव को पश्चाताप हुआ और उसने वानरी सेना को आदेश दिया कि एक माह के भीतर सीता का पता लगायें। निर्देश के साथ उसने अपनी सेना को चारों दिशाओं में भेजा। इस प्रकार सुग्रीव एक सफल राम का मित्र है जिसने लंकायुद्ध के अनन्तर राम का प्रतिक्षण सक्रिय सहयोग किया।

अपूर्व साहसी तथा निडर सुग्रीव रावण जैसे महाबलशाली को पकड़कर राम के समक्ष उपस्थित कर दिया। सुग्रीव राम का अत्यन्त विश्वसनीय सखा है। अयोध्या पहुँचने पर राम उसी का अवम्बन ग्रहण कर विमान से उतरते हैं।

राम पक्षीय चरित्रों मे कतिपय अन्य लोगों का भी चरित्र है जिनके नाम प्रसंग के अनुसार रघुवीर चरितम् में घटनाक्रम में उल्लिखित हैं। सुमन्त्र, गुरू वशिष्ठ , शस्त्र गुरू विश्वामित्र, अंगद, नल, नील, जामवन्त , जटायु, तीनों मातायें काव्य में नाममात्र के प्रयुक्त हैं। दासी मन्थरा का नाम

अप्रत्यक्ष रूप से आता है जब वन राम से ऋषियों ने कहा "यदि मन्थरा का कर्म विधान न हुआ होता तो हे रघुवीर ! हम वनवासियों के लिए आप दृष्टिगत कैसे हो पाते।"

न मन्युरस्मासु करोतु विभ्रमं महेन्द्रहेतिर्गिरिस चयेष्विव।
न मन्थरा कर्मसमोविधिर्यतो वनौक सामक्षिपथं गतोशसिन नः।।1

रावणपक्षीय चरित्र–चित्रण

रावण

रघुवीरचरितम् मे रावण प्रमुख विपक्षी नायक है। ज्ञान–विज्ञान का अगाध पण्डित, पराक्रमी, ओजस्वी , तेजस्वी, अस्त्र–शस्त्र में प्रवीण, सिन्धुवत गम्भीर रावण आसुरी दुर्भावना का प्रतीक भी है। काव्य में दशानन की षष्ठ सर्ग में प्रथमतः प्रस्तुत होता है। इसके उपरान्त त्रयोदश सर्ग से षोडश सर्ग तक के घटनाक्रमों का वह केन्द्र–बिन्दु है।

षष्ठ सर्ग में उपस्थित रावण, एक दूराचारी, लम्पट, ढोगीं , विकृत मानसिकतायुक्त, कलुषित, अभिमानी, चोरवृत्तितक तथा दुराग्रही हे। सीता हरण के दृष्टिकोण से वह अपने मायावी मामा मारिच से सम्पर्क करता है। सुबाहु तथा खरदूषण आदि विनाश का वृतान्त प्रस्तुत करता है। महर्षि समूह राम तथा लक्ष्मण के लिए स्वतिवचन कर रहा है। मैं अशान्त हो गया हूँ। अशान्ति की अवस्था में इस समय आपहीं मेरे सहायक हो सकते हैं। तुम्हारी माया एक निधि मेरे हेतु है। इस पर मारीच ने कहा– "क्या आपके इस दुराचरण से निशिचर कुल का कल्याण सम्भव है? हे! जगत भर को आतंकित करने वाले, सोचो, सीता क्या तुम्हारे अन्त के लिए ही जनम ग्रहण नहीं की हे? राजन्! आप जैसों केलिए इस प्रकार की कुपथगामिनी बुद्धिशोभन नहीं है, मन में उत्पन्न परस्त्री तृष्णा को शान्त करें।"

1. रघुवीरचरितम् 6/28–36

प्रसीद राजन्! पनदारतृष्णामयाकुरूष्वाशयतः प्ररूढाम्।
भवादृशामुत्पथगा मतिश्वेत् कथं नुवर्तेत जनो नियम्यः।।[1]

कामाशक्त, दुराग्रहणपूर्ण रावण अत्यन्त क्रोधित हो गया तथा रोषपूर्ण शब्दों में कहा– "तुम्हारे हृदय में यदि जीवनेच्छा का लेश भी हो, तो मेरा प्रिय पूर्ण करो।"

अपि प्रभो! दुश्वरितैस्तवैभिः स्यात्स्वस्ति किं सर्वनिशाचरेभ्यः।
अपि त्वदन्ताय जगत्प्रमाथिन्। सीता न किं यज्ञभुवः प्ररूढा।।
इत्युक्तवन्तं पुरूषादमुन्वैर्भूयोऽपि रक्षोधिपतिर्वभाषे।
जिजीविषा चेतसिते यदि स्यात प्रियं ममाधातुमिहार्हसीतिः।।[2]

राम मायामृग की पीछा किये। मारीच वध के बाद राम के माभावी आर्तनाद को सुनकर व्याकुल सीता के आदेश से राम की सहायता हेतु लक्ष्मण भीचल दिये। अवसर का लाभ उठाकर सीता को अकेली पाकर साधु रूप में पर्णकुटी के समीप पहुँचा। चोर रावण अपने सत्य रूप में सीता को देख प्रकट हो जाता है। राम की अनुपस्थिति में सीता का अपहरण कर रथ में बैठकर उनक`साथ आकाश मार्ग में चल दिया।

रावण काव्य के घटनाक्रमों में हित–अनहित धर्म, अधर्म, करणीय अकरणीय आदि से विवेकशून्य हो चुका है। वह मिध्यादर्प की प्रतिमूर्ति ही है। कुल – धर्म से विहीन तथा मर्यादाविहीन है। उसके दर्प को बल प्रदान करने वाली वाणी ही उसे भाती है।

---

1. रघुवीरचरितम् 6/37
2. रघुवीरचरितम् 15/12–13

समस्त राक्षसकुल के हित को ध्यान में रखकर विभीषण ने उसे समझाने–बुझाने का प्रयास किया। उसने रावण से कहा कि वानरी–सेना से युक्त राम को कोई सामान्य मनुष्य समझने का भूल न करें, वे राक्षस–समूह को विनष्ट करने हेतु धरती पर परमदेवता के रूप में अवतरित हुए हैं। अतः उन्हें आप सीता को सौंप दे। विभीषण का कथन उसे कटु, अहितकर तथा उपहासास्पद प्रतीत हुआ, और क्रोध में वह विभीषण को कृपाण उठाकर प्रताड़ित करने लगा।

रावण आत्मपोषी है तथा सम्पूर्ण विश्व के राक्षस–समाज का अधिपति है। वह दर्प तथा मोह–मत्सर के महासागर में आकण्ठ डूब कर केवलमात्र राक्षस समूह की मंगलकामना मे रत रहता है। वह आत्मबलि तथा दृढ़ निश्चयी था तथा अपनी महात्वांकांक्षा को सद्यः पूर्ण करने का अभिलाषी था। वह परिणाम की अनुकूलता – प्रतिकूलता पर विचार नहीं करता था।

रघुवीरचरितम में रावण का चरित्र अति उपेक्षात्मक है क्योंकि – सम्पूर्ण सत्रह सर्गो में केवल चार सर्गो में उसके क्रिया–कलाप का यथा समय विवेचन किया गया है जो कि सम्पूर्ण मानवता तथा देव–दनुजों का एकांगी रूप है। उसका कहीं भी सर्वांगींण हितकर रूप प्राप्त नहीं होता।

दशानन अहंकार क़ी प्रतिमूर्ति है। जब राम की वानरी–सेना समुद्र लांघकर लंकापुरी को घेर लेती है। वानरों के स्वभावजन्य संस्कार से सारे लंकावासी त्रस्त हो उठे। चर ने समस्त वृतान्त रावण के समक्ष प्रस्तुत किया कि "पुलस्त्य की पुण्य धरती रघुकुल तिलक रघुवीर के प्रताप से यज्ञानुष्ठान स्थल बन रही है। तुम्हारा कहाँ है चन्द्रहास! उसका शौर्य निवारित क्यो नहीं करते?" चर की यह वाणी रावण को व्यंगवाण जैसी प्रतीत हुयी। तत्काल रावण उत्तेजित हो उठा। क्रोधाभिभूत उसका सम्पूर्ण शरीर रक्तवर्ण हो गया और राम के कपि समूह को तृण के समान अनुमान, अपने सेनानायकों को

उनसे युद्ध करने के लिए अदिष्ठ कर दिया।"

रघुकुलतिलकप्रतापवह्नौ महति जुह्येति विधिः पलाश जातम्।
विरमतु तव वीर! चन्द्रहासः प्रभवति किं नु पुलस्त्यपुण्यभूमा।।
इति चिरगदितं निशम्य कोपाद् भृशमुपरक्त तनुः स्वयूथनाथान।
त्रिभुवन विजयर्प्रगमवीर्यान् रजनिचराधिपतिर्न्य युक्तं योद्धुम्।।[1]

रावण ने राम की सेना के बल का आभास नहीं लगाया क्योंकि उसे अपने बलशाली तथा पराक्रमी वीरों पर पूर्ण विश्वास था। मेघनाद के बध के उपरान्त जब वह स्वयं रणस्थली मे प्रविष्ट होता है तो कवि उसके बल, पौरूष और पराक्रम को इस प्रकार व्यक्त करता है–

प्रस्वापं स्वापदानानां तेजः काकुत्स्थ्योरपि।
उपलभ्य विनिश्वित्य निर्जगाम दशाननः।।
अप्रसन्नैर्हयैयुक्तं रथमारूह्य रंहसा।
निर्दहन्निव लोकांस्त्रींस्तत्राभूद् यत्र राघवः।।[2]

रावण के आत्मविश्वास पर उस समय प्रश्नचिन्ह लग जाता है जब मेघनाद की मृत्यु के उपरान्त उद्वेलित और क्रोधित होकर, अडिग संकल्प से पालायित होकर तथा निर्लज्ज होकर वह असन्तुलित होकर सीता के वध का उपक्रम करने लगता है। घटनाक्रम में एक बार रावण प्रासाद के उच्च शिखर पर आरोहण कर वानरी–सेना तथा राक्षसी सेना के युद्ध का अवलोकन कर रहा है, उसी समय कपिपति सुग्रीव उछाल से उसका गर्दन पकड़ कर राम के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। दूसरी बार राम ने रावण के सरपुंज वर्षा

---

1. रघुवीरचरितम् 16/46–47
2. रघुवीरचरितम् 16/12

"वह देहकारी इन्द्रजाल के समान है। दूसरी बार उसे दूर से ही आते हुए देखकर कपिसेना चित्कार करती हुयी पलायन करने लगी।"

दूरादेवा पतन्तं तमभिचारभिवांगिनम्।

निरीक्ष्य वानरी सेना दुद्राव कृत चीत्कृतिः।।[1]

दशानन पुत्र मेघनाद सांसारिक प्राणी नहीं अपितु मायारूप का अवतार है। काव्य में जिस स्थल पर मेघनाद उपस्थित है वह विविध मायाजाल का जीवन्त रूप है। माया के अतिरिक्त वह नगण्य है। अग्निवाणों की वर्षा कर उसने रणभूमि में आतन्क उपस्थित कर दिया। अग्निवाण की भयंकर ज्वाला से समस्त दिशायें जलने लगी। इस प्रकार लक्ष्मण की माया संबल ने ही उसे काव्य में स्थान दिया है। यहाँ तक कि "उसी का माया द्वारा "निर्मित रघुवीर का साक्षात् रूप क्षणभर के लिए सीता को प्राणत्यांग के लिए उद्यत कर बैठा।"

"कृत्वा मायावैभवेनारविन्द श्रीमद्वक्तं रामचन्द्रोत्तमांगम्।

एषा मायादेवी! कापित्य जैनां देहत्यागायोद्यतां चित्तवृन्तिम्वाणजवालो नै ऋतारण्यवार्हनः सत्यं देवो युद्धतेत्वां निनीषुः।।"[2]

मेघनाद के चरित्र का उज्जवल पक्ष यह है कि पितृभक्त, स्वाभिमानी, कुलधर्म, धारक तथा अपूर्व योद्धा है।

मारीच

मारीच से जब रावण ने सीता के अपहरण की इच्छा व्यक्त की तब

---

1. रघुवीरचरितम् 15/27–28
2. रघुवीरचरितम् 16/5–9

इससे सहमत नहीं हुआ प्रत्युत रावण को परस्त्री हरण को अधर्म का अनुयायी कहा तथा इस कुमार्ग के अनुसरण से विरत रहने का आग्रह किया। यह मारीच के धर्म तथा राजनीति का परिचायक है। मारीच रावण से कहता है कि मनीषी केवल ऐसे कार्यो की प्रशंसा करते हैं जो वर्तमान , भूत तथा भविष्य के विपरीत न हो। वह बार–बार रावण से अनुरोष करता है कि परभार्या का हरण उसकी मर्यादा तथा पराक्रम के प्रतिकूल हे।

इस प्रकार मारीच सुसंस्कृत, धर्मविद, नीतिशास्त्री तथा मर्यादा से परिपूत है।

शूर्पणखा

रघुवीरचरितम् में शूर्पणखा पंचम सर्ग में अपने मायावी रूप में प्रकट होती है। वैसे काव्य में रावण पक्षीय नारी का सर्वथा अभाव है। वह मायावी सुन्दरी रूप में अत्यन्त रमणीय हाव–भाव से राम के समक्ष उपस्थित होकर अपने प्रणय समर्पण का निवेदन करती है। असफल हो जाने पर वह अपने भयानक राक्षसी रूप में प्रकट होती है। वह एक दुश्चरित्रानारी है। लक्ष्मण की तरफ राम ने उसे इंगित किया। क्रोधातर लक्ष्मण ने उसका नाक तथा कान काट कर उसे विद्रूप कर दिया। सूपर्णखा का बस इतना ही घृणास्पद चरित्र है।

विभीषण

विभीषण अपने भ्रांता दशानन से विनम्र भाव में कहता है कि परस्त्री का इस प्रकार हरण कर लाना मर्यादा के विपरीत है इसलिए सीता को ससम्मान राम को लौटाकर उनसे क्षमा की अभ्यर्थना करो। वह रावण से मधुरवाणी में निवेदन करता है कि "कपि–समूह को सहायक रूप मे साथ लेने वाले राम साधारण मनुष्य नहीं हैं। उनके रूप में राक्षसकुल का विनाश करने

दुर्दान्त रावण कपोलचपेटदक्षं

सुग्रीवपाणिभवलम्बया करेण देवः।।

पौलस्त्यदर्शितपथोऽवततार यानात्।

तच्चन्ययुंक्त सपदि द्रविणेश्वराय।।36

इस प्रकार संकल्पशील , अप्रतिम साहसी तथा धैर्यवान विभीषण , आस्था, सौजन्य, सौहार्द, सत्य–स्वभाव, तेजस्वी, अन्याय प्रतिरोधी आदि दैवी गुणों से संयुक्त था।

—

पंचम अध्याय –

खण्ड (ख)

रघुवीरचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन अलंकार योजना

काव्य में आत्मतत्व के स्थान पर रस को माना गया है। काव्य में आगत शब्द अर्थ , अलंकरादि उसी रस तत्व को ही पोषित करते हैं। महाकवि सदैव रस के अधीन होता है। उसका समस्त प्रयास रस परक ही होता है। उस रस को परिपुष्ट करने वाले तत्व अंग रूप में ही होते हैं। शरीर को अलंकृत करने वाला सामान्य अलंकार परम्परापूर्वक आत्मतत्व को सुशोभित करता है। काव्यगत अलंकार भी शब्दार्थ में चमत्कार उत्पन्न करते हुए रस को ही पुष्ट करते हैं। इस प्रकार काव्य में सुन्दरतावर्धन करने वाले तत्व के रूप में अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं। काव्य में इनकी अनिवार्यता नहीं होती। तथापि अलंकार की स्थिति से काव्य विभूषित होता ही है, इस प्रकार अलंकार से रहित भी उत्तम काव्यरचना हो सकती है। जैसा कि साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने कहा है–

"केयूर आदि आभूषणों द्वारा जिस प्रकार शरीरांगों की शोभा में अभिवृद्वि होती है, तथैव अलंकार भी रसादि को उपकृत करते हुए शब्दार्थ की शोभा में अभिवृद्वि का कार्य करते हैं, किन्तु अलंकार है, अस्थिर धर्म!"

शब्द एवं अर्थ के इन्हीं शोभा विधायक अस्थिर धर्मो को अलंकार संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जैसा कि अधोलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है–

शब्दार्थयोरस्थिराये धर्मोः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्ते अंगदादिवत्।।[1]

ऐसा ही मत काव्य प्रकाशकार भी व्यक्त करते हैं–

जैसे शरीर में प्रधानतः स्थित आत्का के शौर्य आदि धर्म, आत्मतत्व की श्री का ही अभिवर्धन किया करते हैं, उसी प्रकार अनिवार्य रूप से विराजमान काव्य के आनन्द स्वरूप रस के भी माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुणों की रसधर्मिता की अभिवृद्धि ये अलंकार करते हैं।

काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽगद्धारेण जातुवित्।

हारादविद लंकारास्ते इनुप्रासो पमादयः।।[2]

'रघुवीरचरितम्' में अलंकार योजना का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

शब्दालंकार

जहाँ काव्य में चमत्कार शब्द का आश्रित हो, वहाँ शब्दालंकार होता है। जहाँ एक शब्द को परिवर्तित करके उसका पर्याय दूसरा शब्द प्रयुक्त कर देने से वह अलंकार नहीं रह जाता, वहाँ शब्दालंकार होता है। वह अलंकार विशेष उस शब्द के ही कारण था, अतः उसे शब्दालंकार कहा जाता है। काव्य प्रकाश के टीकाकार श्री सोमेश्वर ने शब्दालंकारों की संख्या छः निश्चित की है–

वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र, पुनरूक्तवदामास।

1. साहि०परि०, 10/1

2. काव्य प्रकाश, 2/1 ; 8/36

वक्रोक्तिरप्यनुप्रासो यमक श्लेषचित्राके।
पुनरूक्तवदामासः शब्दालंकत्यस्तुषद।।[1]

आलोच्य महाकाव्य 'रघुवीरचरितम्' शब्दालंकार आयोजित हैं। जिनमें वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक तथा श्लेष की प्रधानता है जिसका वर्णन इस शोध प्रबन्ध में विधिवत किया जा रहा है।

(1) अनुप्रास

"वर्णासाम्यमनुप्रासः"[2]

वार्गो अर्थात् व्यंजनों का सादृश्य जहाँ दृष्टिगत हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार कहा जाता है

समन्वय–

आविस्रविस्रम्भजुपस्विनाकंरक्षाशावान विशंकमकंगान।
रामैथिलोलोचनकान्तितस्करानुदृढशहकान् नितराम् शंकेत।।[3]
इत्यमुस्थित वाग्दृतिर्निजमात्मानमात्म वान्।
हव्यहन्यत हे हुत्वा पद्यस्खलितं गतः।।[4]

उपर्युक्त श्लोक में अविग्र–शंकहत छन्द में विग्र, विग्र, हक, इण्क का दूसरे इत्यमुगतः छन्द मे त्म, त्म एंव व्य, व्य का सादृश्य परिलक्षित होता है। इस प्रकार अनुप्रासालंकार की सांस्थिति अपने भेदों (छेक, वृद्धि तथा पद) सहित उपलब्ध है– सर्ग 2 में 30, 57, 66 सर्ग में 28, 60, सर्ग 4 में 11, 36,

---

1. काव्य प्रकाश टीका, सोमेश्वर
2. काव्य प्रकाश, 9/103
3. रघुवीरचरितम् 1/62
4. वही, 2/14.

38, 41, 43, 46 सर्ग 5 में 12, 20, 22, सर्ग 7 में 28, 30, 59, 65, 115 , सर्ग 8 में 42, 54 सर्ग 9 में 2, 8, 11, 16 सर्ग 13 में 109 सर्ग 15 में 8, 55, सर्ग 16 में 21, 24, 53 आदि श्लोकों में अनुप्रास अलंकार का भरमार है।

(2) यमक

"अर्थेसत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पनुः श्रुतिः।"[1]

अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्ण अथवा वर्ण समूह की जहाँ आवृत्ति हो, यमक अलंकार होता है।

समन्वय–

प्रकृतसान्ध्यमनोकह पल्लवैरिसिभिरितंव्वचिदिन्द्रमाणित्विषा।
परिणतद्वि पदन्तपरिक्षातिस्थ पुटितं पुटितं भव च सानुभ्ति।[2]

महाकवि ने नवम सर्ग में माल्यवान पर्वत एवं उसकी श्री सम्पदा का अत्यन्त मनमोहक चित्रांकन किया है। उसके शिखर, शिलाओं, वहाँ विहरणशील गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओं, वनस्पतियों तथा तरूलताओं के प्राकृतिक परिवर्तनों से प्रभावित परिवर्तनशील रूपों , विहार करने वाले मृगादि, व्याध्रादि हिंस्र–जन्तुओं के साथ ही गजवृन्द के कौतुक स्थल सदृश शैल–शिलाओं का निरीक्षण भी किया है। इसी क्रम में कवि इस उपर्युक्त छन्द के माध्यम से शिखरोपरि सघनपत्र, दल, पादप समूह द्वारा साम्ध्य बेला में तमाच्छन्न दृश्य का वर्णन, यत्र–तत्र इन्द्र नीलमणि की दीप्ति से प्रकाशाभास तथा हाथियों के द्वारा दाँतों की रगड़ से खण्डित शिला–समूह का चित्रण करता है।

इस छन्द के तृतीय तथा चतुर्थ चरण मे प्रयुक्त पुटितं शब्द (परिक्षतिस्थ

---

1. काव्य प्रकाश , नवम् उल्लास।
2. रघुवीरचरितम, 9/7

पुटितं तथा पुटितं) की आवृत्ति हुई है। अर्थ भिन्न–भिन्न है–रगड़ा हुआ और खण्डित। इससे यहाँ यमक अलंकार का योग है। इसी तरह अधोलिखित श्लोक में यमक की प्रस्तुति है–

नगिरिरेण्य पुरातनराक्षसः कृतपलाशकुलोन्नतिरानयन्।
हृदि खंजनि जवंश्यदशानन प्रियतयाय तयाममाल्यवान।।[1]

पलाश वृक्ष विकसित हो गये हें प्रिया–वियुक्त राम के हृदय को अतिशय सन्ताप का अनुभव हो रहा है। इस कारण प्रतिक्रिया में राम कहते है।– यह पर्वत नहीं बल्कि पुराना राक्षस है, पर्वत का रूप धारण किया है और इस पलाशतरू समूह के विकास द्वारा अपने कुल की उन्नति प्रदर्शित कर यह अपने वंश में उत्पन्न दशानन के प्रति अत्याधिक प्रियभाव रखकर हर क्षण मेरे हृदय को सन्तप्त करने का प्रयास कर रहा है।

यहाँ चतुर्थ पाद में प्रियतया, यतया पद में यमक अलंकार है।

इसके अतिरिक्त अधोलिखित श्लोकों में यमक अलंकार की छटा दर्शनीय है–

सर्ग 4 में 38 सर्ग 6 में 48, सर्ग 8 में 54, 132 सर्ग 9 में 2, 11 सर्ग 10 में 34, 88 सर्ग 16 में 29, 70 तथा सर्ग 17 में 2 आदि।

(3) श्लेष

"जहाँ श्लिष्ट पदों में कई अर्थो की ऊदावना की जाती है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।"[2]

---

1. रघुवीरचरितम .9/10
2. काव्य प्रकाश, 9/84

समन्वय–

"निशम्यतद्वाव्यमथ्र्रु वाणं मायेति सौमित्रिमुवाचसीता।
नाहं वयस्यभिहिरव्यपायै दिश्रियः, दिनश्रियः पावकमाविशन्त्याः।।"[1]

इस छन्द में वर्णश्लेष पदश्लेष दोनों स्वरूपें में श्लेष अलंकार प्रस्तुत हैं। मायामृग राम के वाण से आधातित होकर 'हालक्ष्मण मामि हेतु' का आर्तस्वर उच्चरित करता है। स्वर का श्रवण कर (जो राम के स्वर समान था) सीता लक्ष्मण से राम की सहायता हेतु प्रस्थान करने को कहती हैं। लक्ष्मण मायामृग स्वर को कहकर सीता को निर्भय करना चाहते हैं। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सीता प्रतिवाद करती है कि क्या सूर्य के अस्त हो जाने पर दिनश्री पावक में शोभा नहीं धारण करती है।

इस श्लोक में मिहिरव्यापाये पद में श्लेष है और इसी प्रकार दिनश्रियः में भी। मिहिर का यहाँ प्रकृति अर्थ सूर्य है।

4. पुनरूक्तवदामास

"पुनरूक्तवदामाससो विभिन्नाकार शब्दगा, एकार्थतेव।"[2]

परस्पर भिन्न–भिन्न रूपवाले सार्थक अथवा निरर्थक शब्दों से जहाँ एकार्थकता की प्रतीति होती है, वहाँ पुनरूक्तवदामास अलंकार होता है।

समन्वय–

"आसन्नमासन्नभिवैण मेनसेलक्ष्यगतो विदूरम्।
उपायतस्तद् ग्रहणेनिराशरत्वचं समाधातु भियेषभूयः।।[3]

1. रघुवीरचरितम .7/56
2. काव्य प्रकाश, 9/122
3. रघुवीरचरितम .6/51

राम स्वर्णमृग की पीछा कर रहे हैं मृग को हस्तगत करने हेतु काफी दूर चले गये। उसके वध का ही निश्चय किया।

इस छन्द में प्रयुक्त आसन्नम् आसन्नम् एंव संलक्ष्य संलक्ष्य व आवृत्ति निरर्थक है। पहला शब्द ही अर्थबोध करा देता है।

अर्थालंकार

अर्थ ग्रहण करने से जब काव्यगत वैभव में अभिवृद्धि हो अथवा अ द्वारा रमणीयार्थ–बोध की सौन्दर्य सृष्टि हो अथवा अर्थ द्वारा कवि की नव ऊदावना को प्रकट करेन का संकेत मिले तो अर्थालंकार कहा जाता अर्थालंकार का केन्द्र बिन्दु उपमा है।

उपमा

"साधर्म्यमुपमा भेदे।"[1]

"सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपरस्कारमुपमालंकृतिः।"[2]

अर्थात् वाक्यार्थ की शोभा प्रदान करने वाले सुन्दर सादृश्य का उपमा अलंकार है, अविा उपमान तथा उपमेय दोनों की पारस्परिक साध धर्मिता उपमा अंलकार है।

समन्वय–

"अथ प्रभाते विमले तानामन्त्रयमुनीन्विभुः।
अरण्यानी विवशोच्चैर्मास्वानिव धनावलिम्।।[3]

---

1. काव्य प्रकाश, 10/125
2. रसगंधार, द्वितीया
3. रघुवीरचरितम ,2/1

"कण्ट को पलदुगेषु वंस्तो विपिनेषु ते।
संहृता न व्यथां जगमुर्मातुपार्श्वगताइव।।"[1]

उपर्युक्त छन्दों में अर्थ ग्रहण करने पर सादृश्य की मनोरम सृष्टि हो रही है जिससे अर्थ की शोभा में वृद्धि है। इसके पश्चात् विमल प्रभात में मुनिवृन्द से विदा लेकर राम मेघमाला के मध्य प्रदीप्त सूर्य के सदृश वन प्रदेश में प्रस्थित हुए।

प्रथम छन्द में धनावली का अरण्यानी से तथा "विभु;" (रघुवीर) का "भास्वान" से सादृश्य है। द्वितीय छन्द में कण्टकोपल आदि के नैकटय की 'मातुपार्श्व' से सदृश्यता है।

'रघुवीरचरितम्' में उपमा अलंकार की उपस्थिति अन्य श्लोकों में इस प्रकार है यथा–

सर्ग 1 में 2,3 सर्ग 2 में 1 2 3 4 सर्ग 3 में 17, 78, सर्ग 4 में 23, 25, 31, 41, 44 सर्ग 5 में 5, 6, 7, 10, 13, 15, 20, 23, 25, 40, 60 सर्ग 6 में 40 , 44, 61, 63 सर्ग 7 में 85 सर्ग 10 में 3, 11 सर्ग 11 में 31 सर्ग 13 में 11, 65 आदि।

रूपक

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः"[2]

उपमेय तथा उपमान का जो अभेद–अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद होता है, उसे रूपक अलंकार कहा जाता है।

---

1. रघुवीरचरितम .2/2
2. काव्य प्रकाश, 10/139

समन्वय–

"कैरवकेसरधूली पालीकवचितमनसि जयोधसहायाः।
सौरभसौहृदरसिका एतेभटितिहिविकृतिभुपेतावाताः।।"[1]

उक्त श्लोक में मदिराायित पवन का चित्रण कवि रूप्क के माध्यम से प्रस्तुत किया है– कामदेवं सहायक बनकर कुमुदवन के परागरूपी कवच ६ ाारण कर लिए है और सुहृदरसिक रूप सौरभ हृद्यस्तभावरूपी समीरण को विकारभूमि बना रहा है।

इस छन्द में रूपक अलंकार का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त रूपक अलंकार का प्रयोग अन्य अधोलिखित श्लोकों में किया गया है–

सर्ग 4 में 7, 62 सर्ग 5 में 6, 15, 17, 23, 25, 44 सर्ग 2 में 24, 56 सर्ग 6 में 46 सर्ग 8 में 107 सर्ग 9 में 29 सर्ग 10 में 7, 9 सर्ग 13 में 47 सर्ग 14 में, 15, 28, 31, 65 व 66।

ससन्देह

"ससन्देहस्तुभेदावतौतदनुवतौ च संशयः।"[2]

जब उपमेय तथा उपमान की एकरूपता परिलक्षित हो, सादृश्यमूलक ससन्देह सम्भावित होने लगे। इन दोनों (उपमेय और उपमान) का वैधर्म्य कहीं प्रकट तथा कहीं अप्रकट रहता है, परन्तु दोनों स्थितियों में ससन्देह अलंकार होता है।"[3]

रसगांधर में पाण्डितराज जगन्नाथ का कहना है–

"सादृश्य ज्ञान रूप दोष से उत्पन्न होने वाला और जिसमें विरोध का

---

1. रघुवीरचरितम .10/3
2. काव्य प्रकाश, 10/92
3. वही, 10/92

प्रतिभास हो. एवं जिसमें विविध रूपें को आभसित कराने वाली सामग्री समानरूप से परिलक्षित हो ऐसी स्थिति ससन्देहलंकार की संास्थिति करती है।"

"सादृश्यमूलाभासमानविरोधकः समबलाभानाकोटयगाहिनी ही रमणीया ससन्देहलंकृति।।"[1]

समन्वय–

अस्त्मेव पदमं नामौ वा छन्नंमुखशशित्विषा।
तदुदूगतां द्विरेफाली शंके रोमावलीभिमाम्।।[2]

उपर्युक्त छन्द में कवि सुग्रीव प्रेषित हनुमान द्वारा वल्कल वसन ध ारीराम के रूप को निरख कर विविध तर्क–वितर्क करने लगे। अनुमानों के पश्चात अन्तिम अनुमान भगवान राम के होने पर दृढ़ होता है। जटाजूट युक्त मुखच्छवि मानो भ्रमर दल से आक्रान्त है। यहाँ 'द्विरेफाली' एवं 'रोमावली' में सादृश्य भाव प्रस्तुत है; जिसमें संदेहालंकार है। इसके अतिरिक्त संदेहालंकार की प्रस्तुति अन्य स्थानों पर भी है–

सर्ग 1/62, सर्ग 5/58, सर्ग 7/3,4,10, 18 तथा सर्ग 8/341

दृष्टान्त

'दृष्टान्तः पुनरेलेषं। सर्वेसांप्रतिबिम्बनम्।'[3]

दृष्टान्त वह अलंकार है जिसमें उपमेय वाक्य एंव उपमान वाक्य, दोनों वाक्यों में इन (तीनों) सबका–उपमान तथा साधारण धर्म का बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव आभासित हो। रसगंाधर में इसे इस प्रकार वर्णित किया गया हे–

1. रसगंाधर, द्वितीयमानन
2. रघुवीरचरितम्, 8/34
3. काव्य प्रकाश, 10/102

'प्रकृति वाक्यार्थ घटकानामुपमानादी नां साधारणधर्मस्य च बिम्बप्रतिबिम्बभावे दृष्टान्तः।''[1]

उपात दो वाक्यों के अर्थ अवयवभूत सभी पदार्थ, अर्थात् उपमेय, उपमान, साधारण धर्म आदि यदि बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से युक्त हो, तो दृष्टान्त अलंकार होता है।

समन्वय–

'सुखदुः खविवृद्धिविप्लवाः सहदेहेन भवन्ति देहिनाम्।
विमृशन्निति तत्वमात्मना न वुधस्तत्रविपदयतेब वचितो।।[2]

मनुष्य के लिए सुख और दुःख की अवस्थायें जीवन पर्यन्त बनी रहती हैं। यह उसकी प्रकृति है। इस स्थिति को समझ कर तथा इस तथ्य पर विचार करते हुए विवेकीजन कभी संकटापन्न नही होते। यहाँ ''न बुधास्तत्र विपद्यते क्वचित्'' का साधर्म्य भाव सुख–दुःख विवृद्धि देहिनाम के अर्थबोध में पतिभासित हो रहा है। अतैव दृष्टान्त अलंकार की प्रस्तुति होती है। महाकाव्य के अन्य स्थानों पर भी इस अलंकार की स्थिति अन्य श्लोकों में भी है–

सर्ग 6/14 , 22, सर्ग 7/107, 112, सर्ग 8/66, 139, सर्ग 6/32, 6, 11

स्मरण

'यथाद्रनुभवमर्थस्यदृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः। स्मरणम्'[3]

पूर्व अनुभव के अनुसार वस्तु की स्मृति होना स्मरण अलंकार होता है। जो पदार्थ किसी आकार विशेष से निश्चित है तथा कभी अनुभव किया

---

1. रसगांधर, द्वितीयमानन
2. रघुवीरचरितम, 17/34
3. काव्य प्रकाश, 10/198

गया है, दूसरे समय संस्कारोद्बोधक समान वस्तु को देखने पर उसका जो उसी रूप में स्मरण होता है, वह स्मरण अंलकार है।

रसगंधार के अनुसार जो व्यक्त है–

'सादृश्यज्ञानोद्वद्धसंस्कार प्रयोज्यम् स्मरणंस्मरणालंकारः।'[1]

सादृश्य ज्ञान से जागृत जो संस्कार उससे साक्षात् अथवा परम्पराया होने वाला स्मरण स्मरणअलंकार है। तात्पर्य यह है, कि वस्तु विशेष को देखने अथवा वर्णन सुनने से जब तत्सदृश वस्तु के स्मरण भाव उत्पन्न होते हें और वही जब काव्य में चमत्कारिक रीति से वर्णित हो, तो स्मरण अलंकार होता है।

समन्वय–

"निरीक्ष्य पोरपम्पायाः परिभद्रं विकस्वरम्।
सस्मार विद्रुभाताभ्रं प्रियाया दशनच्छदम्।।"[2]

"कुन्दस्मेरेषु तारेषु व्यापारितविलोचनः।
प्रतिष्ठामनयच्चिते प्रियायास्मित चन्द्रिकाम्।।"[3]

प्रथम श्लोक में–पम्पासर के तट पर पारिभद्र का विकसित ब्रह्य अवलोकन कर राम प्रवालमाणि रूप प्रिया सीता की रक्तभ अधर छवि का स्मरण करने लगे। यहाँ पारिभ्रद के विकसित लाल वर्ण पुरूष देखने के कारण, रक्तभ अधर (सीता के) का सादृश्य परिलक्षित होने से स्मृति–जागृति स्मरणालंकार की सृष्टि कर रही है।

---

1. रसगांधर, द्वितीयमानन
2. रघुवीरचरितम, 8/9
3. रघुवीरचरितम, 9/10

द्वितीय श्लोक मे सरोवर तट पर जहाँ धवल कुन्द सुमन मुस्करा (खिल) रहे हैं। दृष्टिफलक से प्रिया सीता की मुस्कान चन्द्रिका का आभास राम मन ही मन करने लगे। यह कुन्दपुरूष की धवलाभा में प्रिया की स्मृति का सादृश्य स्मरण अलंकार की झलक दे रहा है। इसके अतिरिक्त स्मरण अलंकार अन्य स्थानों पर उपस्थित है–

सर्ग 7/80, सर्ग 8/6, 7, 8, 9, 10 सर्ग 9/15, 30, 31 सर्ग 13/109, सर्ग 14/51

भ्रान्तिमान

भ्रान्तिमानस्य संवित्तुल्यदर्शने उस (अन्य अप्राकरणिक वस्तु) के समान (प्राकरणिक वस्तु को देखने पर जो अन्य वस्तु (अप्राकरणिक अर्थ) का भान होता है, वह भ्रान्तिमान अंलकार कहलाता है

रसगंधर में इस अलंकार की व्याख्या अधोलिखित हे–

"सदृशे धर्मिणि तादात्म्येन धम्यन्तर प्रकार को नाहार्यो निश्चयः सादृश्य प्रयोज्यपूचमत्कारी प्रकृते भ्रान्तिः। सा चपशुपक्ष्यादिगतायास्मिन् वाक्यसन्दर्भे स भ्रान्तिमान।"[2]

सादृश्ययुक्त धर्मी में अभेद सम्बन्ध से अन्य किसी धर्मी का वास्तविक तथा सादृश्य ज्ञान का कारण होने वाला निश्यात्मक ज्ञान, चमत्कार सहित होने पर अलंकारशास्त्र में भ्रान्ति तथा पशु, पक्षी अथवा मनुष्य में रहने वाली उस भ्रान्ति का वर्णन करने वाला वचन–समूह भ्रान्तिमान अलंकार होता है।"

1. काव्यप्रकाश, 10/199
2. रसगांधर, द्वितीयमानन

समन्वय–

ताण्डवभ्रमिविधायिधूर्जटिक्षिप्तमूरिमसितानुकारिभिः।
अन्वभवि हिमविप्रुषां चयैर्व्योम्निशुभ्रशरदभ्रविभ्रमः।।[1]

इस श्लोक के अनुसार आकाश में चन्द्रमा उदित हो चुका है। उसकी बिखरती हुई श्वेताभ किरणों से नभमण्डल धवल हो रहा है। कवि कहता है कि ऐसी छवि को देखकर शरदाकाश का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, क्योंकि ताण्डव नर्तनरत शंकर जैसे भस्मलिप्त वेश से भस्मकणों को प्रक्षिप्त सा कर दिये। अतएव आकाश हिमकण राशि से पूर्ण हो गया। यहाँ हिमकणों`स व्याप्त आकाश की निर्मल छवि 'शरदभ्र' का भ्रम उत्पन्न कर रहा है, इस कारण भ्रान्तिमान अलंकार की उपस्थिति है।

उत्प्रेक्षा

"सम्भावनमधोत्प्रेक्षाप्रकृतस्य समेनयत्।"[2]

जब प्रकृत उपमेय की उसके अप्रकृत उपमान के साथ तादात्म्य सम्भावित हो तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

पाण्डितराज जगन्नाथ स्पष्टतः कहते हैं–

"तदनिन्नत्वेन तद्धावक्त्रेन वा प्रमितस्य पदार्थस्य रमणीयतदवृत्ति–तत्समानधिकरणन्यतरतद्धर्म सम्बन्धनिभित्तकं तत्वेन तदवत्वेन वा सम्भावनमुत्प्रेक्षा।"[3]

जिस पदार्थ का भेद जिस पदार्थ में यथार्थ ज्ञात हा, उस पदार्थ की

---

1. रघुवीरचरितम, 4/32
2. काव्य प्रकाश, 10/137
3. रसगंाधर, द्वितीयमानन

उस पदार्थ के रूप में दोनों पदार्थो में रहने वाली किसी सुन्दर धर्मिता के आध
ार पर की जाने वाली सम्भावना अथवा जिस धर्म का अभाव जिस पदार्थ में यथार्थतया ज्ञात हो, उस पदार्थ में उस धर्म से युक्त होने की ऐसी सम्भावना, जो उस धर्म के साथ रहने वाले किसी सुन्दर धर्म को निमित्त मानकर की गयी हो, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

समन्वय–

अस्तूशैलशिखरावलाम्बिना पद्यिनी सहचरोण तेजसा।
कल्प्यते निजसचादिशां मुखेष्वदमुता धुत्रृणपंकवर्चन।।[1]

इस श्लोक में सान्ध्यकालीन दिशाओं का चित्रण किया गया है। सूर्य अस्ताचल की ओर गमनोन्मुख है। दिशायें पीताम रक्तिमवर्ण हो रही हैं। कवि तत्कालीन दृश्य की अद्वितीय कल्पना करता है– अस्ताच लगामी सूर्य का तेज दिशाओं में व्याप्त है। सूर्य अपनी आभा के ब्याज से मुख द्वारा दिशाओं पर केसर रंग के गारा का लेप कर रहा है। यहाँ पर पीताम रक्ति आभा से युक्त दिशाओं पर केसर रंग के लेप की सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रस्तुति है। इसके अतिरिक्त अधोलिखित श्लोकों में उत्प्रेक्षा अलंकार का वर्णन है– सर्ग1 में 58, 75, सर्ग 4 में 16, सर्ग 5 में 5, 6, 16, 17, 33, 35, सर्ग 6 में 41, 43, सर्ग 7 में 17, 18, 21, सर्ग 8 में 2, 3, 27, 28, सर्ग 9 में 14, 15, 17, 27, 28 सर्ग 10 में 90, 98, सर्ग 11 में 4, 6, 7, 10, 33, 40, 51 सर्ग 12 में 13, 43, 45।

अनुमान

"अनुमानं तदुवतं यत् साव्यसाधयोर्वचः।"[2]

---

1. रघुवीरचरितम, 4/7

2. काव्य प्रकाश, 10/117

जहाँ साध्य–साधन भावरूप से किसी अर्थ का प्रतिपादन हो, वहाँ अनुमान अलंकार होता है। इसकी व्याख्या रसगंधर में भी की गयी है–

"अनुमितिकाराणममनुमानम्"[1]

अनुमिति रूप ज्ञान विशेष के परिणामस्वरूप असाधारण कारण अर्थात् व्याप्ति ज्ञान अनुमानलंकार है।

समन्वय–

"शंख चक्रधनुर्भत्स्यैमुदितानि पदानि सः।
मांर्ग पासुंषु संलक्ष्य मेने तावतिमानुषौ।।"[2]

मार्ग में रजकणों पर परिलक्षित चरणचिन्ह शंक, चक्र, धनु और मत्स्य के अभिज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अतः अनुमान है। यहाँ शंकादि अभिज्ञान का पदचिन्हों में स्पष्ट होना ज्ञान विशेष की प्रतीति करता है। अतः अनुमान अलंकार अलंकार है। इसी प्रकार स्थलों पर भी इस अलंकार की उपस्थिति है–

सर्ग 8 में 26 , 29, 49

अतिश्योक्ति

"निगीर्याध्वज्ञानन्तु प्रकृतस्यपरोग यत्।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यदयर्धोक्तौ च कल्पनम्।।
कार्यकारणयों यंश्वं पोर्वापर्य विपर्ययः।
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा।।"[3]

जिसमें उपमेय का ऐसा अध्यवसान (काल्पनिक अभेद का निश्चय)

---

1. रसगांधर, द्वितीयमानन
2. रघुवीरचरितम, 8/24,

3. काव्य प्रकाश, 10/109

किया जाय कि उपमान`स अलग निर्दिष्ट न दिखाई दे, वर्ण्य विषय का उसेस भिन्न रीति द्वारा वर्णन किया जाय। यदि शब्द के अभिप्राय में किसी असम्भाव्य अर्थ कल्पना की जाय़ ओर कार्य तथा कारण के पौर्वापर्य पूर्वापर्य पूर्वापर भाव का वैपरीत्य प्रकट हो, उसे अतिश्योक्ति अलंकार की संज्ञा दी जाती है।

रसगांधर मे संक्षेप में कहा गया है–

"विषयिणविषयस्यनिगरणमतिशयः। तस्योक्ति"[1]

अर्थात् उपमान के माध्यम उपमेय के आत्मसात करने को अतिशय कहते है तथा तादृश अतिशय कथन का नाम अतिशयाक्ति है।

समन्वय

"न चाददानं न च सन्दधानं न च प्रमुंचन्तभिक्षणमंस्त।
रामंतुरक्षः पृतना तदीयं धनुः सदामण्डलितं ददर्श।।"[2]

कवि रघुवीर तथा खरदूषण के युद्ध का चित्रण प्रस्तुत करता है– राक्षस सेना ने न तो राम क़ो धनुष उठाते देखा, न हाथ मे पकड़ते देखा ओर न तो उस धनुष से वाण छोड़ते हुए देखा, राम का धनुष हर क्षण मण्डलाकार ही (तना हुआ), दिखायी पड़ता था। इस श्लोक मे कवि राम के धनुचालन का कौशल अतिरंजित करके कह रहा है। इससे यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। इसके अतिरिक्त अधोलिखित सर्गो में इसकी विद्यमानता हे–

सर्ग 6 में 40, 43, 45, 46

---

1. रसगांधर, द्वितीयमानन

2. रघुवीरचरितम्, 5/26.

दीपक

सुकृदवृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु वहनीषु कारकस्येति दीपकम्।।1

दीपक वह अलंकार है जिसमें उपमेय तथा उपमान के धर्म का एक बार उपादान अथवा कथन होता है या जहाँ एक ही कारक का विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्ध हुआ करता है। पुनः प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थों का गुण आदि एक साधारण धर्म के साथ जो अन्वय वर्णित किया जाता है, वहाँ दीपक अलंकार होता है।

"प्रकृतानामप्रकृता नां चैक साधारण धर्मान्वयोदीपकम्।।"2

समन्वय–

ज्योत्स्नया जगदपिप्रसाधयन्, बोध्यन्नपि च कैरवाकरम्।
कालयन्नपि, तमांसि चन्द्रमाः स्वं कलकमपभार्ष्टुमप्रभुः।।3

समस्त जगत् को सुधर ज्योत्सना से प्रहर्षित करने वाला, कुमुदवन को विकसित करने वाला और अन्धकार समूह को नष्ट करने वाला अपना कलंक दूर करने मे असमर्थ है।

इसमें कई क्रियाओं का कर्ता एक चन्द्रमा है। अतः दीपक अलंकार है। इसके अतिरिक्त इस अलंकार की संस्थिति है–

सर्ग 10 में 113 सर्ग 11 में 51 सर्ग 4 में 28 आदि।

निष्कर्षतः रघुवीरचरितम् में ओर अन्य अलंकारों की भी प्रस्तुति

---

1. काव्य प्रकाश, 10/103
2. रसगांधर, द्वितीयमानन

3. रघुवीरचरितम, 4/28,

विद्यमान है जैसे समुच्चय अलंकार सर्ग 9/41, सर्ग 10/113 सर्ग 9/22 तथा सर्ग 13/94 आदि।

व्याजस्तुति अलंकार का प्रयोग सर्ग 6/26, 10/108, 109 स्वभावोक्तिः सर्ग 4/28, सर्ग 10/51–53, सर्ग 13/63, सर्ग 15/3–4, विषम– "अननुरूप संसर्गो विषमम्।"[1]

सग 13/68, सर्ग 10 में 51–53, सर्ग 13/63 पर्याय– "एकं क्रमेणाने कस्मिन् पर्यायः" अधोलिखित प्रयोग किया गया है–

सर्ग 10/108, 109

"पुरा हमेकंयोत्प्लुत्या विरिंचभवनं गतः।
अभिवन्द्य तभद्राक्षमसंकयान प्राक्तनान् मनून्।।
कौशिकोद्धवितान् देवान् वैश्वानस्यथाद् बहिः।
अवस्थितांस्ततो गत्वा सद्यः पातालमश्रितः।।"[2]

छन्द योजना

काव्य के तीन भेद माने गये हैं– गद्य , पद्य एवं चम्पू

गद्य काव्य सम्पूर्णतया गद्यमय होता है। पद्यकाव्य पूर्णतः पद्यमय होता है। चम्पू काव्य गद्य तथा पद्य मिश्रित होता है। पद्य का लक्षण साहित्य दर्पण में इस प्रकार है–

"छन्दोबद्धपदं पद्यम्"[3]

---

1. रसगंाधर, द्वितीयमानन
2. काव्य प्रकाश, 10/180

3. साहित्य दर्पण, 6/34,

छन्दोबद्ध पद्य को पद्यकाव्य की संज्ञा दी जाती है।

छन्दशास्त्र वेद का पाद होने से वेदांग है। अति प्राचीन काल से इसका प्रयोग वेद में हुआ है। त्रेतायुग में सर्वप्रथम इसका लोक में प्रादुर्भाव महर्षि बाल्मीकि के मुख से हुआ–

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः त्वमगमः शाश्वतीः सभाः
यत् क्रौन्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।[1]

ब्रह्म ने स्वयं महर्षि के आश्रम में कहा है–

"एष प्रथम छन्दसामवतारः।"[2]

छन्दशास्त्र के उपदेश की परम्परा भगवान् शंकर से प्रारम्भ है। इसका क्रमिक प्रचार लोक में हुआ। अधोलिखित छन्दों से यह सुस्पष्ट है–

छन्दोज्ञानभिदं भवाद् भगवतो लेभे सुराणापति।
तस्माद् दुश्ययवन स्ततः सुरगुरूर्माण्डव्यनामाततः।।
माण्डव्यादपिसेत वस्ततत्रः षिर्यास्कस्ततः पिङ्गल
स्तस्येदं यशसागुरो र्भुविघृतंप्राप्याऽस्यमाद्यैः कृतम्।।[3]

महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने "सुकृत तिलक" में छन्दोयोजना के विषय में अधोलिखित श्लोक लिखा है–

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानगणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तनां विनियोगं विभागवित्।।

---

1. वाल्मीकि रामायण
2. उ०रा०, 9/11

3. यादव प्रकाशमिद्य छन्दा, सूत्रटीका–1

अर्थात् कवि को अपने काव्य मे रस एवं वार्णनीय वस्तु के अनुसार सुविचारपूर्वक छन्दोयोजना करनी चाहिए।

छन्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

पाणिनीय क्रम में

"छन्यति – प्राह्लादयति, इति छन्दः।"

छन्द का आह्लादक गुण रस सिद्धान्त से सम्बन्धित है। अतः छन्द की पहली व्युत्पत्ति उसकी आत्मा से सम्बन्ध रखती है, क्योंकि रस को काव्य की आत्मा या मूलीभूत तत्व माना जाता है।

"ऋग्वेद के दशम मण्डल में छन्द शब्द का प्रयोग आकांक्षा या अभिलाषा अर्थ में किया गया है।"[1]

"यास्क ने निरूक्त में छन्द को स्तोत्र का पर्याय माना है।"[2]

छन्द की परिभाषा

नाट्यशास्त्र में छन्द की परिभाषा अधोलिखित है–

एवं नानार्थसंयुक्तैः पदैर्वर्णविभूषितैः।
चतुर्भिस्तुभवेमुक्त छन्दोवृद्धाभिधानवत्।।[3]

श्री जगन्नाथ प्रसाद ने छन्द की उत्तम परिभाषा दी है–

"मतवरण यतिगति नियम अंतहि समताबन्द।"[4]

---

1. सू0, 85 अनुष्ठन
2. निघण्टु, 3/16
3. ना0शा0 , चतुर्थ अध्याय पर

4. इन्द्र प्रभाकर, पृ0 1 जगन्नाथ प्रसाद

जिस पद रचना मे मात्रा या वर्ण, यति, गति के नियमों का अनुसरण होता है। अन्त में अत्त्यानुप्रास होता है वह छन्द है।"

डॉ0 गौरीशंकर मिश्र द्विजेन्द्र ने छन्द की परिभाषा इस प्रकार दी है–

"छन्द वह लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है। जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्यांश पद्य का रूप धारण कर लेता है।"1

छन्दों के निर्माण मे लघु, गुरू एवं गणों का समुचित निर्वाहं आवश्यक होता है। 8 गण होते हैं। जिनको निम्नवत समझा जा सकता है–

लघु का चिन्ह '।' है एवं गुरू का चिन्ह 'ऽ' है इन्हीं लघु तथा गुरूओं के संयोजन से गण बनते हैं। गण का एक सूत्र है जिसके आधार पर गणों को सरलता से समझा जा सकता है–"यामाताराज मानसलगम्।।" क्रमश –

यगण	मगण	तगण	रगण	जगण	भगण	नगण	सगण
।ऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।।	।।।	।।ऽ

लघु	एवं	गुरू
।		ऽ

लघु एक मात्रिक तथा गुरू दो मात्रिक होता है। छन्दो के मात्रिक तथा वार्णिक भेद से दो प्रकार के होते हैं।

वार्णिक छन्दों मे वर्णो की संख्या के अनुसार पद निर्धारित होता है। समवृत्त जिनके चारों चरणों में वर्ग संख्या समान होती है।

अर्द्धसमवृत्त वृत्त में प्रथम, तृतीय चरण में तथा द्वितीय, चतुर्थ चरण में

1. छन्दोदर्यण, पृ0 1 डॉ0 गोरीशंकर मिश्र द्विनेंद्र

वर्ण संख्या समान होती है। विषमवृत्त में चारों चरणों में वर्ण सख्या समान नहीं होती है।

'रघुवीरचरितम्' में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। महाकाव्य होने के कारण सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है– 9, 13, 15 सर्गो में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है।

वर्णिक छन्द

1. अनुष्टुप

लक्षण–

"श्लाके षष्ठं गुरूज्ञेयं सर्वत्र लघुपंचमम्।
द्विचतुष्पादयो हस्वं सप्तमंदीर्धमन्ययोः।।"[1]

यह छन्द आठ वर्णा का होता है, इसमे पंचम वर्ण चारों चरण में हस्व (लघु) होता है, छठाँ वर्ण गुरू होता है। सप्तम वर्ण दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है तथा प्रथम तृतीय चरण में दीर्घ होता है। यह समवृत्त है।

समन्वय–

"आसीद दशरथो नाम राजासत्यप्रतित्रवः।
तस्य राम इति स्यातः पुत्रोमूदगुणवत्तमः।।"[2]

सर्गानुसार वर्णन–

सर्गानुसार विवेचन	श्लोक संख्या	योग
द्वितीय	1 से 193	193

---

1. महाकवि कालिदासप्रणीत, श्रुतबोध, 11
2. रघुवीरचरितम्, 10/25

अष्टम	1 से 139	139
दशम	1 से 117	117
चतुर्दश	1 से 138	138
षोऽश	1 से 90	90
		योग 677

2. उपेन्द्र वज्रा

लक्षण– "उपेन्द्रवज्रा जत जास्तोगौ।"[1]

प्रत्येक चरण में जगण, तगण एवं दो गुरू के क्रम से ग्यारह वर्ण होते हैं।

समन्वय–

"ततो यियासाविशुनं तदुक्तं
निशम्य किंचिद् विमनां श्वाभूत
मुनिः स्वयं दृष्ट पूरावरोऽपि
सतां क एव क्षमे वियोगम्।।"[2]

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
3	1 से 9	9
3	11, 14	2
	योग	11

---

1. वृत्तलाकर, 3/29, श्रीभट्ट केदार
2. रघुवीरचरितम्, 3/4

3. उपजाति

लक्षण–

"अनन्तोरदीरिति लक्ष्ममाजौ
पादौ यदीयाबु पजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि भि श्रितासु
वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।"1

इसके प्रत्येक पाद मे 11 वर्ण होते हैं। इन्द्रवज्रा ओर उपेन्द्र वज्रा दोनों छन्दों का एक पद्य में ही मिश्रण हो तो उपजाति छन्द है।

4. रघोद्धता

लक्षण–

"रान्नरा विहरथोद्धता लगौ।"2

यह 11 वर्गो का छन्द है। इसमें रगण, नगण, रमण 1 लघु 1 गुरू वर्ण होते हैं। पूरे चरण की समाप्ति पर यति होती है। यह समवृत्त है।

समन्वय–

तत्र पार्णभवने वसन् प्रिया, माकलय्य कुसुमग्रहोत्सुकाम।
लक्ष्मणेन तया च संयुतः, प्राविशत् परिसरात्रयं वनम्।।3

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
चतुर्थ	1 से 62	62

1. श्री गंगादास , छन्दोमंजरी, 2/3
2. वृत्तलाकर, 3/38
3. रघुवीरचरितम्, 4/1

त्रयोदश	1 से 90	90
	योग	152

5. शालिनी

लक्षण–

"शालिन्युकाम्तौ तगो गोऽब्धिलोकैः।"1

यह भी समवृत्त है। इसके चारों चरण में 11–11 वर्ण होते हैं। चार ओर सात वर्णो पर यति होती है। इसमें मगण, तगण, 2 गुरू का प्रयोग होता है।

समन्वय–

वीरच्छाया ग्राहिणी यातधानी, मेवंकृत्वा कृत्यवान्र्तृहेतोः।
हर्षस्मेरैर्नाकिभिः स्तूयमानो, भेयाऽप्यासीदम्बरेभीम रूपः।।2

सर्गानुसार –

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
15	24 से 45	22
	योग	22

6. सुन्दरी–

लक्षण–

"अयुजो सौगौयुजौः समराल्गौ यद सुन्दरी तदा।।"2

इसमें प्रथम और तृतीय चरणों में सगण, जगण तथा गुरू के क्रम से दश–दश वर्ग तथा द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में सागण, भगण, रमण, लघु और गुरू के क्रम से 11–11 वर्ण होते हैं।

---

1. वृत्तरलाकर, 3/34
2. रघुवीरचरितम् 12/50
3. छन्दोमंजरी, 3/6

इसका प्रयोग केवल सर्ग 6 के पूरे श्लोक में है तथा सर्ग सप्तम् में 1 से 118 श्लोकों में है।

7. वंशस्थ

लक्षण–

"वदन्ति वंशस्थविलंजतोजरा"1

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में जगण, तगण तथा रगण क्रम से बारह अक्षर हो, वह वंशस्थ है।

समन्वय–

श्रियः शिवधाम सदारसोदरः, प्रविश्य रामः पितृवाक्यगौरवात्।
वनं महद् दण्डकमाश्रमजातमैज्ञत।।"2

सर्गानुसार

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
प्रथम	1 से 64	64
नवम	22	1
द्वादश	1 से 62	62
सप्तदश	1 से 72	72
		योग 199

1. छन्द वृत्तरत्नाकर, 2/2
2. रघुवीरचरितम् 1/1

8. द्रुतविलम्बित

लक्षण–

"द्रुतविलम्बित माह नमौभरौ।"[1]

यह समवृत्त हैं इसमे 12 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण मे नगण, मगण, भगण और रगण होते हैं।

रघुवीरचरितम् के केवल 12 श्लोकों में इसका प्रयोग है–

सर्ग 9/1 से 11 सर्ग 13/100

9. भुजगप्रयातम्

लक्षण–

"भुजगप्रयातं चतुर्मिर्यकारैः"[2]

यह समवृत्त है। इसमें 12 वर्ण प्रत्येक चरण मे होते हैं। इसमें चार यगण होता है।

समन्वय–

अलंवाग्मिराभिः कुरू प्रार्थितं मे महावीर! वीरश्रियः पूरयत्वम्।
शराग्रावकृतैर्द्विषांमुत्तमांग्रै, र्मनस्याहितां, कत्दुकोत्क्षेपलीलाम्।।[3]

सर्गानुसार–

सर्ग	श्लोक	योग
9	43	1

1. छन्दोमंजरी, 2/10
2. छन्दोमंजरी, 2/5
3. रघुवीरचरितम, 9/43

·13 95 1

योग 2

10. प्रग्विणी

लक्षण–

''कीर्ति तैषा चतुरेफिका प्रग्विणी।''[1]

यह समवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार रगण होते हैं। इसमें 12 वर्ण होते हैं। इसका प्रयोग काव्य में 13/94 मेरे एक बार है।

1.1 प्रहर्षिणी

लक्षण–

त्रयाशाभिर्भनजरणाः प्रहर्षणीयम्''[2]

छन्द में प्रत्येक पाद में मगण, नगण, जगण, रगण तथा गुरू के क्रम से 13 वर्ण होते हैं। तीन और दश पर यति। यह समवृत्त छन्द है। सर्गानुसार 1/65 तथा 9/24 का प्रयोग हे।

12. पुष्पिताग्रा

लक्षण–

''अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजिचन जौ जरगाश्व पुष्पिताग्रा''[3]

यह अर्द्धसमवृत्त है। इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण तथा यगण होता है। दूसरे तथा चौथे चरण में नगण, जगण, रगण गुरू होता है।

---

1. छन्दोमंजरी, 68
2. छन्दोमंजरी, 68
3. छन्दोमंजरी, 3/5

समन्वय–

"तस्मिन् कोल कालनामस्य सूनु, विर्दयुजिज्जह्यः कोऽपि मारीचशिष्यः।
सम्मोहार्थ सर्वशाखामृगांड.।, मायावन्थुर्मावयामास मायाम।।"[1]

सर्गानुसार–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
नवम	14, 17, 24	3
एकादश	49	1
त्रयोदश	101, 104	2
पंचदश	91	1
	योग	7

13. मंजुभाषिणी

लक्षण–

"सजसा जगौभवति मन्जुभाषिणी।"[2]

यह समवृत्त है। इसके प्रत्येक पाद में 13 वर्ण होते हैं। सगण, जगण गुरू का प्रयोग प्रत्येक पद्य में आता है। इसका प्रयोग केवल सर्ग 9/37 में है।

14. मत्तमयूर

लक्षण–

वेदैरन्ध्रैर्म्तौयसगा मत्तमयूरम्।"[3]

यह समवृत्त है। इसमें 13 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण में चौथे तथा नवें

---

1. रघुवीरचरितम, 15/24
2. वृत्तरत्नाकर, 3/74
3. वृत्तरत्नाकर, 3/72

वर्ण पर यति होता है। इसमें मगण, तगण, यगण, सगण तथा एक गुरू होता है।

इसका केवल एक बार 9/37 मे काव्य में प्रयोग है।

15. वसन्तलतिका

लक्षण–

"उक्ता वसन्त तिलकातमजा जगौगः।।[1]

इसके प्रत्येक चरण में तगण, मगण, दो जगण तथा दो गुरू होते हैं। प्रत्येक चरण में 14 वर्ण होते हैं। यह समवृत्त है

समन्वय–

त्वं ब्रह्मणश्शिवतिरभूः किल पूर्वकाले, त्वामाश्रितस्तपनसूर्रवायलक्ष्मीम्।
भामप्यगेन्द्रा घटयप्रिययार्तिमाजा, मम्युन्नतात्रयगुणः खलुकाम धेनुः।।"[2]

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
नवम्	12, 16, 19, 27, 26	5
त्रयोदश	91, 92, 99	3
सप्तदश	73 से 108	33
	योग	44

16. मालिनी

लक्षण–

"ननमयययुते यं मालिनी भोगिलोकैः।"[3]

1. वृत्तरत्नाकर, 3/79
2. रघुवीरचरितम, 9/12
3. वृत्तरत्नाकर, 3/87

प्रत्येक पद में नगण, नगण, मगण, यगण का क्रमशः प्रयोग रहता है। इसमें आइ एवं सात वर्णो पर यति (विराम) होता है। यह 15 वर्णो का समवृत्त छन्द है।

समन्वय–

"इतिनियमविधानेष्व प्रमतस्य तस्य, प्रसमभि षिकुमारैराहृताम्यर्हणस्य।
अनुदिव संमगस्त्यग्रातु रादेशभाजो, दशदशरथ सूनोस्तत्र वर्षाण्यतीयुः।।"[1]

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
नवम्	20, 33, 94	3
दशम्	118	1
त्रयोदश	110	1
सप्तदश	96 से 108	13
	योग	18

17. प्रमाणिका

लक्षण–

"प्रमाणिका जरौ लगौ।"[2]

यह समवृत्त है। इसके एक चरण में आठ वर्ण होते हैं, जगण, रगण 1 लघु 1 गुरू। इसका प्रयोग सर्ग 8/140, सर्ग 13/96 तथा चतुर्थ 94 में।

1. रघुवीरचरितम्, 4/64
2. वृत्तरत्नाकर, 3/17

18. शिखरिणी

लक्षण–

"रसैरूद्रैश्छिन्नायमन समलागः शिखरिणी।"[1]

यह समवृत्त है। 17 वर्णो का छन्द है। इसमें 6 और 11 वर्णो पर यति होता है। यगण, मगण, नगण, सगण, मगण 1 लघु 1 गुरू का प्रयोग होता है। काव्य के सर्ग 8/141, 9/23, 28, 11/51 त्रयोदश 105, 14/39, 158, 16/91 में प्रयुक्त है।

19. मन्दाक्रान्ता

लक्षण–

"मन्दाक्रान्ताजलधिषऽगैम्भौनतोतादरू चेत।"[2]

यह समवृत्त वर्णिक छन्द है। 17 वर्णो का छन्द है। इसमें चार, छः तथा सात वर्णो पर यति होती है इसमें मगण, मगण, नगण, तगण, तगण दो गुरू होते हैं। काव्य में सर्ग 8/143 सर्ग 1/41, 8/143 में प्रयोग है।

20. पृथिवी

लक्षण–

"जसौजसैयला वसुग्रह यतिश्वपृथ्वीगुरूः।"[3]

इसके प्रत्येक पाद में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण लघु गुरू का प्रयोग क्रमशः होता है। सत्रह वर्णो का छन्द तथा इसमें आठ तथा नव वर्णो पर यति होती है। यह समवृत्त है। इसका प्रयोग काव्य के 4/89, 1/89, 3/89, 4/93, 6/72 सर्गो के श्लोकों में है।

---

1. वृत्तरत्नाकर, 3/93
2. वृत्तरत्नाकर, 3/97
3. वृत्तरत्नाकर, 3/94

2.1 नर्कुटम्

लक्षण–

ह्यदशाभिर्ण जौ मजलागुरूनर्कुटकम्।।"[1]

यह समवृत्त है। 17 वर्णो का छन्द है। इसमें 7 तथा 10 वर्ण पर यति होता है। इसमें नगण, जगण, मगण, जगण, जगण 1 लघु तथा 1 गुरू होता है। इसका प्रयोग केवल सर्ग 1/32 में हुआ है।

22. गीतिः

लक्षण–

आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपिललक्षणं भज्ञवेदुमयोः।
दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान्तुजङेशः।।[2]

यह मात्रा छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरण में 12 मात्रा, द्वितीय में 18 एवं चतुर्थ 15 मात्रा होती है, लेकिन यदि प्रथम तथा तृतीय चरण में 12–12 मात्रा तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 18–18 मात्रा हो तो वह गीति छन्द ही है।

समन्वय–

तदनुकपीनां नेतापर्याप्त मनोरथः पुरीं गत्त्वा।
भेजे भोगान् द्विव्यान् काकुत्स्थाज्ञादृढ़दघत स्वान्ते।।[3]

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
नवम्	13, 25, 44	3

1. वृत्तरत्नाकर, 2/98
2. वृत्तरत्नाकर, 2/8
3. रघुवीरचरितम् , 8/143

त्रयोदश	107, 108	2
	योग	5

2.3 शार्दूलविक्रीडितम्

लक्षण–

"सूर्याश्वैर्यदिभः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।"[1]

समवृत्त हैं। इसमें 18 वर्ण प्रत्येक पद में होते है, 112 वें तथा 7वें वर्ण पर यति होता है। इसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण तथा एक गुरू होता है।

समन्वय–

"प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सहचरीसीता क्वते वर्तते।
श्यामा मां मुकुलैरियं पुलकितागाढं समालिगंति।
क्षोणोऽस्यस्मिकृतार्थ तामुपगतः पश्यावयोरन्तरं।
हन्तेत्थं सहकार एषसहति स्मेरप्रसूनोद्भवैः।।[2]

सर्गानुसार विवेचन–

सर्ग	श्लोक संख्या	योग
9	18, 30, 40, 42	4
13	103, 111	2
17	109	1
	योग	7

1. छन्दोमंजरी, 2/3
2. रघुवीरचरितम, 9/15

2.4 स्रग्धरा

लक्षण–

भ्रम्नैर्यानां त्रयेत्रिमुनियतियुतास्रग्धराकीर्ति तेयम।"[1]

समवृत्त है। प्रत्येक चरण में 21 वर्ण होते हैं। हर 7–7 वर्ण पर यति होता है। इसमें मगण, मगण, मगण, रगण, नगण तथा तीन यगण होता है। इसका प्रयोग काव्य में केवल 1/27 में है।

2.5 वियोगिनी

लक्षण–

"विषमे ससजा समेगुय समरालोऽथगुरू वियोगिनी।"[2]

यह अद्धसमवृत्त है। इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में सगण, सगण, रगण एक गुरू तथा दूसरे व चौथे चरण में सगण, मगण, रगण लघु गुरू होते हैं।

समन्वय–

"अथदाशरधिस्तथाविधैयतितेरक्षसि रक्षतां वरः।
विमृशन् किमपि प्रियां प्रति प्रचुर श्रानित ततो न्यर्वर्तत्।।"[3]

इस तरह महाकवि ने 'रघुवीरचरितम्' के मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णिक छन्द में सम तथा अर्द्धसम का प्रयोग किया है।

रस

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं"[4]

---

1. वृत्तरत्नाकर, 3/104
2. वृत्तरत्नाकर, 3/104
3. रघुवीरचरितम् , 7/1
4. साहित्य दर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ0 14

तादाम्य स्थापित करती है तो उस संस्थिति ाके रसाभिव्यक्ति की संज्ञा दी जाती है।

ध्वनि

काव्यं ध्वनिगुणीभूतव्यंग्यं चेति द्विधा मतम्।
वाच्यातिशयिनी व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्।।[1]

"वाच्यादधिक चमत्कारिणीव्यंग्यार्थे ध्वन्यतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या ध्वनिर्नामोत्तमं काव्यम्।"

काव्य दो प्रकार के होते हैं। एक ध्वनि, दूसरा गुणीभूत व्यंग्य। ध्वनि पद में जब अधिकरणाधिक प्रत्यय मानते है तो 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः, यह उत्तम काव्य कावाचक होता है ओर करणप्रधान मानने पर 'ध्वन्यतेऽनयेति ध्वनिः", व्यंजनाशक्ति का बोधक होता है एवं भाव प्रधान मानने पर 'ध्वननं ध्वनि;' रसादि की प्रतीती का तथा कर्म प्रधन 'ध्वन्यते इतिध्वनिः— रसादि व्यंग्य का वाचक होता है।

जिस काव्य में व्यंग्य अर्थ वाच्य अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कार हो उसे 'ध्वनि' कहते हैं। वह उत्तम काव्य है। यहाँ ध्वनि, पद अधिकरण प्रधान है।

ध्वनि के दो भेद होते हैं— प्रथम 'अविवक्षितवाच्य' और द्वितीय, 'विवक्षितान्यपरवाच्यं।'

ध्वनिमत रस—मत का विस्तृतीकरण है। यह रस कभी वाच्य नहीं होता, प्रस्युत व्यंग्य ही हुआ करता है। इस विचारधारा को अग्रसर कर आनन्द—वर्धन ने व्यंग्य को ही काव्य में प्रधान माना है। 'वैयाकरण स्फोटरूप

---

1. साहित्य दर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ0 129

मुख्य अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाले शबद के लिए 'ध्वनि' का प्रयोग करता है। "अलंकारिकों ने इसी साम्य पर 'ध्वनि' शब्द का योग कर इसका अर्थ विस्तृत तथा व्यापक बना दिया। इस मत के आद्य आचार्य 'आनन्दवर्धन' ने युक्तियों के सहारे व्यंग की सत्ता वाच्य से पृथक सिद्ध की और 'मम्मट' ने तो इसकी बड़ी ही शास्त्रीय व्यवस्था कर दी।"[1]

"आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि के तीन मुख्य भेद हैं– रस, वस्तु अैर अलंकार और इनके भी अनेक प्रकार हैं।"[2]

"अलंकार के इतिहास में 'ध्वनि' की कल्पना बड़ी सूक्ष्म बुद्धि की परिचायिका है। महाकवि गाइजन की उक्ति–

"Where more is meant than meets the ear."

ध्वनि की ही प्रकारान्तर से सूचना है। ध्वनिवादी सिद्धान्तों के व्यवस्थापक दीख पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी पद्धति के अनुसार गुण, दोष, रस, रीति आदि समस्त काव्य तत्त्वों की सुन्दर सन्तुलित व्यवस्था कर दी है।'[3]

इस प्रकार रस तथा ध्वनि एकाकार है। एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं हो सकता । आठों रस ध्वन्यात्मक होते हैं।

"रघुवीरचरितम्' रस तथा ध्वनि से परिपूर्ण महाकाव्य है। हास, विलास, उल्लांस, क्रोध, रोष, भय, प्रेम, ओज, उत्तेजन, शोक, विरह, दुःख, ग्लानि, घृण, राग, अनुराग, करूण, स्पृहा, रति, काम आदि लक्षणात्म भानुप्रेरण स्थलानुसार तथा समयानुसार परिलक्षित हैं। ये भावात्मक स्थितियाँ काव्य में

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 617– आचार्य बलदेव उपध्याय।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 617– आचार्य बलदेव उपध्याय।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 617– आचार्य बलदेव उपध्याय।

कहीं सबल, कहीं निर्बल तो कहीं सामान्य रूप में प्रकट होती है जोकि रस के विविध आयामों में रसलीन हैं कवि का रसामास, भाव, भावामास, भावोदय, भावसन्धि तथा भाव सबलता आदि का प्रकटन रसात्मकता तथा ध्वनि की अद्भूत प्रस्तुति है।

महाकाव्य में सभी रसों का परिपाक कथा, कथाधर्म, कथासूत्र एवं कथाचरित के वाह्य–अभ्यान्तरिक क्रियाओं , चिन्तन के गहनतम् संवेगों में महाकवि ने रसमय ध्वनि में किया है। भाषा भाव की अनुगामिनी होती है और हमारा कवि भाव–जगत अद्वितीय पुरोधा है जिसमें महाकाव्य एक अभिनव रस की पीयुषधारा से एवं अत्यन्त रसलीनता से देवत्व की प्रतिष्ठा की है। जिसके हेतु वह अभिनन्दनीय है।

आचार्य मम्मट द्वारा परिगणित रसों के ही क्रम महाकवि मल्लिनाथ की रसयोजना में है। महाकाव्य में रसपरिणिति प्रस्तुत किया जा रहा है। कहीं रसातिशयता की स्थिति है तो कहीं रसामास मात्र की, परन्तु रस क्षमता के स्थल कथमपि नहीं मिलते। ध्वनि के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है।

श्रृंगार रस

साहित्यदर्पणकार ने इस रस की परिभाषा दिया है जो इस प्रकार है–

"श्रृंग हिन्मथोद्रमे दस्तदागमनहेतुकः उत्तम प्रकृति प्रायोरसः श्रृंगारइष्तो।"[1]

मोमराज ने आस्वादनीयता की दृष्टि से श्रृंगार रस को ही एकमात्र स्वीकारा है। उनके मत में हास्यादि में सन्वेदनात्मक रस वर्वणा की स्थिति न के समान होती है।

श्रृंगार भवेरसानाद्रस मामनाः"[2]

---

1. साहित्य दर्पण
2. श्रृंगार प्रकाशः मोजराज

श्रृंगार रस में वस्तुतः मानवहृदय की कोमलाति कोमल भावों की रूपायन क्षमता, स्त्री–पुरूष की प्रकृति, रागानुराग तथा दोनों के हृदय की एकात्मकता का प्रकटीकरण होता है। "श्रृंगार दो स्थिति में अभिव्यक्त हुआ करता है– सम्भोग तथा विप्रलम्भ" जैसा कि काव्य प्रकाश में उल्लिखित है–

"श्रृंगारस्य द्वौ भेदौ– सम्भोगोविप्रलम्भश्वन"[1]

प्रथम में नायक–नायिका के परस्पर दर्शन, आलिंगन अधरपान तथा चुम्बन् आदि सहायक होते हैं। इसके विपरीत की स्थिति इस स्वरूप विप्रलम्भ की प्रतीति कराते हैं। 'रघुवीरचरितम्' में श्रृंगार रस के दोनों रूप स्थित है। सम्भोग श्रृंगार रूप रस में नायक–नायिका का पारस्परिक रति स्थायीभाव अबाधित रूप में पूर्णतः प्रस्फुटित होकर परमभोग की निर्भय स्थिति में पहुँच जाने से है तथा नायक–नायिका के तद्धावित प्रेम–सम्भीलन की तन्मयता जनित रसाभिव्यक्ति (रति–चर्वण) से सहृदय सामाजिक तादात्म्यभाव की निभग्नता से भी है। इस अर्थ में रघुवीर के अद्वितीय सुखोपभोगावस्था का कल्पित आनन्द विवर्णित है जो 'रघुवीरचरितम्' के सर्ग 4 के 34वें श्लोक में रसामृत का पान कराने में सक्षम है– "मूर्छलीति समये तथा विधे राघवस्य तरूवल्क वाससः।

शतिशान्तिरूंदयादिभूयसा जानकीकुचसरोरूहोष्याणा।।"[2]

"अलिवृन्द के गुंजन से सनाथ सुविकसित कमल समूह, पंचम स्वर में कूजित कोकिल–स्वर द्वारा मुखरित रम्य वनभैरव। सूर्य अस्ताचल को गभित। सान्ध्यकाल अवतरित इस प्रकार दिवसावसान होने पर बल्कलधारी रघुवीर को शीत से शान्ति–लाभ की सहायिका एकमात्र जानकी के कूचों की

1. काव्य प्रकाश, 4 उल्लास, 29 कारिका
2. रघुवीरचरितम् 4/34

उष्णता वन सकी। कितनी दिव्य रसमय पवित्र स्थिति है। जिसमें श्रृंगार का उद्धत आवेष्टन है तथा स्पर्श की ध्वनि भी है।

विप्रलम्भ श्रृंगार

'रघुवीरचरितम्' में नायक का विप्रलम्भ अधिक संवेदनशील प्रस्तुत है। वसन्त आदि ऋतुओं का अवतरण अवसर से रघुवीर को प्रिया सीता के सम्भोगजनित सुखोंपभोगावस्था के स्मरण और उनके हावभावों के अनुचिन्तन के हेतु प्रस्तुति है। दूसरी ओर नायिका सीता के लिए रतिभावोदीपक अल्पमात्र में सुलभ हुआ। फिर भी ऐसा उन सुलभ क्षणों का स्मरण उनकी हृदतन्त्री में भंकृत होता है। प्रकृति का रसयुक्त वातावरण सीता–वियुक्त रघुवीर के हृदय को अतिशय क्लान्त करने लगा जैसा कि सर्ग 9 के 15वें श्लोक में व्यक्त है–

प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सहचरी सीता क्व ते वर्तते
श्यामा मां मुकुलैरियं पुलकिता गादं सभालिंकति।
क्षीणोऽस्यास्भि कृतार्थतामुपगतः पश्यावयोरन्तरं
हन्तेत्थं सहकार एष हसति स्मेर प्रसूनोद्रमैः।।[1]

"प्राणों से भी अधिक प्रिय सहचरी सीता तुम कहाँ हो? देखो न विकास को प्राप्त श्यामा समलिगन कर रही है मैं उससे उपकृत हो– होकर क्षीण होता जा रहा हूँ। सीता के वियोग में राम उनके विभिन्न हावभावों का स्मरण करने लगते हैं और कभी आलिंगनावसर पर सुखोपभोग सम्भार जुटाने वाली सीता के कुचों, उस, बाहु आदि का स्मरण करते हुए विह्ल हो उनको उरू, बाहु आदि का स्मरण करते हुए विह्ल हो उनका उपालम्भ सा देने लगते हैं जैसा कि सर्ग सप्तम् के 29, 31 व 33 श्लोकों में श्रृंगार रस

1. रघुवीरचरितम् 9/15

तथा साथ ही साथ ध्वनि का बोध परिलक्षित होता है–

शिथिलीकृतमौक्तिकस्मया रूचिरादन्ततिः शुचिस्मिते।
कुत्रपत्रल्ताकपोल योर्युगली दर्पणदर्पहारिणी।।
जित हेमल्ला भुजद्वयी गलरीतिर्घृ लकम्बुडम्रा।
समवृत्तसमुन्नतौ स्तनौ कृतमुक्ताभाणिहारभूषणौ।।[1]

"सीता के मधुर मुस्कान के समय उनकी दन्तावली की सुषमा, कपोलों की कमनीयता, स्वर्णलता सी बाहुएं, शंक, सदृश ग्रीवा, समुन्नत स्तन आदि के स्मरण से राम का हृदय प्रगाढ़ होता जा रहा है।

अन्तः श्रृंगार रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हैं जिसमें ध्वनि भी है। तीव्र गति वायु से आन्दोलित बादल जलधारा का वर्षण कर रहे हैं। ऐसा मधुमदिर पावसकाल रघुवीर के हृदय को विदीर्ण कर रहा है। वे कहते हैं कि –"वैदेही वियोग ताप से जर्जर मेरां हृदय छिन्दा जा रहा है, शरीर के सभी अंग बाध ा जा रहे हैं। यह काम सुहृद मेरे एक–एक मर्भस्थल को आधातित करने लगता है। हे चंलन यने! मैथिली। आओ देखो तो धनावली भी रति व्यापार करने लगी है।"[2]

उक्त श्लोक में कितनी सहज, गर्भस्पर्शी श्रृंगार भावों की अभिव्यक्ति है। आलिंगन पाथेय का आकांक्षी रघुवीर का हृदय कितना परितप्त है–

अमृतद्रवपूर्ण हेम कुम्भप्रतिर्मलेनमुहुः स्तनद्वयेन।
मदिराक्षि! ममोरसि प्ररूढंमनसस्तापनिहार्हसि प्रभार्ष्टुम्।।[3]

---

1. रघुवीरचरितम् 7/29 ; 31
2. रघुवीरचरितम् 9/31
3. रघुवीरचरितम् 9/32

"हे मदिरनेत्रे! मेरे हृदय में (तुम्हारे वियोग के कारण) गहरायेताप के निवारणार्थ अमृतरस पूर्ण सुवण्र घट सदृश अपने दोनों स्तनों (आलिंगन) से एकमात्र तुम ही समर्थ हो। अन्य कोई भी साधन इस ताप को शान्त नहीं कर सकता।"

इस स्थल पर श्रृंगार भावों को अंकरित हो उठने का अवसर समुपस्थित होता है।

इसके अतिरिक्त सर्ग 7 के 33, 17, 18, 21 तथा 22 आदि श्लोकों में कवि श्रृंगार रस की सुन्दर विवेचना की है।

हास्य रस

'रघुवीरचरितम्' में हास्य रस का सुन्दर उल्लेख है। शूर्पणंखा के रूप में चित्रण में कवि ने जो रचना सृष्टि की है उसमें श्रृंगार, हास्य, वीभत्स तथा भयानक रसों को एक साथ समागर्भित है। श्रृंगार इसलिए कि वह श्रृंगार युक्त होकर राम के रूप पर आसक्त होकर रागानुराग द्योतक हाव–भावों का प्रदर्शन करती है।

उसके खड़े–खड़े बाल उल्का समान जलते हुए नेत्र भयानक रस का आभास कराते है।। चिपटी नाक तुन्दिल पेट, श्रृंगली सी बोली बोलने वाली, ताड़ वृक्ष के समान लम्बे–लम्बे कठोर अंग, जटा आदि हास्य रस के परिचायक है। महाकाव्य में हास्य रस का वर्णन कम ही है। यह केवल काव्य के सर्ग 4/37 तथा 38 श्लोकों में प्रयुक्त है। साथ ही हास्य ध्वनि का भी प्रयोग है।

करूण रस

वह भाव जिससे करूणा की प्रवृत्ति परिलक्षित हो उसे करूण रस की संज्ञा दी जाती है। साहित्यदर्पणानुसार–

"करूणदावपि रसे जायते यत्परं सुखं।"[1]

करूण रस का चित्रण कई स्थलों पर किया गया है। सीता अपहरण के पश्चात् पर्णकुटी पहुँचने पर , कुटी को सीता से शून्य देखकर राम विलाप करने लगते हैं। वह एक–एक वस्तु से प्रिया–प्राप्ति की प्रार्थना करने लगते हैं। विलपते हुए देवों से भी प्रिया–अन्वेषण की प्रार्थना करते है। राम के इस प्रकार करूणा–विगलित, आर्तभाव से विलपने से वन प्रान्तर भी करूण भावभावित हो उठता है–

"इस रूप में अपने ही समीप विलपते राम के दुःख से सहानुभूति रखते हुए वन देवता तक जैसे धीरज छोड़चुके तथा भ्रमरदल गुंजन याज से मुखर हो रूदन करने लगे।"[2]

"सीता का अपहरण कर रावण द्वारा लिए जाते देख, उनके दीन वचनों को सुनकर, कमल–रूपी मुख को म्लान करके वन देवों द्वारा रूदन प्रारम्भ हो गया। धरती काँप उठी,, जल कलुषमय हो गये, वायु की गति स्तम्भित हो गयी।"[3] समस्त वातावरण करूण भाव से अनुरक्त हो उठा।

अशोक वाटिका में सीता के त्रास, लास तथा हास द्वारा स्ववश करने की इच्छा से अनेक राक्षस स्त्रियों से घिरे हुए रावण आया ओर वह असफल होकर वापस चला गया। उसके पश्चात् सीता का करूण विलाप अतिशय सीमा लांघ गया। "वह करूण विलंपन कानों तक को विध्वंश करने वाला था, उस विषम परिस्थिति में हनुमान जलदरहित नभ से जलवृष्टि सदृश

1. साहित्य दर्पण पृ0 53
2. रघुवीरचरितम् 7/42
3. रघुवीरचरितम् 6/70–71

विश्वासभाजन प्रतीत हुए।"[1]

सर्ग 13 के 109वें श्लोक करूण रस तथा ध्वनि का उत्तम उल्लेख मिलता है–

निःष्वसिति स्म सरोद शुशोच च
विललाप त्वां स्मारम्।
अंग कमग कमन यच्चैतत्
पर्यष्वजत चलब्धानन्दम्।।[2]

"विरह–विष रूपी ज्वाला अपनी शिखा (लौ) से सीता के प्राणों को चाट सी गयी थी। राम द्वारा प्रेषित अभिज्ञान ने अमृत–स्वरूप प्रकट होकर, जाते हुए प्राणों को स्थिर कर दिया। उस अभिज्ञान से सीता ने प्रत्येक अंग का आलिंगन अनेक बार सोच–विचार किया। प्रिय की कोई वस्तु पाकर शोक सन्तप्त हृदय को निश्चित ही दुःख नवीन हो जाता है। यहाँ करूण रस की प्राप्ति ध्वन्यात्मक है।

युद्ध के अनन्तर कालनेभि भायावी राक्षस "माया बल से कपिसमूह को हतोत्साहित करने में प्रवृत्त हुआ, यहाँ तक कि भायानिर्मित रघुवीर को सीता के समक्ष दिखाकर उनके हृदय को व्यथित किया, उस समय करूण रस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जब सीता प्राण त्याग का उपक्रम करने को प्रवृत्त हो जाती है।"[3]

यहाँ करूण रस की ध्वनि संयुक्त चरम परिणति प्राणत्याग का उपक्रम

---

1. रघुवीरचरितम् 13/61
2. रघुवीरचरितम् 13/109
3. रघुवीरचरितम् 15/32

है।

महाकाव्य के सर्ग 14 के 34, 36 तथा 45वें श्लोक में ध्वनि के साथ करूण रस का हृदय द्राविक अंकन है–

"जैसे राक्षसी सेना तथा वानर सेना का युद्ध तथा चित्कार, मेघनाद तथा लक्ष्मण का हंकारी संग्राम, मेघनाद के निधन से समस्त लंका नगरी का शोक निभग्न होना, लंका नगरी में निशिचर रमणियों के विलाय स्वर जोर–जोर से सुनायी पड़ने लगी। स्त्री–पुरूषण, बाल, वृद्ध सबका समवेतक्रन्दन चारों ओर व्याप्त हो गया। पुत्र निधन से आर्त सन्तप्त मन्दोदरी आदि राजरमणियाँ रूदन करने लगी।"[1]

"सर्वाधिक प्रिय वस्तु, तथा जन का वियोग मानव को विक्षिप्त सा कर देता है। सुर–असुर सभी को पराजित करने वाले पुत्र मेघनाद का इस रूप में मारा जाना सुनकर रावण विलाप करने लगा। वह विवेक शून्य हो गया तथा इस स्थिति में मैथिली (सीता) को मारने का उपक्रम करने लगा।"[2]

इसके अतिरिक्त काव्य के सर्ग 4/37–38 तथा 7/17–39 तथा 40 में करूण रस तथा ध्वनि का सुन्दर चित्रण किया गया है।

रौद्र रस

'रघुवीरचरितम्' में रौद्र रस प्रस्फुटन की स्थितियां खरदूषण–राम युद्ध, लंका में हनुमान–निशचर युद्ध तथा राम–रावण युद्ध के अनन्तर रौद्र रस की व्याप्ति है जिसका अंकन महाकवि ने पटुता से किया है जिसका उल्लेख काव्य के सर्ग 5/5–6,20, 11/10–11, 13/79, 15/17, 13, 14 तथा 70–73 में किया गया है।

---

1. रघुवीरचरितम् 16/34, 36, 45
2. रघुवीरचरितम् 16/39

शूर्पणखा अपनी दुर्दशा का वृतान्त खर–दूषण के समक्ष वर्णित करती है जिसे सुनकर खरदूषण क्रोधभिभूत हो उठता है। कोपानल से आसक्त उसके नेत्रों स चिगारियाँ छिटकन लगीं। क्रोधाभिभूत उस समय वे पशुपति (शंकर) का साक्षात् रूप धारण कर रहे थे।"[1]

"पुनः उसका स्वरूप कवि प्रलयकालीन बज्रयुक्त बादलों के भीषण घोष करने वाल निरूपित करता है। रोषतिरेक में जैसे सर्प फन फैलाकर फुफकारे उसी रूप में वह चराचर का विनाश सा करने के लिए बाहु में धनुष लटकाये भीषण घोष करने लगा।"[2] यह श्लोक ध्वन्यात्क रौद्र रस का द्योतक है।

"खर–दूषण की विशाल सेना जब राम से युद्ध के लिए प्रास्थित हुई तो सैनिकों के पदाघात द्वारा उठी धूल के कारण सारा आकाश अन्धकारमय हो उठा। यह देख ओर निशिचर सैन्य का अनुमान करके रघुवीर की दृष्टि धनुष की ओर उठ गयी।"[3]

'इसके अतिरिक्त हनुमान द्वारा समुद्ध लंकन उपक्रम के समय उनके स्वरूप तथा क्रिया चेष्टाओं में भी रौद्र रस के भावों की प्रतीति होती है।"[4]

उस समय भी रौद्र रस तथा ध्वनि की प्रतिध्वनि होती है, जब सुग्रीव रावण को पकड़कर उपस्थित और उपमानित करता है।

उस समय भी रौद्र रूप में जब राम समुद्र लंघन के लिए कुशासन पर आसीन हो गये, जैसा कि सर्ग 15 के 70–73 श्लोकों में कवि ने अंकित

---

1. रघुवीरचरितम् 5/5
2. रघुवीरचरितम् 5/6
3. रघुवीरचरितम् 5/20
4. रघुवीरचरितम् 11/10–11

किया है–

वीरवसन फलमूल भोजन के कारण कृशगात रघुवीर ने सीता वियोगाग्नि से संतप्त कपिदल को देखते हुए जो परस्पर एक–दूसरे के मुख पर आँख गड़ाये थे, समुद्र के प्रति रोषाभिभूत थे, उसको दण्ड देने की प्रतिज्ञा कर ली और लक्ष्मण द्वारा तैयार किये गये कुशासन पर प्रजानाथ रघुवीर रूद्र के से रूप में कुशासन पर आसीन हो गये।[1] यह भी भयंकर रौद्ररस की शान्त ध्वन्यात्मकता है।

ई प्रकार "दुत के मुख से कपिदल नगरी को आक्रान्त सुनकर रोषाधिक्य से अत्याधिक रक्तवदन रावण ने त्रिभुवन विजय दर्पसनाथ वीरों को युद्ध के लिए नियुक्त कर दिया, एवं प्रलयकालीन मेघ सदृश, गज, रथ, अश्व आदि से युक्त निशिचर सैन्य उभड़ पड़ा।"[2]

"सुग्रीव द्वारा रावण को अपमानित देखकर राक्षस दल ने हाहाकार से दिशाओं को बधिर कर दिया। ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त वरदान के प्रभाव से बली इन्द्रजीत (मेघनाद) क्रोध से अभिभूत हो उठा।[3]

उपर्युक्त श्लोक में ध्वन्यात्मक रौद्र रस का उत्तम संरचार महाकवि ने किया है, जिसमें रौद्र रस तथा ध्वनि की चरम परिणीति है।

वीर रस

जिस रस से वीरता तथा शौर्य का प्रदर्शन हो उसे वीर रस की संज्ञा दी जाती है। दशानन की स्वर्णनगरी लंका में हाहाकार मच गया जब जानकी के खोज में हनुमान वहाँ प्रविष्ट हुआ। अशोक वाटिका के वृक्षों को उखाड़ कर राक्षस–राक्षसियों को मारने लगे। उनकी भीषण गर्जना से आतंक

1. रघुवीरचरितम् 15/70–73
2. रघुवीरचरितम् 15/13,14
3. रघुवीरचरितम् 13/68

व्याप्त हो गया। जिसकी सूचना से दुतों ने दशानन को अवगत कराया। हनुमान के इस उपक्रम से उनकी शौर्य तथा वीरता का दिग्दर्शन होता है। रक्षक दशानन से कहते हैं कि, "पशुपति (शंकर) को घोर तपस्या करके सन्तुष्ट किया, उनके अधिष्ठान कैलाश पर्वत को तौल डाला (बाहुओं पर धारण कर लिया), त्रिलोक के देवों को अधिकार भ्रष्ट कर डाला, वह सारा का सारा तुम्हारा यश शौर्य एक कपि द्वारा नष्ट हो रहा है।"[1]

उपर्युक्त श्लोक मे हनुमान के उत्साह, शौर्य और पराक्रम से जनित वीररस फूट पड़ता है। इसी प्रकार जब हनुमान समग्र लंकापुरी का एक–एक छोर, वन, उपवन, बीथिका आदि देख लेने पर भी कहीं सीता की झलक न पा सके उस समय का उनका यह हृदयोद्गार असीम उत्साह से परिपूर्ण है, जो वीर रस की सर्जना है।

सदल बल से राम समुद्र पार कर चुके। वानर सेना लंकापुरी को ध्वस्त करने की अभिलाषा करने लगी, जिसका अभिवर्णन महाकाव्य के सर्ग 15 के 2 तथा 7 श्लोकों में किया।

"वानर गण अपने–अपने हाथों में उखाड़े हुए पर्वतों के विशाल शिला खण्ड धारण किये हुए हैं और हर्षित होकर किलकारियाँ मार रहे हैं। कपिगण पूँछ को शिथिल कर, हाथ को सिकोड़े, गर्दन को उठाकर; काम को सावधान किये चारों ओर सिर घुमा–घुमा कर विपक्षी राक्षसों के कार्य–कलाप को देख रहे थे तथा उनकी बातों को सुन रहे थे।"[2]

---

1. रघुवीरचरितम् 12/34–35
2. रघुवीरचरितम् 15/2,7

वे उपवन के ध्वस्त करने लगे, भवनों तथा अन्तःपुरी को नष्ट करने लगे। वृक्षों को उखाड़–उखाड़ कर राक्षसों को मारने लगे तथा रणभूमि मे शौर्य प्रदर्शन के लिए अत्यन्त उतावले थे। यहाँ वीर रस तथा ध्वनि की सुन्द परिकल्पना है।

राम–रावण युद्ध वीररस का शिखर है, जो काव्य के सर्ग 15 श्लोक 77 में निम्न प्रकार अंकित है–

जहाँ–रावण अपनी बहु–बाहुओं द्वारा वाण–वर्षा कर रहा है, वहीं रघुवीर दो हाथों से वाण–वर्षा कर उसका प्रतिरोध कर रहे हैं।''1

इस श्लोक में कराम का विराट वीर रूप उपस्थित है। इसके अतिरिक्त 15/18, 19, 22, 70 श्लोकों में कवि ने वीर–रस का सुन्दर चित्रण किया है।

भयानक रस

मानव की भयानक प्रवृत्ति का प्रतीक भय से आक्रान्त भयानक रस की सृष्टि होती है। ''रघुवीरचरितम्' में भयानक रस का अंकन कवि ने 'कुशलतापूर्वक किया है। भयानक रस की स्थिति समुद्र तट पर राम के द्वारा अमर्ष प्रकरण में , मेघनाद द्वारा प्रदर्शित माया युद्ध कौशल मे विशेष रूप से प्रतीति होती है। जैसा कि इस काव्य के सर्ग 14/74, 76 में अभिव्यक्त है–

''सिन्धु–तीर पर अपनी सेना सहित संतरण हेतु प्रतिक्षा रत रघुवीर का धीरज शिथिल हो गया। क्षुब्ध हृदय अन्ततः वह रूद्र सदृश सागर पर रूष्ट हुए तो गिरि–शिखर खण्ड–खण्ड होने लगे, दिशायें धूल से आच्छादित हो गयी। प्रचण्ड़ हवा के चलते सम्पूर्ण जगत विक्षुब्ध हो उठा, नभस्थल सांध यकालीन पिंगल वर्ण हो गया। चारों ओर धूम्रं व्याप्त हो गया, सूर्य की किरणें भी क्षुब्ध होकर श्रृंगाल मोह का चारा उगलते हुए हुंकार मार–मार पश्चिम

---

1. रघुवीरचरितम् 15/77

दिशा की ओर पलायित होते हुए सारे लोक को मानो विपदागम की सूचना देने लगे।"[1]

इससे सुन्दर भयानक रस स्थल विरला ही मिलेगा। इसी प्रकार राक्षसी तथा वानरी सेना के युद्ध में जब विद्युज्जिह नामक राक्षस के माया विस्तार की स्थिति भी भयानक रस की सुन्दर अवतारणा है– "तब सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी, नभ का ओर–छोर विस्तार धूम्राच्छादित हो उठा। अंगारों की अनवरत वर्षा, भयंकर रूपधरे राक्षसिनियों, नग्नदेह शोणित, सिक्त , खुले दन्तों से अट्टहास करती हुई आकाश में नाचते लगी।"[2]

उक्त श्लोक में भयानक रस के साथ–साथ उससे सम्बन्धित ध्वनि की स्पष्टता है।

विभीषण युद्ध भूमि में अवतरित होकर रावण के अनेक वीरों का संहार करता है, जिसके कारण मेघनाद क्रोधाग्नि में जलता हुआ रथ पर आरूढ़ होकर अत्यन्त वेग के साथ रण–स्थली में उपस्थित हुआ। उसके रौद्र रूप और मायावी कृत्यों से कपिदल भयभीत हो उठा। जिसका चित्रण कवि ने किया है–

"देहधारी इन्द्रजाल सदृश उसे दूर से ही आता हुआ देखकर वानर–सेना चित्कार कर भागने लगी।"[3]

"उसके अग्निवाण की ज्वाला सभी दिशाओं में व्याप्त हो गयी। सारा कपि समूह जलने लगा।"[4] ऐसी भयावह स्थिति का दृश्य भयानक रस का अनुभव कराने में समर्थ है।

---

1. रघुवीरचरितम् 14/74, 76
2. रघुवीरचरितम् 15/25, 26
3. रघुवीरचरितम् 16/11, 13
4. रघुवीरचरितम् 4/36, 38

इस प्रकार कवि ने उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट किया है कि महाकाव्य मे भयानक रस की उपस्थिति के साथ ही उससे जन्य ध्वनि भी उपस्थित है।

विभत्स रस

सम्पूर्ण 'रघुवीरचरितम्' में केवल मात्र दो श्लोकों में वीभत्स रस का चित्रण है– सर्ग 15/49 तथा सर्ग 4/62 युद्ध भूमि का वह दृश्य है जब मेघनाद अपनी मायाशक्ति का प्रयोग कर आकाश मार्ग से विभिन्न वस्तुओं की वर्षा करने लगता है–

"आकाश से अस्थि और मांस के साथ शोणित का वर्षन होने लगा। उग्र दुर्गन्ध फैलने लगी। दृश्य वीभत्स हो उठा। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो दिग्वधू के मुख से रजविकार निकल कर चारों ओर फैल रहा हो।"[1]

इसी प्रकार जब लक्ष्मण ने शूर्पणखा को नाक–कान से विदुपित किया तो "जैसे किसी फुंसी (व्रण) के फूट जाने से अनवरत गति में खून निकलने लगे, उसी प्रकार उसके कर्ण–नासिका भाग से रक्तधार निर्झर रूप से प्रवाहमान हो उठा।"[2]

अद्‌भुत रस

राम द्वारा भयंकरी ताड़का का एक वाण में बध, अनेक वीर नृपों से न उठाया जाने वाले शिवधनुष का खण्डन, चरणरज के प्रभाव से शिलाभूता अहिल्या का सौन्दर्य शालिनी रमणी के रूप में प्रकट होना आदि घटनायें निश्चय ही अद्‌भुत भाव वाले हैं।

जैसा कि अधोलिखित श्लोकों में वर्णित है–

---

1. रघुवीरचरितम् 15/49
2. रघुवीरचरितम् 4/62

"भदासि पौगण्डवयः समाश्रितः, क्रमेण शस्त्रास्त्र परिग्रहोचितः।
तदैव रक्षःकृतच्छ्रमन्धरा सनाथतां प्राप्तवती वसुन्धरा।।
त्वा यदा राघव! भीमदर्शनं महत् तमः कामद! ताटकाभयम्।
शरार्चिषाबाधि तदाप्रभृत्यभी तपोभृतः सम्मदसम्मृताशयः।।[1]

इन घटनाओं से विस्मय भाव उत्पन्न होकर अद्भुत रस की सृष्टि करता है।

महाकाव्य के 6/41–42 में इस रस का चित्रण किया गया है–

अद्भुत रस वहाँ दृष्टिगत होता है जब चित्र–विचित्र मायामृग वनप्रान्तर के एक छोर पर खिलवाड़ करता, उस पार्गकूटी के सामने जहाँ सीता स्थित थी, दौड़ता, उछलता, कूदता, कर्णो को हिलाता, गर्दन को घुमाता, तृड़खादन क्रिया का प्रदर्शन करता है। "मृग का देह रूप वस्तुतः अलौकिक है। उसके शरीर के सभी अवयव वस्तुतः अद्भुत एंव पूर्व अदृष्ट है। उसकी दृष्टि में मोहनी है–मदनालसा युवती अर्द्धनिभीलित आँखो के चितवन का उसका दृष्टिपात अत्यन्त आकर्षक है।"[2]

"शरीर पर स्वर्ण बिन्दु होने के कारण सान्ध्यकालीन तारागण युक्त नभ पटल प्रतीत होता है। उसका उदर भाग शरदकालीन चन्द्रमा के समान प्रतीत होता है, बहुरंगी पूँछ इन्द्रधनुष का आभाष देता है। उसके खूर वैदूर्भमणि के समान उज्वल प्रदीप्त हैं। प्रभासमान उसके चारों सिंघों का अग्रभाग इस प्रकार प्रज्वलित हो रहा था जैसे लोक के लिए चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति हेतु, मणि–रश्मियों की पंक्ति से सनाथ

1. रघुवीरचरितम् 1/14,16
2. रघुवीरचरितम् 6/42

दिग्वलय–व्याज से अर्चना प्रदीप शोभित हो रहे थे।"[1] मायामृग के इस रूप वर्णन मे अद्भुत रस का प्रयोग है।

इस प्रकार घटनाओं की कल्पना से विस्मय के भाव का उदय तब सम्भव होता है जब हम घटना को तत्कालीन स्थिति परिवेश में संयोजित कर परिणाम रूप में पाते हैं, परन्तु भाषागत रूप वर्णन मे कदमपि नहीं। इस रस की अभिव्यक्ति भावगत है न कि भाषागत।

शान्त रस

'रघुवीरचरितम्' का आदि एवं अन्त वनस्थली दृश्य–वर्णन तथा भौतिक वर्णन से परिपूर्ण है। ऋषियों के शान्त आश्रम, उनकी निर्भयता, साम्यरूप निदर्शन, स्वयं राम, लक्ष्मण तथा सीता के तापस वेष हमें सहज, अलौकिक अनवरत सुखरूप शान्ति की कमनीयता में समेट लेते हैं। सांसारिक सुखोपभोग की अतृप्त श्रृंखला को तोड़ने के अवसर मिलते हैं। काव्य शान्त रस में पूर्णतया सराबोर है। शान्त रस की अभिव्यक्ति काव्य में अनेक सुअवसरों पर उपस्थित है।

'रघुवीरचरितम्' के सर्ग 2 के 75वें श्लोक मे भरत का दिव्य रूप तथा स्वभाव इस प्रकार है–

"किसी युवा पुरूष की गोद मे जिस प्रकार कोई युवती बैठ जाय परन्तु वह उसका उपभोग न कर सके, इन्द्रियों को वशीभूत रखने का व्रत धारण कर ले, तथैव भरत ने भी पिता द्वारा प्रदत्त राज्यलक्ष्मी का भोग करने में समर्थ होकर उससे विरत रहे।"[2]

रघुवीर शरभंग मुनि के पावन आश्रम की शान्ति के विषय में कहते हैं–

---

1. रघुवीरचरितम् 6/41
2. रघुवीरचरितम् 2/75

''यह आगे शरणागत की रक्षा करने वाले अग्नि–होत्र शरभंग मुनि का तपोवन है, जिन्होने चिरकाल तक अग्नि को समिधा से तृप्त करके, अन्त में अपना देह ही हवन कर दिया था।''1

शरभंग, मातंग, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य आदि मुनियों के पावन आश्रमों में प्रवाहित शान्ति को सुधारस धार से उच्छरित निस्पृहता, त्याग लोक मंगल रूप धवल भाव–तरंगों की पंक्तियों स आवेष्टित समग्र वन निवृत्ति भूमि प्रतीत होता है।

आश्रमपद कितने शान्त एंव रमणीय है–

''अग्निहोत्रादि के कारण उत्पन्न धुयें से सभी दिशायें अन्धतमावृत–सदृश दिखाई पड़ती है। यज्ञानुष्ठान के अवसर पर ऋषि–गणों द्वारा उच्चरित मन्त्रों को सुनकर कोटरस्थ शुकवृन्द वषट्कार के अभ्यस्त हो गये है।। वह देवताओं के लिए आहुति देने वाले मन्त्रों का उच्चारण करते हैं।''2

काव्य के 17वं सर्ग के 14वें श्लोक मे शान्त रस का प्रयोग है–

''इसी के जल मे शेषनाग की शैय्या पर आदि पुरूष (विष्णु) श्री सेवित विराजमान होते हैं, तथा उनकी नाभि से उत्पन्न ब्रह्या उनकी स्तुति करते रहते हैं।''3 इसके अतिरिक्त महाकाव्य में सर्ग 2/8–14 तथा सर्ग 3/25–28 श्लोकों शान्त रस का चित्रण किया गया है।

शान्त रस सम्पूर्ण महाकाव्य को जीवनन्तता प्रदान करता है।

---

1. रघुवीरचरितम् 17/58
2. रघुवीरचरितम् 2/20–33
3. रघुवीरचरितम् 17/14

षष्ठ अध्याय

रघुवीरचरितम् में प्रकृति चित्रण

रघुवीरचरितम् में प्रकृति वर्णन

वेदमन्त्रों की ऋचायें भी प्रकृति की गोद में ही प्रस्फुटित हुयी। प्रकृति तथा जीवन की चिरसंगिनी स्थिति रही है। प्रकृति के स्वाभाविक साहचर्य से मानव मन की समस्त कल्पनायें सर्जित होती हैं। समक्ष प्रकटित प्राकृतिक रूपों तथा दृश्यों को मानव ने जिस भाव से देखा तथा उसके अन्तःस्थल में प्रतिक्रिया स्वरूप जो भाव तथा कल्पनायें तरंगित हुयी तद्रूपेण उसने उसकी अभिव्यंजना की।

वैदिक कालीन रचनाओं के पश्चात् लौकिक साहित्य सर्वमान्य रचनाकार आदि कवि बाल्मिकी ही माने जाते हैं। संस्कृत साहित्य का प्रथम लौकिक श्लोक उन्हीं का इस प्रकार है—

"मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।1

ऐसा भाव प्राकृतिक वातावरण में ही वाल्मीकि के मुख से निस्सरित हुआ। तमसा तट पर ब्याध द्वारा बिद्ध क्रौंच के लिए तड़पती क्रौंची की करूण दशा को देखकर मुनि का मौन भंग हुआ। उनके हृदय से प्राकृतिक अवस्था में करूण रस फूट पड़ा। ब्याध के कृत्य ने काव्य का बीजारोपण कर दिया जोकि वाल्मीकि रामायण के रूप में सर्वविदित है।

---

1. बाल्मिकी रामायण् सर्ग 1.

शोध प्रबन्ध के प्रस्तुत कवि मल्लिनाथ बाल्मिकी के ही पदचिन्हों पर चलने वाले प्रतीत होते हैं यद्यपि कि माघ, भारवी भवभति, कालिदास एंव हर्ष आदि के काव्यों का इनके ऊपर अच्छा प्रभाव दिखाई पड़ता है। तथापि कालिदास की परम्परा का अनुसरण कवि ने यथास्थान किया है। सम्पूर्ण राम काव्य प्रकृति की गोद में अवस्थित है। अतः प्रकृति से निरपेक्ष होकर किसी भी महाकाव्य की रचना सम्भव नहीं है। महाकवि मल्लिनाथ ने यथास्थान प्रसंगानुसार प्रकृति वर्णन की परम्परा का पालन किया जिसमें वे सफतीभूत रहे।

महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही सत्रह श्लोकों में हिमालय के विभिन्न प्राकृतिक स्वरूपों का उत्तम मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।

य:पूरयन कीचकरन्द्रमागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्वारस्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोदगन्तुम।।
कपोकंडूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानासरलद्रमाणामं।
यत्रसुतक्षीररतदाप्रसूतः सानूनिगन्धः सुरसीकरो।।
लागंलविसेपश्सिर्पिश्यमैरितस्त छन्द्र मरीचिगोः:।
यंस्कार्भयुक्तं गिरिंराज श्ङ्गबदंकुर्बन्ति वाकव्यजनैश्वमर्यः।।[1]

कालिदास से कवि भी प्रभावित प्रतीत होता है क्योंकि रघुवीर चरित के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही, 2,3,4,5,6,7 श्लोकों में आश्रम, वृक्ष, लता, पुष्प, मेघ, भ्रमर, सर्पमणियों, गिरि, गुहा, सूर्योदय, तारावली, कमल, किंसलय, पक्षी आदि का चित्ताकर्षक तथा अलंकारिक वर्णन करने में कवि को महती सफलता मिली है। हमारे आदि कवि की वाणी का प्रस्फुटन प्रकृति एक विशिष्ट आलम्बन

---

1. कुमारसम्भव, सर्ग, 1,8, 9, 13

तथा प्रेरणास्प्रेत है। वह नैसर्गिक भाव–भूमि पर अवतरित होकर सौन्दर्योपासना का शाश्वत पक्ष सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण में रमते हुआ हुआ अभिव्यजिंत करता है। प्रकृति ही कवि के अन्तःस्थल मे सुषमा रस प्रवाहित करती है जो रसमय छन्द बनकर अवतरित हो उठती है।

महाकवि कालिदास के कुमार सम्भव का अनुसरण करते हुए महाकवि मल्लिनाथ ने अपने रघुवीर चरितम् के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही 2,3,4,5,6,7 श्लोकों में आश्रम, वृक्ष, लता, पुष्प, मेघ, सर्पमागिमौ आदि का सुन्दर तथा अलंकारिक प्राकृतिक चित्रण अत्यन्त द्विव्यता तथा मनोरमता से किया है। यथा–

"अनुल्वणस्कन्धनिषण्णवल्लकलाः सहिष्णवस्तापहिमामुपाधसाम्।
लसन्ति यत्र प्रतिपन्नगौरवाद्रुमा मुनीनां परिचारिका इव[1]

उस आश्रम मे नीचली डालियों पर रखे गये वल्कल वस्त्रों वाले, गर्मी सर्दी और वर्षा को सहन करने वाले ऊँचे–ऊँचे मुनियों के झुके हुए कन्धों पर रखे हुए वल्कल वस्त्र वाले तथा गर्मी, सर्दी, वर्षा को सहन करने वाले, सेवकों की तरह सुशोभित हो रहें हैं।

इस प्रकार इस श्लोक मे कवि ने जाड़ा, गर्मी ओर वर्षा, वृक्ष एवं उसकी डालियाँ तथा बल्कल वस्त्र एंव मुनियों आदि का उल्लेख करके आश्रम का प्राकृतिक दृष्मांकन उत्तम ढंग से किया है।

इसी प्रकार तीसरे श्लोक में कवि ने वायु, वेद, लता, पक्षी तथा ब्राह्मणों का आलम्बन करते हुए अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं मनमोहन दृश्य का वर्णन किया है।

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1, श्लोक 2.

ऋजुत्वमाजः कृतवायुनिर्जया लतावितानैर्जटिलाः समन्ततः।
समग्रशाखाविहितद्विजाश्रया महीरूहा यत्र तपोधनाइव।।[1]

जिन आश्रम में चारों ओर सीधे खड़े हवा के झोकों का परास्त कर देने वाले, उलझी हुयी लताओं स लिपटे हुए, सभी डालियों पर बैठे हुए पक्षियों वाले वृक्षः सरल भाव वाले, प्राण वायु पर नियन्त्रण रखने वाले लता समूहों से आवेष्टित नटाणूटधारी (वेदों की समस्त शाखाओं को ज्ञान रखने वाले) ब्राह्मणों को आश्रय देने वाले तपस्वियों के समान सुशोभित थे।

इस प्रकार तीसरे श्लोक में भी प्राकृतिक मनमोहन दृश्य प्रतिबिम्बित होता है। अर्थात् वृक्ष उन ऋषियों के सदृश थे जोकि प्राण वायु को जीतने वाले थे; सरलभाव से युक्त थे। जटा–जूटों से लिपटे थे। द्विजों को आश्रय देने वाले थे। इस श्लोक मे कवि ने वृक्षों तथा तपस्वियों मे श्लेषानुप्राणित उपमा प्रस्तुत किया है जो कि पूर्णतः प्राकृतिक दृश्य पर आधारित हैं। प्रथम सर्ग के चतुर्थ श्लोक मे कवि ने घने मेघो, चंवल भ्रमरों मदमस्त गजों तथा सिंह आदि का आलम्बन लेकर प्राकृतिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

वितन्वते यत्र घनाम्रमेचकाः स्वकर्णतालोत्तर लालिपेशलाः।
मदालसाः सिंहसदावघर्षणैः कपोलकण्डूतिसुखं विषणिनः।।[2]

जिस आश्रम में घने बादल के समान काले अपने कानों के फड़फड़ाने से चंचल भ्रमरों के कारण मनोहर, मतवाले हाथी, सिंह की अयाल से रगड़कर अपेन गण्डस्थल की खुजलाहट (मिटाने के) सुख को बढ़ाते हैं। अर्थात् सिंह और हाथी परस्पर बैर त्याग कर मैत्री भाव से रहते हैं। इस प्रकार कवि ने परस्पर विरोधी पशुओं की मैत्री का अत्यन्त शालीन तथा

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/3

2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/4

प्राकृतिक वर्णन किया है।

पाँचवे श्लोक मे कवि ने अद्वितीय चमत्कृत प्रकाश पुंज से प्राकृतिक दृश्य का अंकन किया है जो आत्मविभोरक है–

निशासु नित्यंनिबिड़ांग संगग्रहाः महीपवीनामिव यत्र योगिनाम।
फणामणिम्यः प्रसृतैर्मरीचिमिः प्रदीपकृत्यं प्रदिशन्ति योगिनः।।[1]

पवित्र योगीगण प्रतिदिन निशा मे सर्पो के मणियों से निस्सरित प्रकाश पुंज से आश्रम में दिव्य प्रकाश प्राप्त करते हैं।

प्रथम सर्ग के छठें श्लोक ने प्राकृतिक सुषमा का दिव्यालोक बिखेरा है–

उदीयमानस्त बक स्तनौंजबलाः समीरणास्पन्दितपल्लवाधराः।
मनोहर यत्र लता महीरूहान् सदोपगूहन्ति मधुव्रतेक्षणा।।[2]

जहाँ (जिस आश्रम में) विकसित होते हुए फूलों के गच्छरूपी स्तनों से सुन्दर; वायु से हिलाये गये किसलयरूपी होठों वाली भ्रमररूपे नेत्रों वाली मनोहर लतायें सदैव वृक्षों का आलिंगन करती हैं।

कितना मनोआह्नदित सजीव प्राकृतिक चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त नैसर्गिक तथा स्वछन्त प्रकृति का है। ऐसा प्राकृतिक दिव्य दृश्य कवि का अद्भुत काव्य सौष्ठक का अनुपम तथा अद्वितीय प्रतीक है।

सातवें श्लोक में पुष्पों की सुगन्धवासित वायु, प्राणियों को अमोघ सुख–शान्ति प्रदान करने हेतु, प्रवाहित होता है–

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/5
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/6

अरण्यपीरूत्प्रसवोदरोद्गतः प्रफुल्लतपंकेसह पदमिनीसखः।
प्रकल्पते यत्र शिवः समीरणः शरीरभाजां प्रशामाय चेतसः।।[1]

जहाँ (जिस आश्रम में) कानन–द्रुमों के पुष्पगर्भ से निकला हुआ (सरोवरो से) विकसित कमल–कमलनियों का मित्र अर्थात् उनके पास से आने वाला कल्याणप्रद (शीतल मन्द सुगन्ध) वायु प्राणियों के चित्त को शान्त करने के लिए प्रवाहित होता है।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने अपने काव्य का शीतल मन्द सुगन्ध वासित भाव प्रसूनो का अर्पण प्रकृति की सुरम्य गोद में सफलतापूर्वक किया है।

प्रथम सर्ग के तेइसवें श्लोक में कवि ने मृगशावकों के पयपान का अत्यन्त स्वाभाविक तथा प्राकृतिक चित्रण किया है जो मातृभाव तथा वात्सल्य भाव का एक अनोखा रम्य सम्भोग है–

पितुर्नियोगादतिमार्गगामिनः स्वभातरं स्नेहरसस्नुतस्तनीम।
प्रगृह्य केशोपवकृशेन कर्मणा कृपापालायं प्रधमं चकार यः।।[2]

आश्रम का प्रांगण भोल–भाले मृग पातों के क्रीड़ा से युक्त है। वे माँ के स्तन से गिरते हुए दूध को बीच–बीच में पान करते रहते हैं। इस श्लोक में मृगशावकों के सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रांकन में कवि सफल है।

प्रथम सर्ग में आगे जाने पर कवि छियालिसवें श्लोक में सुन्दर प्राकृतिक सुषमा को विखेरा है–

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/7
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/23

सवाणावाणासनपाणिबन्धुरं घनावदातद्युति वल्कलाम्बरम।
कुशेशमान्तर्दलचारूलोचनं मृदुस्मितालकंतिपेशलाननम्।।[1]

बाण के साथ धनुष से युक्त हाथ से सुन्दर मेघ के समान सुन्दर कान्ति वाले, वल्कल वस्त्रों से युक्त कमल के भीतरी पंखुड़ियों के समान सुन्दर नेत्रों वाले कोमल मुस्कान से सुशोभित स्निग्ध मुख वाले इसी क्रम मे कवि ने प्रथम सर्ग के श्लोक 46,47 तथा 48 में सरोवरों , पुष्प गुच्छों, नवपल्लवों , मतवाले भ्रमरों आदि का प्राकृतिक वर्णन अत्यन्त पटुता से किया है। प्रथम सर्ग में कवि विभिन्न अरण्यों की प्राकृतिक छटा का सजीव, नैसर्गिक, रमणीय तथा सुरम्य चित्रांकन प्रगाढ़ता से किया है।

द्वितीय सर्ग में 'रघुवीर चरितम्' के मल्लिनाथ महाकवि अभिनन्द के 'रामचरितम्' तथा महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' से प्रभावित परिलक्षित होते हैं। रीति तथा वर्णना शैली कालिदास से अनुप्राणित है। वे वस्तु वर्णन के साथ–साथ प्रकृति निदर्शन मे महाकवि कालिदास के अत्यन्त निकट प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि 'रघुवीर चरितम्' मे प्रकृति उल्लासमयी, रमणीय, मधुरमयी तथा जीवन्तता को मूर्तरूप प्रदत्त करती है। काव्य में प्रकृति अपने विविध आयामों से निमज्ज होकर नितनूतन रूपधरिणि रमण रमणीया स्नात है।

वन, पर्वत, नदी, निर्झर, गहव्र, पुष्प, वृक्ष, पक्षी, सागर, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सूर्योस्त, सन्ध्या, निशा तथा षटऋतुओं का सुन्दर परिपाकित चित्रण प्रस्तुत है। वास्तव में समस्त काव्य प्रकृति के रसामृत से सराबोर है।

प्रथम सर्ग में वन प्रदेश की रमणीय सुषमा तथा मुनि आश्रम की दिब्य सुरम्यता दर्शनीय है। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ तथा अष्टम् सर्गो में प्रकृति

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 1/46

दर्शन प्रतिबिम्बित है। द्वितीय सर्ग के 56–57 श्लोकों में प्रकृति का प्रखर निखार अभिसिंचित है–

सौवर्णास्तरवो यत्र प्रवालांकरपल्लवाः।
मौत्किप्रसवस्मेरामाणिक्यफलशालिनः।।
यत्र हेमलता दोलामध्यासीनाः समूर्च्छनम्।
अविगीतानि गीतानि गायन्ति वनदेवता।।[1]

प्रकृति की सुरम्य क्रीड़ा स्थली में तपोवन आश्रम सुवर्ण कान्ति तरूओं से घिरे हैं। यहाँ किन्नर, गन्धर्व, चारण स्वरूप ऋषियों की उपासना करते रहते हैं। राम मुनि सुतीक्ष्ण से अगस्त्य मुनि के दर्शन की इच्छा प्रकट करते हैं तो वह दक्षिण दिशा को संकेत कर उनके आश्रम का मार्ग बताते समय मार्गस्थ वृक्षो, पुष्करिणी, निर्झर तथा नदी, पर्वत, उपत्यका आदि का वर्णन करते हैं–

वनस्थली तावदितः परस्तात् सपिप्पली पाककषायितिशा।
तरक्षु शाखामृगकिन्नराणां प्रायेण सा सद्दरतामुपैति।।
ततः परं वारणमग्ननतनालैः परिष्कृलापुष्करणीसरोजैः।
निविश्य ततीरलतानि कुंजे सहानुगस्त्यक्ष्यसि मार्गरवेदम्।।
उल्लघंय तत कानन मीक्षितासे नदीं ससंकोच घन प्रवाहान्।
शाखापधेनोमयकूलमाजां तत्र द्रुभाणा जनतास्तरन्ति।।[2]

ऐसी वनस्थली का दर्शन होता है जहाँ का पूर्ण परिवेश ही पिष्पलीकी परिपक्वता से जैसे कषायित हो गया है, वहाँ तरक्षु, बन्दर तथा किन्नर समूह क्रीड़ीरत रहते हैं। फिर प्रफुल्ल सरोज समूह से परिपूर्ण पुष्कारिणी है, जहाँ

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 2/56–57
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 3/10–11.13

प्रायः गज समूह कमलनाल तोड़ते रहते हैं। उस वन प्रदेश में संकचित धारा से युक्त एक नदी भी है जिसके दोनों तदवृक्षों की नमित शाखाओं से छायादार बने हुए हैं। विविध रम्य वनस्थली जो सर, सरोवर एंव प्रफुल्ल कुश वनस्थलियों से पूर्ण थी। पक्षीगण के मधुर क्रूजन का श्रवण करते हुए राम ने मार्गानुसरण किया। मुनि आश्रम की प्राकृतिक स्थति कितनी पावन है–

स्फुरत्प्रदीपाकुंरसन्निकर्षे श्रुतानि शास्त्राण्यनुवाचयन्ति।
युक्तिक्रमाक्षिप्त समाहितार्था प्रत्युममौतापसजातिरेनमो।।[1]

तपश्वर्या की साधना मे रत तपस्वियों के स्निग्ध वातावरण से यहाँ भोग विलास हेतु स्थान नहीं। समाधिलीन तपस्वियों (जिनके जटा कपाल पिंगल वर्ण के हो चुके हैं) के शरीर अवयव निश्चेष्ट हैं। उनकी जटाओं में द्विज समूह अपने नीड़ निर्माण की योजना में रत है। यह है तथा वनों का त्याग तथा तपसाधना इतना ही नहीं इन आश्रमों मे अनवरत सम्पादित होने वाले यज्ञक्रिया में उच्चरित होने वोल मन्त्रों का श्रवण करते–करते वृक्षों के कोटर में निवास करने वाले शुकों द्वारा वषटकार (स्वाहा) का अभ्यास होता रहता है।

सर्ग तीन के तरहवें श्लोक में नदी के तट के प्रसूनों, तरंगित हंसमाला, कर्पूर के सदृश सिकताकण की उपमा सज्जनों से की गयी है जो निम्नवत है–

तरंग रंगत्कल हंसमाला प्रसाधिता तरिवनप्रसूनैः।
कर्पूरपूरच्छविसैकता सा समुद्रगासज्जनयेन्मुदवं।।[2]

उपर्युक्त श्लोक में गोदावरी नदी तथा उसके तट का स्वरूप प्रस्तुत करने में कवि सफल है। गोदावरी नदी के तरंगों पर सुन्दर हंसमाला

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 3/41
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 3/62

चलायमान हो रही है। तटवर्ती वनों के पुष्पों से वह सुशोभित है। कपूर समूह के समान सुन्दर, समुज्वल बालू प्रदेश से युक्त समुद्रगामिनी गोदावरी आपको अवश्य प्रसन्न करेगी। ऐसा राम से कहा गया।

तीसरे ही सर्ग के 72 तथा 74 श्लोकों में महाकवि ने पंचवटी के प्राकृतिक सुषमा की अभिव्यंजना अत्यन्त कौशल पटुता से किया है। "कहीं द्विजगणों का सरस कलरव, कहीं मृगसमूह का स्वतन्त्र विचरण, कहीं मयूरो का दिब्य नर्तन, कहीं बनाली की गहनता से अन्धकारमय दृश्य, कहीं छायादार सघन विढपावली, कहीं पर्वत श्रेणियों के छोर विभिन्न धातुओं के चमकने से ऐसे परिलक्षित होते है, मानों विविध रंगों का लेप किया जा रहा हो। कहीं तरूदल के पंक्तियों से सान्ध्यकालीन छटा बिखर रही है, ऐसे रम्यतर प्रदेश देखकर आनन्दित हुए।[1]

गोदावरी नदी वसुन्धरा की अनुपमा कृति है जैसा कि –

शैलस्तनो पानतमुपाश्रयन्तीपाधः कणैर्व्यंचित मौक्तिक श्रीः।
उदन्तदम्यः परिधानलम्बावसुन्धराया इव हास्यष्टि।।[2]

राम अनुव्रता सीता गौतमी में स्नानार्थ गयीं। नदी गोदावरी का जल उत्फुल्ल कमल सौरभ से कषायित एंव उसमें चंचल तरंगों उठ रही थी। गोदावरी का रूह रूप सीता के हृदय को आनन्दातिरेक से पूर्ण कर उठा।[3]

वन प्रान्त में अवस्थित पुष्करणियों, सरोवरों की सुषमा का चित्रण कवि ने कथानुकूल घटना संयोजन में प्रायः किया है किन्तु पम्पासर की

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 3/72–74
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 3/78
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 4/6–7

शोभा को विशेषतः अपनी वाणी का विषय बनाकर नैसर्गिक वर्णना नैपुण्य का परिचय दिया है। यहाँ कवि की नवोद भावना अनुपम हैं–

उललसत्पद्मकिञ्जल्कपरागच्छुरिताम्मसम्।
कुंकमेनेव संसृष्टां तत्र पम्पामवैक्षत।।
उदयतस्यदिवं प्राप्तुंनिरोकुंमिव तदगतिम्।
महामृितो माल्यवतः पादाश्लेषंवितन्वतीम्।।[1]

कमल तथा किंजल्क के विकसित होने के कारण उनसे विकीरित परागकणों से संश्लिष्ट जल वाला, ऐसा मालूम पड़ता था कि कुंकुम के कण जलराशि पर बिखेरे हुए हों, ऐसे पम्पासर को राम ने देखा। वह पम्पासर माल्यवन्त पर्वत प्रदेशवर्ती है। उस स्थिति का विश्लेषण करने में कवि की प्रतिभा का विकरण प्रतीत होता है। वह कहता है– माल्यवन्त पर्वत (अपने उच्च शिखर के कारण) के दिवलोक स्पर्श हेतु उसकी गति को अवरूद्ध करने के लिए पम्पासर उसको पादालिंगित कर रहा है। उसमें विकसित पद्म उठती हुई लहरों तथा आवर्तो को देखकर जैसे कवि कल्पनालोक का विचरण कर रहा है।

उठने वाली तरंगे मानों युवती की भ्रूलतायें हैं, विभिन्न विकसित कमल उसके पाणि, पाद और नेत्र हैं। उसमें लहरियों के साथ उत्पन्न होने वाले भँवर , उसकी नाभि एंव जलमध्य विचरणशील चक्रवाक युग्म उसकी स्तन रूप शोभा है। यह रूप कोई भावना कवि की निजी अद्वितीय कल्पना है यथा निम्न है–

कम्पंपम्पा तरंगणामातन्वानः शनैः–शनैः।
गन्धहारं सरोजानां पवनस्तमसेवत्।।[2]

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 8/2–3
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 8/11

काव्य के नवें सर्ग के , 13, 18, 22, 26 तथा 30वें श्लोकों में कवि ने केकिदल, चातक, केवड़ा, नवजलदावलि, उष्णामाप, पुष्पित कदली, मेघमाला, घनस्तोम, शिखिसभूह, कुकरमुत्ता, जलद सागर, आकाश, तीव्र वायु, सालवृक्ष, वियोग आदि का सुखद, मनोहारी, चिन्ताकर्षक एवं दिव्य प्राकृतिक सुषमा का रम्य चित्राकंन सम्पादित किया है।

"केकीदल में सन्ताप उत्पन्न करने, चातक, वृन्द, मानस मे सन्तोष क्षण उत्पादक, केतक (केवड़ा) को पुष्पित एंव सौरमित स्थिति के प्रवर्तक नववारिवाह (वनजलदावलि) अवतरित हो गये।[1]

वर्षागम मे धरती से सोंधी–सोंधी गन्ध उठती है। कदलीवन पुष्पित होते हैं। पथिक हृदय घर पहुँचने के लिए उतावला हो उठता हैं–

घनैरूत्सृष्टानां प्रथमपयसां प्राच्यविभवं।
क्षितिर्वाष्पैरूष्णैः सममुदगिरदयाः स्वसमये।।
न तावत् किं चक्रः स्मरविजयहेतोर्जगति ता।
विकोशाः कन्दल्यः पथिक हृदयग्रन्धिमिदुराः।।[2]

नवजलदों द्वारा प्रथम वर्षण के जलरूपी ऐश्वर्य से गर्वित सुअवसर प्राप्त करके धरती उष्ण भाप छोड़ रही है। क्या यह जगत् को विजय करने वाले काम विजय का उपक्रम नहीं कर रही है? क्योंकि पुष्पित कदली वन पथिक हृदय के क्षोभ मानरूपी गाँठ को विखण्डित करने लगे हैं। अर्थात् पथिक स्वगृह पहुंचने के लिए समुत्सुक हो उठा है।

मेघमालाओं के सुविस्तार से तो जैसे गगनतल ही संकुचित होने

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/18
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/22

लगा। सभी दिशाएँ बादलों से अछनन सी है, घनस्तोम के कारण पर्वततल का अनुमान केवल शिखि–समूह के मदपूर्ण निनाद श्रवण से सम्भव होता है, विभिन्न वनस्पतियों और सिलिन्ध्र (कुकुरमुत्ता) के अंकुरित हो जाने से धरती भी कठिनता से दिखायी पड़ती है।[1]

बादलों के जलवर्षण की प्रक्रिया को कवि कल्पना में परखने योग्य है।

जतद सागर के जल का पान सहसैव आकाश में पहुँच, निनाद (गर्जन) कर, दिशाओं में भ्रमण करते हुए अत्यधिक चक्कर लगाने से व्याकुल होकर उसी (जो जल समुद्र से पान किया था) को फिर से अत्याधिक मात्रा में उगल रहे हैं।[2]

कवि की कितनी चिन्ताकर्षक कल्पना है। घनागम वस्तुतः हास, उल्लास, विकास और विलास का काल है। समग्र धरती रसमती हो उठती है। सहृदय रसिक एंव वियोगी जनों के लिए यह वर्षा अत्यन्त सन्तापकर होती है।

"वायु के तीव्र वेग से विशाल साल वृक्ष ढह जाते हैं, उसी तीव्र वेग में आन्दोलित हिडोले का सा आनन्द लेते जलदों के भीषण जलवर्षण से पर्वत शिखर तक को विखण्डित कर जलधार प्रवाहित होने लगती है। ऐसे मादक वर्षाकालीन परिवेश में सीता वियोगी राम का हृदय सन्तप्त उनका शिथिल होता जा रहा है, क्योंकि कामयुक्त मन के एक–एक मर्म को झकझोर दे रहा है।"[3]

'महावीरचरितम्' के 10वें सर्ग के 3, 10, 11, 64, 49 में कवि ने

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/13
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/27
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 9/30

शरदऋतु का शाश्वत प्राकृतिक छटा का वर्णन अनन्त विद्वतपूर्ण विधा से किया है जबकि वर्षाकाल अपने अपूर्व वैभव को समाप्त प्राय कर चुका होता है।

शरदऋतु का व्योम धवल तथा निर्मल हो जाता है। बादल यदि दिखाई पड़ते हैं तो जल से शून्य सर–सरोवरों तथा नदियों का जल स्वच्छ रहता है तथा जल की तलहटी तक भी दृश्यगत होता है। उसमें विहरणशील मछलियों की क्रीड़ायें नेत्र सुखद होती हैं। सरिता तट पर सैकत राशि, जो वर्षाकाल में जलमग्न रहती थी, स्पष्ट झलकने लगती हैं।[1]

वर्षागम काल मे ज़ो आकाश घनाच्छादित होने के कारण अत्यन्त विशाल प्रतीत होतो था वह अपना वैभव समाप्त कर चुका होता है–

"बलाहकानां शकलैर्निशेषक्षरिताम्मसान।
संकीर्ण सर्वतो व्योम चित्राक्रान्तभिवाभवत्।।"[2]

जलक्षारित होने के कारण सभी जलद वारिविहीन हो गये हैं। वे आकाश मण्डल मे संकुचित परिधि मे परिलक्षित होने लगते हैं निर्मल नभस्तल में तारा मण्डल पूर्णतः दीप्त होने लगता है। अगस्त्य तारा उदितमान होकर शरदागम को आमन्त्रण देता है। कवि इस प्राकृतिक दृश्य का सुहावना चित्रांकन करता है–

"उदयेन प्रसन्नानिमुनैः सागरपायिनः।
शूराणां च नदीनां च मनांसि पयांसि च।।"[3]

"अगस्त्य के उदय हो जाने से (अर्थात् वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने से) सभी नदियों का जल प्रसन्न (स्वच्छ) हो गया और शूर–वीरों के हृदय

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 10/39–10
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 10/11
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 10/6

उत्साह से पूर्ण हो गये (वर्षाकाल मे गमनादि असुविधापूर्ण रहता है) जिन बादलों की ओर चातक टकटकी लगाये रहता था, आज वह उनको देखकर भी विमुख हो जाता है।"[1]

महाकवि मल्लिनाथ ने नैसर्गिक छटा का अवतरण अपने हृदय के अन्तर में झांककर किया है जो मानवीय भाव के अन्तःस्थल को मधुरता से स्पर्श करते परिलक्षित होते हैं। प्रकृति कहीं भी कवि–मेधा में भयावह नहीं बन पायी। शारदीय प्रकृति का एक कमनीय रूप चित्रित करते हुए कवि कहता है–

"प्रातःकालीन छिकटती धूप का चित्रण कितना ही मनोरम है। नभ्रस्तल प्रातःकालीन धूप से लालिमायुक्त होकर दाडिम को भी अवमानित करता प्रतीत होता है, नभरूपी युवती सुखद पीताम नेत्ररूप पूजनार्थ दीपक प्रज्ज्वलित किये हो।"[2]

बारहवें सर्ग मे श्लोक 13 में कवि ने सन्ध्या वर्णन का अत्यन्त मोहक दृश्य प्रस्तुत कर अप्रतिम रचना पटुता का उदाहरण दिया है–

"तं सुप्रसन्नेदुमुखी मनोज्ञैर्वयोरूतैस्वागत मुदि्गरन्ती।
विकीर्यतारा कुसुमानि दुरादम्यागतं प्रत्युदियाय सन्ध्या।।"[3]

चौदहवें सर्ग के 17 तथा 102 श्लोकों कमें सागर, लहरों, बहुमूल्य मणि तथा शोणादि नदियों का नैसर्गिक चित्रांकन किया है कवि ने रत्नाकर रूप सागर को भी कल्पना को मूर्त रूप दिया हे–

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 10/4
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 10/49
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 12/13

सागरः सादरंतस्मै सागरान्वयमौलये।

मणिरत्नान्यनर्थाणिं वी चिहस्तैरूपाहंरत्।।"[1]

"सागर ने सगर कुलवंश राम का सादर स्वागत किया और अपने लहर रूपी हाथों से बहुमूल्य मणि तथा रत्न भेंट किया। पुनः राम जब अपनी सेना को पार ले जाने के उपक्रम मे क्रुद्ध हुए तो भयाक्रान्त सिन्धु शोणादि नदियों को लेकर उनसे अनुरोध करने समुपस्थित हुआ। कवि ने यहाँ सागर के परिवारजनों भागीरथी, यमुना, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, महानदशोण आदि का नामोल्लेख किया है।"[2]

सोलहवें सर्ग के 63 तथा 65 श्लोकों में प्रकृति की थोड़ी भयानक दृश्य का वर्णन किया है।

"रूधिर से युक्त कटी हुयी नसें ऐसी लग रही थीं जैसे इन्द्र द्वारा काटे गये नील पर्वत के शिखर धातुओं (गेरू) से युक्त हों।" "अनेक भुजाओं (रावण के) के कटने से विकृत उसका शरीर उसी प्रकार से गिरा जिस प्रकार शाखाओं के कटने से छिन्नमूल स्नुहि (सेहुण) वृक्ष भूतल पर गिरता है।" रघुवीरचरितम् के सत्रहवें सर्ग के 12, 17, 41, 61, 65, 79, 80 श्लोकों मे मल्लिनाथ ने प्रकृति की जीवन्त सुषमा का चित्रांकन बहुत ही अनूठी शैली में प्रतिपादित किया है सागर उसके गम्भीर जलतल, उसकी तरंगों उसमे से निकलने वाले जीव–जन्तुओं, उसकी श्री सम्पदा, उसके बन्धु– बान्धव, परिजन–सहायक, उसकी तटवर्ती प्रदेश का मनोरम चित्रण रघुवीरचरितम् में उपस्थित है।[3]

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 14/17
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 14/96–102
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 16/63/65

"आकाश वायु द्वारा उसके जल को लेकर उससे रस मे परिवर्तित कर पुनः वनों के माध्यम से वृष्टि करके धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग साधन द्वारा विश्व का भरण–पोषण करता है।"[1]

17वें श्लोक में कवि प्राकृतिक अनुपम छटा बिखेरता है। यह समुद्र तट एला सुगन्धि से युक्त वायु से विविध प्रकार से सुगन्धित समुज्जवल सुक्ति मालाओं से परिपूर्ण निश्चय ही दर्शनीय है पुनः राम उसके तटवर्ती प्रान्त को दिखाकर कहते हैं–

"इसका सैकत तट इलायची फल की सुगन्धित रस से वायु द्वारा प्रसा!रित किये जाने से सुवासित हो रहा है एंव मुक्तिमाला से छिटकते मुक्ता की आभा से शोभित है।"[2]

अयोध्या लौटते समय राम गोदावरी की ओर संकेत कर सीता से कहते हैं–

"दिशाओं को मोद प्रदान करती हुई यह मेरे हृदय को आबद्ध कर ले रही है।"[3]

मन्दाकिनी के प्राकृतिक स्वरूप का पवित्र चित्रण कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है–

"पर्वत शिखर पर जाती इसके शिरोवेष्टन के समान उज्जवल जलध ार यह मौक्तिम आभा सी सुन्दर छटा बिखेरती नीचे की ओर प्रवहान मदिराक्षि। यह मन्दाकिनी भूमि के भूषण स्वरूप शोभा पा रही है।"[4]

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/12
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/17
3. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/41
4. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/61

ऐसी ही प्राकृतिक शोभा की कल्पना कवि ने कलिन्दजा यमुना के लिए भी किया है–

हमां च वीक्ष्यस्वकलिन्दकन्यां विमिद्यशैलंद्रुतमापतन्तीम।
यानीलरत्नै र्निविडानुबद्धामाला भुवः कण्ठगतेव भाति।।[1]

कवि गोदावरी का प्रवाह, र्मिल जल में उठती लहरों, श्वेते कमलदल से बिखरते सरकणों, दुग्ध–धवल–वर्ण हंसों की मोहक क्रीड़ा आदि का वर्णन कर जैसे कल्पना से उसके स्वरूप का साक्षात्कार कर रहा हो। वह निर्मल तथा पुण्य सलिला गोदावरी की क्रीड़ा वर्णना मे तत्लीन सा हो जाता है–

"पर्वत प्रदेश मे आश्रय लेती हुई, विषम शिलाओं पर स्खलित होती उसकी जलधारा वायुगति से लोललहरियों मे परिवर्तित हो रही थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोदावरी श्रमजनित संताप के कारण निःश्वासें छोड़ रही हो।"[2]

इस प्रकार निष्कर्षतः महाकवि मल्लिनाथ ने रघुवीरचरितम् में प्राकृतिक सुषमा का सागोंपांग विधिवत चित्रण किया है। नवोदक बिन्दुमाला द्वारा ध ारती का श्रृंगार केकीवृन्द की क्रेकारध्वनि, उनका उन्तुक्त नर्तन, चातक स्वर की उत्कटेक्षा, केतकी पुष्प की बिखेरती सौरभ राशि आदि का सम्भार कवि एकत्र करता जाता है। दिशाओं को प्रकम्पित करने वाली गर्जन सहित समस्त आकाशतल को परिव्याप्त किये गाढ़ालिंगन विधि का भाव प्रदर्शित करते युवित–युवकों का सम्मिलन क्षण जुटाती, ग्रीष्म की उष्णता से वार्धक्यावस्था को प्राप्त धरित्री में तारूण्य का संचार करने वाली, कामदेव की वैभवोल्लास की एकमात्र भूमि वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गयी।

---

1. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/65
2. रघुवीरचरितम्, सर्ग 17/79–80

मल्लिनाथ ने ऋष्यमूक पर्वत का मोहक दृश्य उपस्थित किया है। उन्होंने गिरिराज हिमालय की भी शोभा को इस पर्वत की कमनीय सम्पदा से न्यून परिगाणित किया है– विचित्र मणियों को अलौकिक आभा से प्रतीत होता है कि यह पर्वत नहीं अपितु अनुपम द्युतिवाला दिग्वलय है जो दर्प को तुच्छ कर रहा है।

कहीं गहर से निकलते हुए सिंह की हुंकृति सुनकर गज–समूह भयाक्रान्त हो रहा है तो कहीं तट भाग में निद्रालस मृग बादल गर्जना को हिंस्र जीव का हुंकार समझकर भयभीत हो रहा है। पर्वत का शिखर भाग स्फटिक रत्नों से उत्पन्न किरणों की ज्योति से दीप्त है।

निष्कर्षतः महाकवि मल्लिनाथ ने 'रघुवीरचरितम्' मे प्रकृति की छटा का रसमीय, उल्लासमयी, रम्यता तथा द्विन्यतापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। कवि की सोन्द्रर्य दृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण मे रमण करती हुयी काव्य सौष्ठव की अभूतपूर्व सृष्टि करने में समर्थ हो सकी है। कवि ने प्रकृति से ही काव्य की नैसर्गिक जीवन्तता ग्रहण की।

सप्तम अध्याय

रघुवीरचरितम् में सुभाषित

सप्तम् अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य में सूक्तियाँ (सुभाषित)

सु उपसर्गक पूर्वक वच् धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय लगाने से ''सूक्ति'' शब्द बनता है। ऋषियों, महाकवियों तथा महापुरुषों के प्रेरणाप्रद वाक्य जो कि मनुष्य को उत्तम मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले होते हैं वे सूक्ति की कोटि में आती हैं। उनके वे वचन विभिन्न प्रकार के होते हैं। वे कभी समाज से सम्बन्धित होते हैं, कभी राजनीति से तो कभी प्रकृति से प्रायः समुचित अवसर को सुव्याख्यायित करने के लिए उत्तम ढंग से कहे गये वचन भी सुभाषित का निर्वाह करते हैं। सूक्तियों से महाकवि अपने कथन को प्रभावशाली बनाता है।

सर्वोत्तम सूक्ति वह होती है जो श्रोता या पाठक को सामान्य रूप से सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती है। समाज में प्रचलित उत्कर्ष एवं अपकर्षकारी विभिन्न क्रिया–कलापों का समुचित निरूपण करने में सूक्तियाँ सहायक होती हैं। महाकवि सामाजिक घटनाक्रम को देखकर तथा उसे आत्मसात् कर आवश्यकतानुसार उसके समर्थन या विरोध में सुभावशाली नैतिक वचन कहता है। जिससे उसके द्वारा उस प्रसंग का भी उत्कर्ष होता है तथा उससे प्रेरणास्पद समाज भी उपकृत होता है। इस प्रकार जनमानस पर गहन छाप डालने वाली सारगर्भित अभिहित होती हैं।

काव्य में सूक्तियों की अहम् भूमिका भी होती है। सभी कवियों ने अपनी प्रतिभा के अनुसार सूक्तियों का यथावसर प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास की सूक्तियाँ लोगों के जिह्वाग्र पर नर्तन करती हैं। उनके समस्त काव्य सूक्तियों से परिपूर्ण हैं। माघ भारवि तथा हर्ष ने भी अपने काव्यों में सूक्तियों का प्रयोग किया है।

सूक्तियों से कुछ सीमा तक लोकोक्ति में तथा मुहावरों से भी तुलना की सकती है। संस्कृत वांगमय में सूक्तियों का महत्व इससे भी सिद्ध होता है कि जिस कवि के काल में उसकी रचनाओं में सूक्तियाँ प्रभावशाली प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है, सहृदयों तथा सज्जनों ने उनका अभिनन्दन किया है।

सूक्तियों की महत्ता सूचित करने वाले ग्रन्थ भी विद्यमान हैं जैसे सूक्ति मुक्तावली, सुभाषित रत्न भण्डाकार तथा सुभाषितावली आदि।

इन ग्रन्थरत्नों में पूर्वकालीन महाकवियों के काव्य ग्रन्थों से सूक्तिरत्न सङ्गहीत कर रक्खे गये हैं। इनमें समाज के हर प्रकार के विद्याओं तथा व्यक्तियों के गुण दोष का रम्य निरूपण प्राप्त होता है। जैसे इस निम्न सूक्ति के प्रयोग से श्लोक निश्चय ही सार्थक हैं –

"पृथिव्यां त्रीणिरत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।"

मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञाविधीयते।।"

इस प्रकार काव्यों में सूक्तियों का प्रयोग, सज्जनों की प्रशंसा, दुर्जनों की निन्दा, विधि की विडम्बना भवितव्यता, उत्तम राजा की प्रशंसा तथा कुनृपति की निन्दा, लक्ष्मी की निन्दा व प्रशंसा, सरस्वती की प्रशंसा, गुरु की महत्ता, कवि की प्रशंसा, महापुरुषों की प्रशंसा आदि अतिशय प्रभावशाली ढंग से निरूपित किया गया है।

रघुवीरचरिचतम् के रचनाकार महाकवि मल्लिनाथ ने अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, भवभूति एवं हर्ष के काव्यों का विशद् तथा गहन अध्ययन किया था उन्होंने कालिदास, माघ एवं भारवि श्रीहर्ष आदि के काव्यों पर अभिनन्दनीय टीकायें की हैं। अतः उनका प्रभाव स्वभावतः उनके मानसिक धरातल पर निश्चित रूप से पड़ा था जिसका

दर्शन स्थलानुसार प्राप्त होता है। इन महाकवियों का अनुसरण हमारे महाकवि ने भी सूक्तियों के सन्दर्भ में सुन्दर ढंग से किया है जो शिवतत्व बोधक है। उनके द्वारा प्रमुख कतिपय सूक्तियों को निदर्शन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है यद्यपि कि रघुवीरचरितम् में सूक्तियों का यदा–कदा प्रयोग किया गया है।

'रघुवीरचरितम्' में आद्योपान्त सूक्तियों का जो कतिपय प्रयोग किया गया है वे सर्गानुसार श्लोकों में अधोलिखित हैं। जिनका स्वाभाविक प्रयोग महाकाव्य में प्रस्तुत किया जा रहा है –

सर्ग 1 में 19, 31, 33, 42, 43, 56, 60 सर्ग 4 में 10, वर्ग 6 में 14, 21 22, सर्ग 7 में 88, 103, 106, 107, 112 सर्ग 8 में 101, 139 सर्ग 10 में 39, 78 सर्ग 13 में 56 सर्ग 14 में 71 17 में 99 ।

कवि ने जिन सूक्तियों का प्रयोग काव्य में किया है उसका उल्लेख निम्नवत प्रस्तुत हैं –

सर्ग 1/19

अमोचिशापव्यसनादहल्याया, भवत्पदाम्भोजपरागपूतया।
भवद्विधानंनतु चितमीदृशं महीयसामार्तहितैकसम्पदाम्।।[1]

अर्थात् "महान लोगों की सम्पत्तियों का एकमात्र उद्देश्य पीड़ितों की पीड़ा दूर करना होता है।"

इस सूक्ति का प्रयोग उस समय किया गया जब श्रीराम ने अहिल्या की मुक्ति अपने चरण–कमल रज से की। तपस्वियों ने कहा कि आपके चरण कमलों की परागधूलि से पवित्र हुयीं अहिल्या शाप के संकट से मुक्त हो गईं। आप जैसे लोगों के लिए इस प्रकार का कार्य आश्चर्यजनक नहीं

---

1. र.च. 1/19

है क्योंकि महान् लोगों की सम्पत्तियाँ एकमात्र पीड़ितों के लिए ही होती हैं।''

सते पिता यस्यसुहृत्सुरेश्वरः क्षमाच यस्यक्षितिकौतुका वहा।

मदत्यजत् त्वां वचनेन योषिताश्चिशर्जितानांतपसांकलंहितः।।[1]

अर्थात् सुदीर्ध तपस्या का समुचित फल। तपस्वीगण राम से कहते हैं कि तुम्हारे पिता इन्द्र जिनके मित्र हैं और पृथ्वी (राज्य) जिनके मनोविनोद का साधन है। उन्होंने स्त्री की बात में आकर जो तुम्हारा त्याग कर दिया, वह तो निश्चित ही हमलोगों के सुदीर्ध तपस्या का संचित फल है। इस श्लोक में स्त्री की बात में आकर तथा सुदीर्ध तपस्या का संचित फल सूक्तिरूपेण प्रयुक्त है।

सर्ग 1 में ही 33 वें श्लोक में सूक्ति का प्रयोग है –

अयंतु सौमित्रिरमित्रमर्दनस्तृणायमत्वा महती मपि श्रियाम्।

भवन्तमेवानुगतः सुखोचितः स्वनुष्ठितं धर्ममिवार्थ संग्रहः।।[2]

''स्वनुष्ठितं धर्ममिवार्ध संग्रहः'' सूक्ति है। अर्थात् समुचित धन संग्रह अच्छी तरह पालन किये जाने वाले धर्म का अनुगमन करता है।

शत्रुओं का विनाश करने वाले, सुख–भोग के योग्य यह सुमित्रानन्दन लक्ष्मण हैं। जिन्होंने अपार राज्य लक्ष्मी को भी तृण के समान छोड़कर आपका ही अनुगमन उसी प्रकार किया जिस प्रकार सुख के लिए प्रशंसनीय धन संग्रह अच्छी तरह पालन किये जाने वाले धर्म का अनुगमन करता है।

---

1. र. च. 1/31
2. तदेव 1/33

सर्ग 1 में 42 वे श्लोक में सूक्ति का प्रयोग है –

प्रतिप्रयाते भरते सहानुगेजटासु कृत्वा तव पादुके शुभे।

मनस्विनामाशय वृत्तिरीदृशीन जातु मेघेत्युदियाय भारवी।।[1]

अर्थात् महान् लोगों के विचार में भेद उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अपनी जटाओं पर आपकी शुभ पादुकायें रखकर अर्थात् (सिर पर रखकर) अपने अनुगामियों समेत भरत के लौट जाने पर (मनस्वियों) अर्थात् दृढ़ संकल्प वालों की भाव क्रिया ऐसी ही होती है। उसमें भेद उत्पन्न नहीं किया जा सकता इस प्रकार की वाणी प्रस्फुटित हुई।

इसी प्रकार प्रथम सर्ग के 43 वें श्लोक में सूक्ति अंकन है।

तदानसूयात्रिप्रग्रहोमुदातपस्ययास्या वपुरन्वलेपयत्।

समन्वितार्थ निजनामतन्वतीः न कस्य लक्ष्म्यैमहतां समागमः।।[2]

अर्थात् "बड़े लोगों का मिलना भला किसकी शोभा (समृद्धि) के लिए नहीं होता।"

अपने नाम की यथार्थता का विस्तार करती हुयी अनुसूया ने महर्षि अत्रि द्वारा प्रदत्त (अंगराग रूप) उपहार को प्रसन्नतापूर्वक अपनी तपस्या से इस (सीता) के शरीर में लिप्त कर दिया। बड़े लोगों का मिलना भला किसकी शोभा (समृद्धि) के लिए नहीं होता।

प्रथम सर्ग के 56 वें श्लोक में सूक्ति चित्रण इस प्रकार है –

सदस्तदित्थं व्यवहृत्य भारतीं रघुप्रवीराय हितानुबन्धिनीम्।

बभूव तूष्णीमपि संकटमेटहत्ययावदर्थ न वदन्ति साधवः।।[3]

अर्थात् "महान संकट में भी साधुजन अनुचित कथन नहीं करते।

---

1. र. च. 1/42
2. र. च. 1/43
3. र. च. 1/56

प्रथम सर्ग के 60 वें श्लोक में सूक्ति प्रयोग है –

कृतार्थयन्नित्यमिद्यायतान् विमुस्ततः सपर्या प्रवणः समाददे।

विपदेगतानामविद्याय रक्षणं न सत्क्रियामाददत्ते हितादृशाः।।[1]

अर्थात् "विपत्तियों में पड़े लोगों की बिना रक्षा किये सज्जन सत्कार स्वीकार नहीं करते।"

श्री रघुवीर ने तपस्वियों के समक्ष कहा कि धनुष लेकर मैं लक्ष्मण सहित आपके समक्ष कह रहा हूँ कि यह वन राक्षसों के उपद्रव से रहित करूँगा। इस कथन से राम ने लोगों को कृतकृत्य करके तत्पश्चात् उनकी सेवा स्वीकार की।

चतुर्थ सर्ग के 10 वें श्लोक में सूक्ति का उत्तम प्रयोग है –

उन्मिषत्कुसुमचूतचम्पक (स्फारस्वै) खासवि (खी परुवा) षट्पदः।

सौरमोपचित चैत्रमारुतः कस्यनाम समयोऽयमप्रियः।।[2]

अर्थात् "ऐसा समय किसे प्रिय नहीं होता।"

पुष्प आम्रमंजरियाँ विकसित हो, गंजायमान भ्रमर, सुगन्धित से परिपूर्ण चैत्र मास के पवन प्रवाह मानता से इस प्रकार का समय किसे प्रिय नहीं होगा।

ऐसा ही सूक्ति प्रयोग इसी सर्ग के श्लोक 18 में है –

अस्तिकालगतिरित्यविप्लवाकाच्चिदिन्दुमुखि! यद दिवाकरः।

तर्पयत्नपि जगद् वसूच्चयैः स्वां विपत्तिमपनेतुमक्षमः।।[3]

अर्थात् "काल की गति निश्चित होती है।"

काल की गति निश्चित होती है। अस्त होने वाला सूर्य संसार को

---

1. र. च. 1/60
2. र. च. 4/10
3. र. च. 4/18

सम्पदा से परिपूर्ण करते हुए भी अपनी विपत्ति को दूर करने में असमर्थ होता है। कवि का अभिप्राय यह है कि कालगति दूर करना सम्भव नहीं होता। महान लोग भी उसका फल भोगते हैं। सूर्य संसार को सम्पदा प्रदान करता है किन्तु वह भी अस्ताचल गमन रूप अपनी विपत्ति को दूर करने में असमर्थ होता है।

छठवे सर्ग के 14 वें श्लोक में सूक्ति का रम्य चित्रण है –

रिपोरमिव्याजिंतमाविवृद्धेरुत्थानमेव प्रथमं निरोध्यम्।
नखपमेद्ये तु तरुप्ररोहे कालेनकुष्ठाहि कुठारधारा।।[1]

अर्थात् "नख के द्वारा काटे जाने योग्य वृक्षांकुर पर कालक्रम के कुठार की धार भी कुण्ठित हो जाती है।"

युद्ध के समय वीर वीरता की ओर तीव्रता से बढ़ते गतिवृद्धि को निंवारित करना ही प्रथम कार्य होता है। क्योंकि समय बीतने पर नख से तोड़े जाने योग्य वृक्षांकुर पर कुल्हाड़ी की धार भी कुण्ठित हो जाती है।

छठे सर्ग के 21 वें श्लोक में सूक्ति प्रयोग है –

इति स्थिते वर्त्मनिवीरयोग्येसचेतनः कापद्यमाश्रयेत् कः।
शिवो दकामां सरिति स्त्रवन्त्यां किमर्थनीयं मृगतृष्णिकाम्भः।।[2]

अर्थात् उत्तम जलयुक्त नदी के प्रवाहित रहते हुए मृग तृष्णा से जल की याचना क्यों की जाय।

इसी सर्ग के 22 वें श्लोक में भी सूक्ति चित्रण हैं –

तदत्र नः सन्निहिते विधेये विधत्स्व चेतः सहकारितायाम्।
सहायवन्तं पुरुषं प्रकृत्याचलाप्युपास्ते नियमेन लक्ष्मीः।।[3]

---

1. र. च. 6/16
2. र. च. 6/21
3. र. च. 6/22

अर्थात् "सहायक से युक्त पुरुष के पास स्वभाव से चंचला होती हुई भी लक्ष्मी अवश्य निवास करती है।"

महाकाव्य के सातवें सर्ग के 88 वें श्लोक में सूक्ति का कवि ने चित्रण किया है जो इस प्रकार है –

अपि मय्यरविन्दु लोचना करुणांनो शिथिलीकरिष्यति।

क्षणमात्रपरोक्षवति निश्लधरामादयितेऽप्रिहि स्त्रियः।।[1]

अर्थात् "क्षणमात्र के लिए भी प्रियजन से परोक्ष हो जाने पर स्त्रियों का राग शिथिल होने लगता है। यह सीता के वियोग का क्षण है।

इसी सर्ग के 103 वें श्लोक में सूक्ति का अनुपम प्रयोग कवि ने किया है –

न माया नमता प्रसादितः प्रकृतिं स्वां प्रतिपन्नवान पुनः।

न हि हेतुकृतस्तपोमृतां सुचिरं तिष्ठतिमन्युराशये।।[2]

अर्थात् "तपस्वियों के हृदय में किसी कारण से उत्पन्न क्रोध अधिक समय तक स्थिर नहीं रहता।"

सातवें सर्ग के 106 वें श्लोक में सूक्ति चित्रण है –

गलितं मुनिशापकल्मषं हृदि में संविदुदेति काचन।

विचिनु त्वमुपायमात्मवाननुप्रायैर्नहि साध्यते विधिः।।[3]

अर्थात् "विधाता भी बिना उपाय के कार्य सिद्ध नहीं करता।

शाप मुक्त होने के पश्चात कबन्ध (राक्षस) ने राम से कहा कि मैं शापमुक्त हो गया। अब आप सीता अन्वेषण का उत्तम उपाय ग्रहण करें क्योंकि विधाता भी बिना उपाय के कार्य सिद्ध नहीं करता अर्थात् आप सीता

---

1. र. च. 7/88
2. र. च. 7/103
3. र. च. 7/106

खोज के लिए बताये गये से अग्रसर होइये।

इसी प्रकार इसी सर्ग के 107 वें श्लोक में सूक्ति प्रयोग से महाकवि कालिदास तथा अन्य महाकवियों की प्रतिच्छाया है –

यशसा प्रतिपत्स्पसे प्रियां नहि शोकाय मनः प्रदीयताम्।
नियमेन न देहिनां सुखं न च दुःखं परिवृत्तिधर्मतः।।[1]

अर्थात् "प्राणियों को नियमित रूप से सुख अथवा दुःख की प्राप्ति नहीं होती। सुख–दुःख का परिवर्तन होता रहता है।"

उपर्युक्त सूक्ति प्रयोग कालिदास के सूक्ति प्रयोग से मिलता–जुलता है जैसा कि महाकवि कालिदास की अधोलिखित सूक्ति है –

कस्यात्यन्तम् सुखमुपनतम् दुःखम् एकान्ततोवा।।"

इसी सर्ग के 112 वें श्लोक में सूक्ति का सुन्दर प्रयोग है –

उपकारि न बालिसौहृदं तव मन्येन स कृत्यवान् यतः।
असम व्यसने षु न क्वचित् पणबन्ध खलु कर्मसिद्धये।।[2]

अर्थात् "असम व्यसन वालों के साथ होने वाली मैत्री कभी कर्मसिद्धि में सहायक नहीं होती।"

अर्थात् सुग्रीव से मित्रता के प्रसंग मेंयह कहा गया कि आपके साथ बालि की मित्रता उपकारी नहीं होगी, क्योंकि वह विपन्न नहीं है। वह कृत्यकृत्य नहीं होगा। सुग्रीव बालि द्वारा त्रस्त है इसलिए विपन्न है। स्वयं आप भी विपत्तिग्रस्त हैं। अतः उसी के साथ मैत्री उत्तम है। इस प्रयुक्त सूक्ति में **"तप्ततपृयोः प्रीतिः"** का कथन चरितार्थ हो रहा है।

---

1. र. च. 7/107
2. र. च. 7/112

काव्य के आठवें सर्ग के 139 वें श्लोक में सूक्ति प्रयोग है –

भ्रात्रा त्यक्तस्तथापन्न सुग्रीवः परमां श्रियम्।

लेमे रामप्रसादेन प्रार्थ्यो हि महयाश्रयः।।[1]

अर्थात् "महान लोगों का आश्रय प्रार्थनीय होता है।"

सर्ग 10/39 वें में सूक्ति का सार्थक सुन्दर प्रयोग हे –

अद्य युद्धाय सन्नद्धं तमन्वग् यामि सायुथः।

अनुवृत्तिर्गुरुणां हि लोकद्वयफलप्रदा।।[2]

अर्थात् "गुरुजनों का अनुगमन सुनिश्चित रूप में दोनों लोकों (लोक–परलोक) में फल प्रदान करने वाला है।"

लक्ष्मण का कथन है कि राम का वन में मैंने अनुगमन किया। युद्ध के लिए सन्नद्ध पर उनका अनुगमन करूँगा क्योंकि गुरुजनों की अनुवृत्ति दोनों लोकों में फल देती है।

इसी प्रकार इसी सर्ग के 78 वें श्लोक में सूक्ति का उत्तम उल्लेख प्रस्तुत किया गया है –

इति विज्ञाप्य मदवाचा तामुच्छ्वासय सुव्रताम्।

स्त्रीणां हि प्रियसन्दिष्टं वियुक्तानां रसायनं।।[3]

अर्थात् वियुक्त स्त्रियों के लिए प्रिय सन्देश निश्चित रूप से रसायन होता है।"

श्रीराम सीता के प्रति सन्देश देते समय कहा कि मेरी बातों को सुनकर उन्हें आश्वस्थ करना क्योंकि वियुक्ता के लिए उनके प्रिय का सन्देश रसायन होता है।

---

1. र. च. 8/139
2. र. च. 10/39
3. र. च. 10/78

इसी क्रम में सर्ग 8/101, सर्ग 13/56 सर्ग 19/11 तथा सर्ग 17/99 में श्लोकों में सूक्तियों का अंकन है।

निष्कर्षतः 'रघुवीर चरितम् महाकाव्य में प्रत्येक श्लोक के गहन अध्ययन के पश्चात् सूक्ति अन्वेषण किया गया है क्योंकि महाकवि ने सम्पूर्ण सत्रह सर्गों में कुछ ही सूक्तियों का चित्रण किया है। जिनका उल्लेख उपर्युक्त किया गया है।

अष्टम अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य में चित्रित धर्म, समाज एवं संस्कृति का स्वरूप

अष्टम् अध्याय

रघुवीरचरितम् महाकाव्य में चित्रित धर्म, समाज और संस्कृति

रघुवीरचरितम् में चित्रित समाज

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब समाज का स्वभाव, वृद्धि तथा ह्रास, उत्कर्ष तथा अपकर्ष, व्यवस्था तथा अव्यवस्था आदि के निश्चित ज्ञानका प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। समाज से ही धर्म तथा संस्कृति प्रवाहित होती है समाज धर्म तथा संस्कृति का समवाय समाज की झांकी को प्रस्तुत करता है। संस्कृति का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के ऊपर आश्रित रहता है तो प्रतिच्छाया स्वरूप साहित्य कदापि आध्यात्म अनुप्रेरित नहीं हो सकता। यदि संस्कृति आध्यात्मिकता से युक्त है तो साहित्य और समाज प्रकृतिशः आध्यात्मिकता से सराबोर होगा। साहित्य सामाजिक उद्भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है तो सांस्कृतिक आचार-विचार के संस्कृति का सन्देश जनमानस के हृदय तक अपने आप स्वाभाविक रूप से पहुँचता रहता है। भारतवर्ष में सामाजिक जीवन के उपकरणों का सौलम्य होने के कारण, भारतीय समाज जीवन–संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को पृथक रखकर आनन्द की अनुभूति को, वास्तविक शाश्वत आनन्द की उपलब्धि को, अपना लक्ष्य स्वीकार करता है। एतदर्थ संस्कृत–काव्यं जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है। गृहस्थाश्रम भारतीय समाज का मेरुदण्ड है तथा अन्य आश्रमों की स्थिति गृहस्थाश्रम परआश्रित है। परिणामस्वरूप भारत का प्रवृत्तिमूलक समाज गृहस्थ आश्रम को पूर्ण महत्व प्रदान करता है और

इसीलिए संस्कृत–साहित्य में गृहस्थ आश्रम का सामाजिक चित्रण सांगोपांगपूर्ण तथा हृदयावर्द्धक रूप से उपलब्ध होता है। आदि महाकाव्य वाल्मीकीयरामायण गृहस्थ आश्रम की धुरी पर घूमता है। इस प्रकार समाज, साहित्य तथा व्यक्ति समसानुकूल भावों–विभावों की त्रिवेणी है जिससे कविहृदय प्रभावित होकर काव्य–पीयूष की धारा को प्रवाहित कर वाणी के रूप में काव्य की संरचना तथा सृष्टि करता है, चाहे वे आदिकवि वाल्मीकि हों, अथवा कालिदास, भारवि, माघ तथा अभिनन्द या अन्य कवि ही क्यों न हों ?

आलोच्य महाकाव्य तत्कालीन समाज की प्रतिच्छाया से अछूता नहीं है। महाकवि मल्लिनाथ ने 'रघुवीरचरितम्' के जिस सामाजिक रूप को संजोया है वह तत्कालीन समाज के रस–कुरस से सराबोर है।

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य समाज के स्वाभाविक चित्रण से प्रारम्भ होता है तथा इसका अन्त भी इसी परिवेश में होता है। प्रथम सर्ग में राम का वन प्रवेश तथा वन समाज का अविमुक्त चित्रण है। मुनि आश्रमों का सामाजिक परिवेश मुनिवृन्द, मृगसमूह, द्विजगण, वृक्ष, लता तथा सुमन आदि से आवृत्त है जो सामाजिक, सांसारिक–परम्परा से हटकर है। अयोध्या नगरी का सामाजिक–चित्रण बहुत ही कम है तथा लंकापुरी का वर्णन केवल मात्र इसके वैभव तथा वीर–शूरों तक ही अवगुण्ठित है। एतदर्थ तत्कालीन सामाजिक परिवेश का न्यून वर्णन हो पाया है। सम्पूर्ण महाकाव्य के दिग्दर्शन से सुस्पष्ट है कि सामाजिक चित्रण की दृष्टि से केवल वनवासियों, तपस्वियों, राक्षसों, कपियों, पशु–पक्षियों के जीवनयापन तथा तत्सम्बन्धी समाज का वर्णन रचनाकार ने किया है।

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य में ऐसे स्थलों तथा प्रसंगों का अभाव है जिससे तत्कालीन समाज का सम्यक् सिंहावलोकन किया जा सके। काव्य

के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि उस समय का समाज सम्पूर्णतः वर्णव्यवस्था तथा आश्रमव्यवस्था पर अविलम्बित रहा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्ण के लोग अपने अधिकार तथा विशेषतः कर्त्तव्यों के प्रति सजग थे। सन्दर्भ में मुनि शरभंग का कथन उल्लेखनीय है जब वे राम की प्रशंसा में इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों के चरित्र के बारे में अपने भाव को प्रकट करते हैं –

चतुर्वर्णस्थितिकृतां चतुराश्रमरक्षिणाम्
चतुर्वेद प्रवीणानां चतरोदन्त सम्पदाम्।
प्रशमे मुनिकल्पनां प्रकोपे रुद्रकर्मणाम्
प्रार्थिभ्यः कल्पदारुणां प्रसादे राशिवर्चसाम्।।

चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) की स्थिति स्थापित करते रहते, चारो आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) की सदा रक्षा करने वाले चारों वेद के प्रवीणों को सम्मान देने वाले, स्वयं भी उनका ज्ञान रखने वाले, अपने ऐसे सदाचरण से वे चतुर्दिक श्रीसम्पदा के पात्र रहने वाले, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की साधना में रत रहने वाले इक्ष्वाकुवंशीय नरेश रहे। राम के पूर्वजों की प्रकृति मुनियों के समान शान्त तथा गम्भीर रहती, याचकजनों के लिए कल्पवृक्ष सदृश सुखदायक तथा प्रसन्न होने पर चन्द्रमा की शीतल पीयूष वर्षिणी प्रकृति वाले होते थे तथा कुपित होने पर रुद्र रूप धारण कर लेते थे।

उपर्युक्त उद्धरण से सुस्पष्ट है कि 'रघुवीरचरितम' के समाज में चारों वर्ण, आश्रम, वेद तथा सम्पदा की प्रतिष्ठा तथा संरक्षण के नियमों का पालन किया जाता था। अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था थी। राजा प्रजापालन धर्म का अनुसरण करता था, ऐसा हमारे कवि का मानना है।

गार्हस्थ जीवन

अतीत से भारत का गार्हस्थ–जीवन अद्वितीय रहा जिसकी परिक्रमा तथा संकल्पना वैदिक ऋषियों ने की। इस व्यवस्था में पत्नी गार्हस्थ–जीवन की धुरी तथा गति रही। पति–पत्नी के समान अधिकार थे। इसीलिए पत्नी अर्द्धांगिनी संज्ञा से विभूषित रही। इसी संकल्पना को पुराण संस्कृति ने भी अंगीकृत किया। उपनिषद् का ऋषि तो पत्नी को विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना अभिहित कर सर्वसाधारण के लिए तपस्यावत कहता है –

अरण्यवासाय शरण्या जानकी नियोजिता मध्यमया सुमध्यमा।
यदम्बमालम्बितभर्तृचित्तया तया तेदेवोपकृतं भवत्कृते।।[1]

'रघुवीरचरितम्' के आद्योपान्त अध्ययन से आभासित होता हे कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश में पति–पत्नी में परस्पर सौहार्द रहा। पति ही पत्नी का जीवन तथा पत्नी ही पति का जीवन आदर्श रहा। रघुवीर पत्नी सीता इसकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। सीता राम की सहचरी तथा अनुगामिनी हैं। सीता वन में भी राज्यलक्ष्मी का त्यागकर राम की अनुगामिनी रहीं –

"अरण्यवासायशरण्य ! जानकी नियोजिता मध्यमा–सुमध्यमा।"[2]

एवं

"मध्येकृत्यसुमध्यां तां जन्मतुरतौ महोजसौ।"[3]

मल्लिनाथ तत्कालीन समाज में पतिव्रता धर्म की अवतारणा सीता के उदाहरण से करता है जिसका अंकन महाकाव्य के सर्ग 4/6 में इस

---

1. रघुवंशचरितम् 1/34
2. रघुवंशचरितम् 1/34
3. रघुवंशचरितम् 2/4

प्रकार है –

स्वैरमत्र विनियुज्य लोलतामातपे भवति यौवनोन्मुखे।

लक्ष्मणाग्रजमनुव्रता सती गौतमीमभिषवाय सा ययौ।।[1]

राम भी पत्नीव्रता हैं। वे सीता के दुःख–सुख के सहचर हैं। जैसा कि धूप के तेज से सन्तप्त प्रिया को आश्रम की शीतल छाया में ले आये –

"आतपप्रसरकर्शितां प्रिया मात्र वन्धुरनयत् समाश्रमम्।"

यद्यपि तत्कालीन सामाजिक–व्यवस्था में राजाओं के अनेक रानियों का उल्लेख है लेकिन राम इसके अपवाद हैं अर्थात् एक पत्नीत्व ही कुटुम्ब का आदर्श रहा। शूपर्णखा के प्रणय निवेदन पर राम कहते हैं –

"जो तुम मुझे कहती हो (तुम्हारी दृष्टि से) उपयुक्त है; किन्तु स्वयम् अंगीकार की गयी वधु को कौन त्यागता है ? अर्थात् कोई नहीं त्यागता। मैं प्रथमतः स्वीकारी इस पत्नी का त्याग तुम्हारे लिए नहीं कर सकता। बहुपत्नीत्व अनौचित्य सभी कार्यों में उत्पन्न सुखमार्ग को कुण्ठित करने वाला है इसलिए विवेकवान् पुरुष इस बहुपत्नीत्व को कैसे आदर दे सकता है ? इसका दृष्टान्त आधोलिखित श्लोकों में द्रष्टव्य है –

युक्तमेतदिह यदब्रवीषि मांकस्त्यत्यमिसृतां स्वयं बधूम्।

अप्यहं प्रथमसम्पृताभिमां त्वत्कृतेन परिहातुमुत्सहे।।[2]

मत्सरेणदधतीमयुक्ततां सर्वकर्मसुजनः सचेतनः।

कुण्ठतां सुखपद्यं वितन्वतीमाद्रियेत बहुदारतां कथम्।।[3]

इससे स्पष्ट है कि मल्लिनाथ के 'रघुवीरचरितम्' में तत्कालीन समाज

---

1. रघुवंशचरितम् 4/6
2. रघुवंशचरितम् 4/55
3. रघुवंशचरितम् 4/56

में एकपत्नीत्व का आदर्श था। उस समय की स्त्रियाँ शुद्ध चरित्र सम्पन्न हुआ करती थीं। लंका पर विजय पाने के पश्चात् अयोध्या आगमन पर स्वयं राम ने लोकमर्यादा की अक्षुण्यता के लिए कपि सेना, मुनिवृन्द तथा देव–समाज के समक्ष सीता की सच्चरित्रता परीक्षण कराकर ही पुनः उनको स्वीकार किया जैसा कि अधोलिखित श्लोकों से सुस्पष्ट है –

ततोऽनुज्ञाप्य गिरिशं विधिं देवानृषी नपि।
चकाराग्नौ विशुद्धां तां जानकीं सत्यसश्रंवः
निर्दग्धाशेषक़रणां विप्रलम्भाग्निनाविभोः।
स तामाप्याययामास शीतलः शपथनलः।
रामस्तस्य समाजस्य मतेनमतिमत्तमः।
विशुद्ध–चरितः शुद्धां धर्मपत्नी समग्रहीत्।।[1]

राम ने अपनी धर्मपत्नी को अग्नि में शुद्धि के पश्चात् ही समुपस्थित देव तथा ऋषि समाज के समक्ष अंगीकृत किया। तत्कालीन सामाजिक–व्यवस्था में पतिव्रता धर्मपरायण नारियाँ आदर्श की प्रतीक थीं। अशोक वाटिका में स्थित सीता की अवस्था का कवि सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करता है –

धृतैकवेणांमुवि केवलायां निषेदुषीं क्षौमकृतोन्तरीयाम्।
प्रलम्बधूम्रालकरराजि वक्रं तस्या ददर्शातकरावसक्तम्।
विशुद्धमुक्तामणिदाभ शुभ्रानलक्ष्य तस्या नयना–श्रुविन्दन्।।[2]

हनुमान द्वारा अंगूठी प्रदत्त किये जाने पर आश्वस्त होकर सीता ने हनुमान को वस इतना ही संदेश दिया कि जिस तरह भी हो अनुज लक्ष्मण–सहित आकर रावण का बध कर मुझे अपनी पुरी ले चलें। यह है दूतरूप हनुमान के समक्ष आदर्श भारतीय पतिव्रता आदर्श नारी की

1. रघुवंशचरितम् 16/78–80
2. रघुवंशचरितम् 12/44–46

मर्यादा –

येनकेनचिदुपेत्य वर्त्मना सानुजः प्लवगसेनयावृतः।

रावण सहबलै निहत्य मां स्वांपुरींनयतुकोसलेश्वर।।[1]

तत्कालीन समाज में पाणिग्रहण संस्कार स्वयंवर से होता था। युवा कन्याएँ स्वयंवर का चुनाव करती थीं। राजा जनक ने सीता स्वयंवर का आयोजन किया था –

"सकौतुकं कौशिक मन्वगीयुषाहरस्य चापं विकलं वितन्वता।"[2]

अभद्र तथा भ्रष्ट नारियाँ भी तत्कालीन समाज में थी जिसका साक्षात् प्रमाण सूर्पणखा से दुराचरण से मिलता है। उसने राम से आग्रह किया कि मैं आपकी अनुगता होकर इस वन में फल–मूलादि ` रात–दिन सेवा में रत रहूँगी, मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करें –

काननादृषि सुरस्वधाभुजामर्हणायफलमूलवर्हिषाम्।

सहंतीरूपनयनन्त्यहर्निशं त्वामहं परिचराम्यनुव्रता।।[3]

तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र थीं जिसका प्रमाण है कि बालि ने स्वयं पुत्र अंगद तथा पत्नी तारा को भाई सुग्रीव के अधीन कर दिया था –

इतः परस्तात् पुत्रो मे, रक्षितव्योऽयमंगदः।

तारा चेत्युक्तवान् वाचं ददौ भात्रे निजाश्रियम्।।[4]

तत्कालीन समाज मातृ भव, पितृदेवो भव, अतिथि देवो भव की उदात्त पवित्र भावना से परिपूरित था। माता का पद सर्वोच्च सम्मान तथा

---

1. रघुवंशचरितम् 13/52
2. रघुवंशचरितम् 1/22
3. रघुवंशचरितम् 4/51
4. रघुवंशचरितम् 8/136

परमप्रियता का था। पिता के पति अगाध सम्मान था। सहोदर भाइयों में अगाध प्रेम था। राम को वनवास यद्यपि माता कैकेयी के षड़यंत्र से हुआ था फिर भी वे माता के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव रखते हैं। जैसा कि प्रमाण है कि लंका विजय प्राप्ति के पश्चात अयोध्या प्रत्यावतित राम ने राजप्रासाद में प्रवेश करते ही तीनों आदरणीयामाताओं का प्रथमतः चरण वन्दन किया –

आविश्य मूलभवनं विहितोपचारं
धात्री–जनेन सहसानुगतः सदारः।
स्नेहस्नुतस्तनमुखं शिशिराब्रुनेत्रं
मातृत्रयं स समवन्दत् निर्विशेषम्।।[1]

माता कैकेयी द्वारा दुष्कृत्य किये जाने पर भी राम का भरत के प्रति सौहार्द तथा स्नेह था। राम ने भरत को आशीष रूप में अपनी चरणपादुका प्रदान कीं –

"प्रदाय सद्यः कृपया स्वपादुके यथागतं सा गमिता किलत्वया।"

भाई–प्रेम का साक्षात् प्रमाण है, जब राम सीता को भाई भरत की ओर संकेत करते हैं –

विज्ञाप्यमाने पवनात्मजेन मदागमे सम्मृतभक्तिभारः।
प्रत्युद्गमायेष मतिं विधत्तेपश्यास्य सौभ्रात्र मतिप्रदम्।।
अस्तोपचारोच्छवसितांगरेखो मत्पादुकोत्तसजटानिलन्धः।
चीराम्बरानद्धकटि क्रशीयानयं मुनीनामपि कौतुकाय।।[2]

आदर्श भाई लक्ष्मण रामानुगामी बनकर वनवास से अयोध्या प्रत्यावर्तन

---

1. रघुवंशचरितम् 17/93
2. रघुवंशचरितम् 17/70–73

की पूरी अवधिपर्यन्त सेवक भाव का निर्वहन करते रहे।

तत्कालीन समाज में गुरुजनों को सम्मानीय गौरवास्पद स्थान प्राप्त था। जब राम सानुज, कपिराज, मुनिवृन्द तथा विभीषण आदि सहित विमान से उतरे तो पुरवासियों, बन्धु–बान्धवों, परिजन आदि के साथ आगे–आगे कुलगुरु वशिष्ठ चल रहे थे। स्वागत–सत्कार तथा राज्याभिषेक आदि सभी क्रिया में गुरु वशिष्ठ के मन्त्रणा के अनुसार सम्पादित हो रही थी। इस तरह सामाजिक–संस्कृति में गुरुजनों का महत्त्व था।

'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य की सामाजिक व्यवस्था श्रंगार तथा प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था जिसका प्रचलन स्त्री तथा पुरुष दोनों वर्गों में था। स्त्री पुरुष आभूषण भी धारण करते थे। सुवासित सामग्री का भी प्रयोग किया जाता था। यथा –

केशवाससुभंगशिखामणीं,

प्रश्रिता विनिदवे तदज्जलौ।[1]

केश प्रसाधन के लिए वासयुक्त किसी विशिष्ट सामग्री का प्रयोग होता था। सीता ने राम को अभिज्ञानस्वरूप प्रदत्त करने के लिए केशवाससुभग–चूड़ामणि हनुमान की अंजलि में अर्पित किया। स्त्रियाँ पुष्पविशेष द्वारा भी स्वयं का श्रंगार करती रहीं –

"तवसुरभिकुसुमजातं तस्याः केशैः प्रसाधयिष्यामि।"[2]

राम विचकिल (चमेली) से मृगाक्षी सीता का पता पूछते और कहते हैं, मुझे दिखा दो मैं तुम्हारे कुसुमपराग से उसके केशों का श्रंगार करूँगा। नूपुर, चूड़ामणि, अंगुलीयक, कुण्डलवलय आदि की चर्चा प्रकारान्तर से काव्य

---

1. रघुवंशचरितम् 13/59
2. रघुवंशचरितम् 9/13

में आगत है। मार्ग में राम ने सीता चरणाम्बुजच्युतम् –

"अवलोकयति स्मनुपुरंझटितिभ्रष्टभिवग्रहं दिवः।"[1]
"अथविचित्रममणिद्युतिमञ्जरी कवलिताखिलदिग्वलयं विभुः।"[2]
"अरुणरुचिमुखं विराजमानं ज्वलितरुचामणिकुण्डलद्वयेन।"[3]

कंठहार धारण करने की भी उस समय सामाजिक परम्परा थी।

"उदन्वदम्भः परिवानलम्बावसुन्धरायाइवहारयष्टिः।"[4]

यहाँ "कवि गोदावरी को पृथ्वी के कण्ठ का हार कह रहा है और पुनः वह यमुना के स्वरूप का भी इसी प्रकार वर्णन करता है।"[5]

तत्कालीन समाज में क्रीड़ा, हास–परिहास, आमोद–प्रमोद आदि का भी प्रचलन रहा। क्षत्रियों का मनोरञ्जन आखेट करना था। यथा –

"रामं प्रभो पश्यमृगं विचित्रम्।
क्रीड़ार्थभस्मै स्पृहयालुरस्मि समानयैनं समदित्वर्थ वा।"[6]

धर्म और संस्कृति –

भारत का प्राण धर्म में बसता है। आस्तिकता, सर्वशक्तिशाली ईश्वर की जागरूकता सत्ता में अटूट विश्वास भारतीय धर्म की आधारशिला है। भगवज्जन होते ही मोह की बेड़ी खुल जाती है और जीव ज्ञान की मीठी

---

1. रघुवंशचरितम् 9/1
2. रघुवंशचरितम् 3/78
3. रघुवंशचरितम् 7/85
4. रघुवंशचरितम् 11/6
5. रघुवंशचरितम् 17/65
6. रघुवंशचरितम् 6/49

स्वतंत्रता का अनुभव करने लगता है, जैसा कि भागवत में अंकित है –

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् करागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽघिंनिगडो यावत् न ते जनाः।।[1]

प्रारम्भ से ही धर्म मानव–संस्कृति का संवाहक रहा है। धर्म ईश्वर का आत्मस्वरूप है जो मानव के समक्ष अनावृत्त तथा मुक्त प्रकट होता है जिससे दिव्य–शक्ति का स्फुरण होता है। धर्म मानव जीवन का स्वाभाविक विकास है। केवल मानव की प्रकृति ऐसी है जिसमें पदार्थ से लेकर परमात्मा तक के प्रकृत स्वरूप के प्रत्येक स्तर का समावेश होता है। मानव अपने पञ्चभौतिक शरीर से अपने को पृथक् कर सकता है तथा एक विशुद्ध चेतना को प्राप्त कर सकता है उसकी अविकारी आत्मतत्त्व की प्राकृत दशा है। जीवन की प्रमुख प्रेरणा धर्म है। जीवन–पद्धति के रूप में धर्म का प्रयोजन चिरन्तन सत्ता की खोज है। धर्म की आध्यात्मिक संस्कृति होती है जिसमें सामान्य अनुभव से परे एक शक्ति का सन्धान करते हैं और उसके प्रति आत्म–निवेदन का भावावेग हमारे भीतर होता है तथा ईश्वरीय शक्ति के साक्षात्कार का स्फुरण हो जाता है जिससे ब्रह्मानन्द प्राप्त कर मनुष्य अभय हो जाता है जैसा कि तैत्तिरीयोपनिशद् में उल्लिखित है –

"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन्।"[2]

एक मात्र परमेश्वर का साक्षात्कार करने वाले पुरुष के लिए कौन सा मोह और कौन सा शोक रह जाता है जैसा कि –

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।"[3]

---

1. भागवत, 10/14/66
2. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/9/1
3. ईशावास्योपनिषद्, 7

धर्म का अभिप्राय –

धर्म शब्द की व्याख्या करना सरल नहीं हे, क्योंकि यह आदिकाल से ही मानव के विश्वास तथा आस्था का सम्पुट है। यह व्यक्ति के स्वयं अनुभूति पर आधारित है कि वह धर्म को किस रूप में धारण करे। पूजा, जप, अर्चना, माला, तिलक, स्तुति आदि धार्मिक आस्था के प्रतीक है धर्म नहीं। भारतीय दृष्टिकोण से मनुष्य जो धारण करे वही धर्म है। इस आशय से महाभारत में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गयी है –

"धारणाद् धर्म इत्याहु धर्मो प्रजा।"[1]

धर्म का उद्‌देश्य व्यक्ति को आध्यात्मिकता आमुख करना है ताकि उसे परम सुख, शान्ति तथा सन्तोष प्राप्त हो सके। परमात्मा एक सर्वोच्च अवधारणा है जो सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापी है तथा संसार का सृष्टिकर्ता, नियामक, पालनकर्ता तथा संहारक है। सत्यम्, शिवं, सुन्दरम् ईश्वर का वास्तविक स्वरूप है जिस भावना में स्नात होकर मानव समाज एक दूसरे से प्रेम तथा सहानुभूति का अनुपम व्यवहार करता है तथा अहमन्यता और आडम्बर को सहजता से त्यागकर विश्व–बन्धुत्व तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पवित्र भावना में विनमज्जित हो जाता है तथा अनेकत्व में एकत्व का आभास करने लगता है। इस प्रकार धर्म मानव–जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों तथा मानव का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करना है। व्यापक अर्थ में धर्म का परमतत्व आत्मा का परमात्मा में विलय से है तथा समष्टि में व्यष्टि का समामेलन है।

इस प्रकार विभिन्न मान्यताओं तथा विविधताओं के आधार पर धर्म का सार एवम् अभिप्राय किसी पारलौकिक तथा अतिमानवीय महाशक्ति की

---

1. महाभारत, शान्तिपर्व,

परिकल्पना तथा आस्था से है जो ईश्वर संज्ञा से अविहित है तथा जो सार्वभौम तथा सार्वकालिक परम अलौकिक सत्ता से अभिभूत है।

संस्कृति का अभिप्राय –

साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन होता है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के अन्तः से अपनी मधुर तथा रम्य झांकी सदा से प्रस्तुत करती आयी है। संस्कृति की मुखर वाणी साहित्य है जिससे त्रिकाल संस्कृति की धारा का चिरन्तन प्रवाह होता है। संस्कृति के उचित प्रसार तथा प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। संस्कृति का मूल स्तर यदि भौतिकवाद पर आश्रित रहता है, तो साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता और संस्कृति के गर्भ में आध्यात्मिकता की भव्य भावनाएँ हिलोंरे मारती रहती हैं तो साहित्य भी आध्यात्मिकता से अनुप्राणित होगा। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचारधारा की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का दपर्ण है, तो सांस्कृतिक-आचार तथा विचार के उन्मुक्त प्रचारक तथा प्रसारक होने के हेतु संस्कृति के दिव्य सन्देश को सर्वसाधारण के अन्तःस्थल तक लयात्मकता से अंकुरित होने के कारण, संस्कृति का वहन होता है।

भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग तथा बलिदान से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवनों में संरक्षित एवं संवर्धित सम्पन्न भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक स्वरूप संस्कृत–भाषा के ग्रन्थों में अपनी सुन्दर झांकी प्रस्तुत करता हुआ सहृदयों के हृदय को बरबस आकर्षित करता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, बाण, दण्डी, माघ, अभिनन्द तथा मल्लिनाथ आदि के मनोरम काव्यों के

पीयूष–रस का पान करने वाले सुधिजनों को जितने मान्य तथा आत्मस्वीकृत हैं, उतने ही वे भारतीय संस्कृति के दिव्य तथा विशुद्ध रूप से चित्रण करने के कारण भी समादरणीय हैं। भारतीय संस्कृति का कवि समाज की विशुद्ध शान्त वातावरण अपनी काव्य–साधना में तल्लीन होकर सामाजिक संस्कृति के सुख–दुःख की भावना, दीन–दुःखियों की व्यथा–भावना तथा सुखी जीवों के सुख पर अपनी काव्य–वीणा को झंकृत करता रहा है। भारत का कवि सदा से अपने रचित काव्यों में सर्वसाधारण के स्पन्दित हृदय के तथ्यों तथा प्रवृत्तियों का जितना अंकन करता रहा है, उतना ही वह अपने देश की संस्कृति के भी शाश्वत चिरन्तन आध्यात्मिक विचारों को अपने काव्यों में अंकित करता रहा है। भारतीय संस्कृति का निखरा रूप संस्कृत–भाषा में निबद्ध साहित्य में परिलक्षित होता है। बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार तथा संवर्धन तलवार के सहारे नहीं हुआ बल्कि लेखनी के सहारे हुआ। आज भी देश की संस्कृति प्रवाहन, गठन तथा प्रवहन संस्कृत–साहित्य के महाकवियों की भाव–अभिव्यञ्जना से ही होता जा रहा है।

'संस्कृति' शब्द 'क' धातु में सम उपसर्ग आकर 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका मूल अर्थ है – 'साफ या परिष्कृत करना। यह शब्द 'अच्छी स्थिति' या 'सुधरी हुई स्थिति' का बोध कराता है। संस्कृति शब्द 'संस्कार' शब्द का वंशज़ है जिसका अभिप्राय शुद्ध करने या सुधारने से है। वास्तव में संस्कृति मनुष्य की ऐतिहासिक विरासत है। अतीत से संस्कृति और समाज एक दूसरे के पूरक रहे हैं। मानव सृजित सुन्दर तथा अच्छी बातों का समुच्चय संस्कृति है जिसका समर्थन सर्वश्री वेरको तथा अन्य विद्वानों ने किया है –

"Although the investigation of social scientists have shown that culture is not innate but learned, never the less the pressuse to acquire this learning is so strong that it is inescapable".[1]

यद्यपि समाजशास्त्रियों की खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि संस्कृति जन्मजात न होकर सीखी जाती है, फिर भी इसके सीखने को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।''

मैकाइवर ने संस्कृति की परिभाषाइस प्रकार दी है –

"Culture is the expression of our nature in our modes of living and of thinking in our everyday intercourse in art, in religion, in recreation and enjoyment."

संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोररंजन और आनन्द में पाये जाने वाले रहन–सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

राल्फलिंटन के शब्दों में –

"A culture is the configuration of learned behaviour and results of behaviour whole component elements are shared and transmitted by the members of a particular society."

संस्कृति सीखे सीखे हुए व्यवहारों और व्यवहार–परिणामों की वह व्याख्या है जिसके निर्माणकारी तत्व किसी विशिष्ट समाज के सदस्यों द्वारा प्रयुक्त तथा संचालित होते हैं।

1- D.V.A. Vercoand others "The founde of education, P. 72.

भारतीय संस्कृति ने प्रारम्भ से इन्द्रिय, मन तथा वुद्धि से प्राप्त अनुभव को परम सत्य न मानकर आत्मा सें प्राप्त अनुभव को सत्य रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि आत्मा से अधिक सूक्ष्म और कुछ नहीं है।

निर्मयता, अन्तःकरण की शुद्धता, तत्त्वज्ञानप्रयास, इन्द्रियों का दमन स्वाध्याय, तप, मन, कर्म तथा वचनबद्धता, अहिंसा, सत्यभाषण, अक्रोध, त्याग, शान्ति, क्षमा, अनासक्ति, चित्त की कोमलता, धैर्य, अभ्यान्तर, सुचिता, निरभिमानता आदि मानवीय गुण भारतीय संस्कृति के अंग हैं।

इस प्रकार संस्कृति धर्म से आवेष्ठित है। दोनों एक दूसरे के अभिन्न तथा पूरक हैं। धर्म तथा संस्कृति सार्वभौम है तथा सबके सुख तथा समृद्धि की कामना करते हैं। अवतारी महापुरुषों ने भी धर्म तथा संस्कृति की स्थापना किया है जैसा कि श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंघापनार्धाय संभवामि युगे युगे।।"[1]

'रघुवीरचरितम' में भारतीय दृष्टिकोण से धर्म तथा संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया गया है जिसमें हमारे कवि ने रघुवीर को धर्मावतार मानते हुए सनातन धर्म की संस्थापना की सहज अपेक्षा की है। रघुवीरचरितम् महाकाव्य में रघुवीर कथा के अमृतरस से आल्पावित भारतीय संस्कृति तथा धर्म के सार्वभौम हितेषण का पोषक हमारा कवि है। रामकथा का रसोद्रेक धर्म तथा संस्कृति के निःश्वसन में अविच्छिन्न

---

1. श्रीमद्भगवत्गीता, चतुर्थोध्याय श्लोक 7–8, ज्ञानसत्र प्रकाशन मन्दिर, म0प्र0

गति से एक ऐसी श्रोतस्विनी प्रवाहित करता है जिससे श्रेयस एवं प्रेयस का स्वरूप मण्डित होता है जहाँ भारतीय धर्म तथा संस्कृति के अनुरूप समुज्जवलता, सौमनस्य, निश्छलता तथा मागल्य का संवर्धन कवि ने अपनी वाणी से किया है। कवि वेदवेद्य परमात्मा के अनन्त एवम् अनवद्य स्वरूप का अंकन किया है। कारण कि वेदवेद्य परमब्रह्म दशरथसुत राम के रूप में जब प्रकटे तो साक्षात् वेद भी रामायणस्वरूप महाकवि की वाणी में अवतरित हो गये। यथा –

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे,
वेदः प्राचेतस्त्रा दासीत् साक्षाद्राभायणात्मजा।।"[1]

'रघुवीरचरितम्' में महाकवि मल्लिनाथ ने धर्म तथा संस्कृति की अवधारणा तथा प्रयोजन को स्पष्ट किया है जैसा कि महाकाव्य के प्रथम सर्ग में धर्म तथा संस्कृति का चित्रण किया गया है –

"श्रियः शिवंधाम सदारसोदरः प्रविश्य रामः पितृवाक्यगौरवात्।
वनं महद् दण्डकभाश्रमः सतां तपस्विनामाश्रमजातभैक्षत।।"[2]

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने आश्रमव्यवस्था की संस्कृति, दशरथ (पिता) का आज्ञापालन, पत्नीव्रती राम भारतीय धर्म तथा संस्कृति के रूप में अभिनन्दित किया है।

तपसाधना तथा समाधि प्राचीनकाल से धर्म तथा संस्कृति के सांगोपांग रहे हैं जिसका चित्रण कवि ने निम्नलिखित श्लोक में किया

---

1. रामायण मीमांसा, पृ0 70
2. रघुवंशचरितम् 1/1

है –

"तपः समाधिस्थिरगात्रचेतसां तपोमृतां यत्र पिशंगकान्तिषु।

जटाटवीषु प्रतिवद्धनिश्चयाः कलायकर्माकलयन्ति पवित्रणः।।"[1]

अतिथि देवो भव भारतीय धर्म तथा संस्कृति है जिसके प्रतिमान् में वनवासी महर्षिगण प्रसन्नपूर्वक हाथों में फलमूल लेकर आश्रम में पधारे। श्रीराम का आतिथ्य–सत्कार करते हैं यथा –

"निशम्यतं प्राप्तमरण्यवासिनः प्रियंविद्यातुं फलमूलपाणयः।

विमुक्तवन्धा अपि पक्षपातिनः प्रपेदिरेहर्षयुता महर्षयः।।"[2]

विनयशीलता तथा श्रेष्ठजनों के प्रति अभिवादन भाव धर्म तथा संस्कृति है, क्योंकि राम अपना धनुषउतार कर आये हुए तपस्वियों को सादर प्रणाम करते हैं तथा अपने लिए उनमें प्रसन्नता की कामना करते हैं जैसा कि –

"निशम्य तानापततस्तयोधनाञ्जाववेनमौर्वीमवरोप्यकामुर्कात्।

प्रसीदतास्मास्वितिवाचमादरादुदीर्यतेभ्यः प्रणनाम राघवः।।[3]

अस्त्र–शस्त्र चिद्या का प्रशिक्षणकुलगुरु द्वारा प्रदान किया जाता था जिससे यज्ञ विघ्न–बाधाओं को दूर करना राजा का कर्त्तव्य होता था जो धर्म तथा संस्कृति का द्योतक था जैसा कि अधोलिखित से स्पष्ट है –

"यदासिनीतःक्रतुलोपशान्तये तपोवनंगाधिसुतेन सानुजः।

अवाप्तवानस्त्रभयीं च सत्क्रियामतः परं नः क्षपिता विपत्तयः।।[4]

शाप संकट से मुक्ति प्रदान करना तथा सम्पत्तियों के प्रयोग से

---

1. रघुवंशचरितम् 1/9
2. रघुवंशचरितम् 1/10
3. रघुवंशचरितम् 1/11
4. रघुवंशचरितम् 1/15

दुःखार्त लोगों के लिए करना कवि श्रेयस्कर मानता है जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में वह व्यक्त करता है –

"अमोचिशापव्यसनादहल्यायाभवत्पदाम्मोजपरागपूतया।
मेवद्विधानां न तु चित्रमीदृशं महीयसामार्तहितैकसम्पदाम्।।[1]

कवि ने वर्णाश्रम व्यवस्था के कर्त्तव्य पालन को भी अपने महाकाव्य में कराया है। प्रथम सर्ग के श्लोक 26 में हमारे कवि ने क्षत्रिय धर्म तथा संस्कृति के पालन तथा सम्मान प्रकटन का चित्रण किया है। यथा –

"तमध्वनि क्षत्रियगन्धदुर्दमं विजिव्य रामं जमदाग्निनन्दनम्।
स्वतेजसा मानद! शुश्रुम स्फुटं स्वधर्मनिष्ठामनयद्भवानिति।।"[2]

कवि धन संग्रह का उद्देश्य धर्म अनुगमन के हेतु अभीष्ट करता है तथा अनुज धर्म के कर्त्तव्य संस्कृति का उद्बोधन लक्ष्मण के स्वरूप में करता हुआ चित्रित करता है –

"अयं तु सौमित्रिरमित्रमर्दमस्त्रणाय मत्वामहतीमपि श्रियम्।
भवन्तमेवानुगतः सुखोचितः स्वनुष्ठितं धर्ममिवार्थसंग्रहः।।"[3]

'रघुवीरचरितम्' में कवि भक्तिभाव, सेवाभाव तथा अनुलेपन संस्कार को संस्कृति का प्रतीक मानते हुए कहता है जो कि भक्त अनसूया द्वारा सीता के प्रति प्रदर्शित किया गया –

"तदानसूयात्रिप्रग्रहो मुदातपस्ययास्यावपुरन्वलेपयत्।
समन्वितार्थ निजनाम तन्वतीनकस्य लक्ष्म्यैमहतां समागमः।।"[4]

मल्लिनाथ ने अपने काव्य में चतुर्वर्ण, चतुराश्रम, चतुर्वेद तथा चतुरोदन्त

---

1. रघुवंशचरितम् 1/19
2. रघुवंशचरितम् 1/26
3. रघुवंशचरितम् 1/33
4. रघुवंशचरितम् 1/43

सम्पदा की धर्म तथा संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया है। यथा –

"चतुर्वर्णस्थितिकृतां चतुराश्रमरक्षिणाम्।
चतुवेदप्रवीणानां चतुरोदन्तसम्पदाम्।।"[1]

प्रबोध विनय से विद्या का पालन करना कवि की संकल्पना है –

"रेजतुः पालयन्तौ गै मैथिलीं रामलक्ष्मणौ।
तमः प्रमोदिनीं विद्यां प्रबोधविनयाविव।।"[2]

अर्थात् अन्धकाररूपी अज्ञान का प्रभेदन प्रबोधविनय से सम्पन्न विद्या द्वारा होता है, ऐसी संकल्पना कवि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के अनुरूप करता है।

मल्लिनाथ से 'रघुवीरचरितम्' के विभिन्न स्थलों पर सज्जनों की प्रशंसा, दुर्जनों की निन्दा, भवितव्यता, उत्तम राजा की प्रशंसा, कुनृपति की निन्दा, लक्ष्मी की निन्दा व प्रशंसा, चरित्र की महत्ता आदि का अतिशय प्रभावशाली ढंग से निरूपण किया है जो कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति का सुन्दर निरूपण है। कवि ने पुनर्जन्म समृद्धि भारतीय धर्म तथा संस्कृति का चित्रण किया है –

"वैतानिकानलोद्गीर्णैर्हव्यपाकसुगन्धिभिः।
समृद्धिहेतोर्लोकानां मेघशाबैरिवोत्थितैः।।"[3]

भारतीय धर्म तथा संस्कृति में मन्त्रोच्चारण, मंगलाचरण, वेदोच्चार महर्षियों की जटायें तथा तरुओं के कोठरों में स्थित शुकों द्वारा वेदोच्चार

---

1. रघुवंशचरितम् 2/30
2. रघुवंशचरितम् 2/3
3. रघुवंशचरितम् 2/18

तथा मन्त्रोच्चार की आवृत्ति का रोचक वर्णन है। यथा –

"शुकैर्ऋद्धीणां शृष्वद्भिर्मन्त्रोच्चरितमध्वरे।

अन्वभ्यस्त वषट्कारं तरुकोटरसंश्रयैः।।"[1]

'रघुवीरचरितम्' में आश्रम संस्कृति की अभिप्रेरणा है जहाँ मृग, पोत तथा तरुओं का समूह प्राकृतिक सौन्दर्य को समेट लिया है –

"स्नुतमग्रस्तनं मातुश्वंम्बतामन्तरान्तरा।

मुग्धाना मृगपोतानां ताण्डवैरं कितांगणम्।।"[2]

देवजातियाँ, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, चारण आदि संगीत, नृत्य तथा उपासना में तल्लीन होकर आत्मविभोर है जोकि भारतीय धर्म तथा संस्कृति का सुन्दर उपक्रम है। यथा –

"यत्र किन्नरगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः।

द्वन्द्वीभूय यथाकालं तपोधनमुपासते।।"[3]

अभिनय, गति, लय, ताल तथा हर प्रकार संगीत वादन तथा गायन का अंकन संस्कृति का अद्भुत अभिप्रेरण प्रस्तुत है। यथा –

"अंगहारोच्वलच्चारुहारयाष्टिस्वनोद्धुरः।

षडंगभिनयोदञ्चत्कंकण ध्वनिबन्धुरः।।"[4]

'रघुवीरचरितम्' में संगीत विद्या, गायन, वादन यथा मृदंग, वेणु, नगाड़ा, दुन्दुभि, विपञ्र्चा, तुरही आदि वाद्य यन्त्रों का वर्णन है –

"स्मितानुयात्राशिशिरैरीक्षितैर्हृदयंगमैः।

संगहतविद्ययाचास्य प्रायतन्त विलोभने।।

---

1. रघुवंशचरितम् 2/22
2. रघुवंशचरितम् 2/23
3. रघुवंशचरितम् 2/58
4. रघुवंशचरितम् 2/68

निर्ममे निर्ममस्तस्याः क्रोडे माणिमयं गृहम्।
मृदंगरंगपिञ्जोलाविपंञ्चीताल वेणुमत्।।"[1]

'रघुवीरचरितम्' विभिन्न आभूषण जैसे चूड़ामणि, अंगूठी, बाजूबन्द आदि का चित्रण है, क्योंकि उस समय की रमणियाँ पर्याप्त आभूषण धारण करती थी जो कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति का पिरचायक है। यथा –

चूडामणिं तदुपनीतमवेक्ष्य दृप्ताः
प्रत्यागता मधुवनं प्रतिपद्य सद्यः।
तत्पालकं दधिमुखं विषमप्रवृत्तिं,
निर्मत्र्यते मधु पपुर्हनुमत्सहायाः।।"[2]

काव्य में चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का चित्रण है जो कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति का प्राण है। यथा –

"चतुर्भिरग्रैर्ज्वलिते तदीय श्रृंगे चतुर्वर्गमिव प्रभेतुम्।
लोकस्य यत्ते मणिरश्मिराजीनीराजिताशावलयेव्यभाताम्।।"[3]

अग्निसाक्षी से मित्रता स्थापित की जाती थी जैसा कि सुग्रीव तथा राम की मित्रता के सन्दर्भ में काव्य में चित्रित किया गया है –

"घटितं दिष्टयोगेन तन्नवीकृत्य साम्प्रतम्।
त्वया तत्सख्यमिच्छामि यस्य साक्षी हुताशनः।।"[4]

'रघुवीरचरितम्' में कृषि रक्षा तथा तत्सम्बन्धी उपकरणों का भी वर्णन

1. रघुवंशचरितम् 2/78–85
2. रघुवंशचरितम् 13/92
3. रघुवंशचरितम् 6/41
4. रघुवंशचरितम् 81/20

है जो कि तत्कालीन ग्रामीण संस्कृति थी। यथा –

"विक्षेपमुखरैर्यन्त्रैरुत्जासित शुकोत्कराः।
केदारोपान्तमासेदुर्गायन्त्यः शालिगोपि।।"[1]

काव्य में क्रीड़ा तथा खेलकूद की संस्कृति का उल्लेख है। यथा –

"स कन्दुकक्रीडनकं शिरोभिर्लीलाम्बुजानि त्रुटितैर्भुजाग्रैः।
वापीरसृक्कर्दभवाहिनीभिर्वीरश्रियः कल्पयतिस्मवीरः।।"[2]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विवरणों के अनुसार हमारे कवि मल्लिनाथ ने 'रघुवीरचरितम्' में समाज, धर्म तथा संस्कृति का समन्वित चित्रण बखूबी से किया है।

---

1. रघुवंशचरितम् 10/5
2. रघुवंशचरितम् 5/33

उपसंहार

नवम् अध्याय

उपसंहार

'रघुवंश' कुल में आविर्भूत वीर तथा अवतारी मर्यादापुरुषोत्तम राम का चरितगान है – 'रघुवीरचरितम्' । रघु तथा वीर का युग्म रघुवीर है। इसी आशय से महाकवि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने अपने रामकथाश्रित रचना का नामकरण 'रघुवीरचरितम्' किया जिसमें राम के चरित का विशद् विवेचन किया गया है। डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी के शब्दों में –

"रघुवीरचरितं श्रीरामस्य वनवासवृत्तान्तेनारभ्यते। षोडसे सर्गे रावणवधपर्यन्तं चरितं परिसमाप्यते। अस्यान्तिमे सप्तदशे सर्गे राज्याभिषेकवृतान्त उपनिबद्धः। 'रघुवीरचरितम्' सर्वलक्षणोपेतं उच्चकोटिकं महाकाव्यमस्ति। प्राधान्येनात्र श्रृंगारकरुणवीररसानां परिपाकं पदं विधत्ते। प्रसादगुणाढ्येऽ–स्मिन्महाकाव्ये यथावसरं माधुर्यमोजश्वापि विलसतः। विषयवस्त्वनुरूपमेव प्रकृतेर्मनोहरं वर्णनं प्राचुर्येणोपलभ्यते। आस्वादयन्त्वत्रं सुधियः कामपि काव्यसौन्दर्यमाधुरीम्।"[1]

"अथ विचित्रमणिद्युतिमञ्जरीकवलिताखिलदिग्वलयं विभुः।
हिमगिरेरपि दर्पमसारतां नगमयं गमयन्तमवैक्षत।।"[2]

मल्लिनाथ ने 'रघुवीरचरितम्' में रघुवीर राम के चरित का अनुपम तथा अद्वितीय पक्ष को अपूर्व सफलता के साथ मण्डित किया है। अपने

---

1. हस्तलेख, डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, उपाचार्य, संस्कृत विभाग म0गां0 काशीपीठ, वाराणसी।
2. रघुवीरचरितम् 9/1

निज मौलिक अवधारणाओं के कारण रामकथाश्रित काव्यों के मध्य कवि को विशिष्ट तथा गौरवास्पद स्थान प्राप्त है। वह रामकथाश्रित काव्य का देदीप्यमान नक्षत्र है। कवि ने काव्यारम्भ 'श्री' शब्द से किया जिसमें उसका उद्देश्य वस्तुतः काव्य नायक के साथ ही नायिका का स्तवन भी है। इस उपक्रम में कवि पूर्ववर्ती कवियों जैसे भारवि तथा माघ से अभिप्रेरित है। 'श्री' शब्द का अर्थ लक्ष्मी है। यह लक्ष्मी मात्र नाम प्रत्यावर्तित सर्वव्याप्ता है – यहीं लक्ष्मी विष्णुपत्नी स्वरूपा कृष्णप्रिया बनी जैसा कि विष्णुपुराण का अभिमत है –

"राघवत्वे भवेत्सीता, रुक्मिणीकृष्णजन्मनि।"[1]

कथा का श्रीगणेशराम के वन–प्रवेश से होता है। वनवासी महर्षियों का स्वागत तथा स्तवन संयोजन महाकवि मल्लिनाथ के मौलिक अवधारणा का परिचायक है। महाकाय का कथानक आद्योपान्त गतिशील है; किन्तु संक्षिप्त घटनाक्रम जो बीच–बीच में प्रदर्शित है, वे मात्र पूरक तथा सहायिका के रूप में है। जैसे कि हनुमानोत्पत्ति कथा तथा स्वयंप्रभा कथा जैसा कि अधोलिखित श्लोकों में प्रमाणित है –

"गिरिदुहितरि शम्भुना निषिक्तं सकलदुरुद्वहभग्यशक्तिं तेजः।
उदरगतमभूद् यदञ्जनायाः प्रभवममुष्यमहात्मनस्तदाहुः।।"
यदयमनरराजहेतिकोटिक्षतहनुरप्यसुमिर्न वञ्चितोऽभूत्।
सुरपरिषदमुष्य दत्तकीर्तिस्थितिहुमानितिनामतेन चक्रे।।
हतासुरास्तमस्यन्धे चरन्तः शमितवजुधः।
स्वयंप्रभप्रसादेन निरक्रामन् गुहोदरात्।।"[2]

महाकवि ने 'राम कोपूर्ण अवतार के रूप में ही नहीं प्रत्युत

---

1. विष्णुपराण
2. रघुवीरचरितम् 11/15, 22 व 10/86

लौकिक भूमि पर अद्भुत एक असाधारण व्यक्तित्व रूप में प्रस्तुत किया है। अतः उनकी लौकिक लीलाएँ इस महाकाव्य की विषय सामग्री है। सीता के विरह से व्यथित राम का प्रलाप पूर्णरूपेण लौकिक है। राम के ईश्वर रूप से पूर्ण दूर अवस्थित करने वाले यत्र–तत्र स्थल भी हैं जैसा कि –

मूर्च्छतोति समय तथाविवे राघवस्य तरुणल्कवाससः।

शीतशान्तिपादि भूयसा जानकी कुन्वसरोहोष्मणा।।[1]

उपर्युक्तानुसार कवि अनावश्यक विस्तार तथा चमत्कार प्रदर्शन से अलग है।

चतुर्थ सर्ग में वर्णित घटनाएँ रामकथाश्रित 'रघुवंश' आदि काव्यों में दर्शित नहीं होतीं जैसे राम द्वारा सागर की अभ्यर्थना, उनकी अतिशय विनयशीलता, सागर के साथ शोण, गोदावरी आदि महानदियों का एक साथ उपस्थित होना कवि का नूतन प्रस्तुतीकरण है। इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग में ही शूर्पणखा का रूप वर्णन तथा छठे सर्ग में कांचन मृग का रूप चित्रण हमारे कवि के कल्पना की पराकाष्ठा है। उपर्युक्त सन्दर्भों में अधोलिखित श्लोकों का दद्धरण प्रस्तुत है –

"त्वद्वंशकर्तुः सवितुः सुतेयं यमुना सती।

उचितः खलु सम्बन्धो भवतोऽस्यां च मानद!।।

अप्यहं जलधी राम! संसक्तः सुखकर्मसु।

मदप्रभादोपचितो न जानेत्वां तथाविधम्।।

तत्र कापि मलिना निशाचरी तं प्रदेशमगमद यदृच्छया।

रावणस्य भगिनी भुजाबलक्षिप्तमर्त्यसुरदैत्यतेजसः।।

---

1. रघुवीरचरितम् 4/34 व 1/44

धूमधूम्र तनुकान्तिराबभौ या हि तापसकपालमालिनी।
यातुधानकुलनाशसूचनी कालरात्रिरिव भीमदर्शना।।
तुण्डाग्रतस्तस्य कलायनीलाद् विनिष्पतन्ती रसना बभासे।
अनुक्षणं मेदुरनादगर्भाद् घनाभ्रखण्डादचिरप्रभेव।।
विचित्रनानामणिरश्मिजालैः किर्मीरितेनोर्ध्वमुखेन तस्य।
पूच्छेन विच्छर्दितशारधाम्ना महेन्द्रचापच्छविरन्वकारि।।"[1]

मल्लिनाथ काव्य में प्राकृतिक–सुषमा में स्नात विनमञ्जित है। प्रकृति से साहचर्य कवि की स्वयं की प्रकृति की झलक है जैसा कि अधोलिखित श्लोक में सूर्यास्त का दृश्य प्रस्तुत है –

अस्तशैलशिखरावलम्बिना पद्मिनीसहचरेण तेजसा।
कल्प्यते निजरुचा दिशां मुखेष्वद्भुता घुसृणपंकचर्चना।।[2]

उल्लेखनीय है कि जिन पूर्ववर्ती रामकथाश्रित महाकवियों ने राम को भगवान् तथा अवतार रूप अंगीकार–कर उनका चरितगान किया है उनमें मल्लिनाथ सर्वोपरि तथा अग्रगण्य हैं।

शोधप्रबन्ध में प्रस्तावित नौ अध्यायों में 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य के समग्र का विश्लेषणात्मक तथा समीक्षात्मक अनुशीलन करने का हमने यथासम्भव प्रयास किया है जो कि इन महाकाव्य के सन्दर्भ में सार्थक तथा मौलिक हैं।

सर्वप्रथम भूमिका शीर्षक में महाकवि मल्लिनाथ की काव्य प्रतिभा, टीका, व्याख्या, पटुता तथा इस महाकाव्य की रचना के सम्बन्ध में विवादस्पद तथा सन्देहास्पद बिन्दुओं पर विचार विश्लेषण, के पश्चात्

---

1. रघुवीरचरितम् 14/91, 104 व 4/35–41 व 6/39–46
2. रघुवीरचरितम् 4/17

प्रामाणिकता के साथ यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि 'रघुवीरचरितम्' के रचनाकार केवल मात्र कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ही हैं। इसके साथ ही कवि को काव्य–पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करने तथा 'रघुवीरचरितम्' के विषय वस्तु की स्थापना का भी प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय में संस्कृत महाकाव्य का उद्भव और विकास के साथ–साथ महाकाव्य के लक्षणों का विवेचन करते हुए 'रघुवीरचरितम्' के महाकाव्यत्व समुचित प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में मल्लिनाथ सूरि के जीवन–परिचय, जन्म स्थान, स्थिति, काल तथा उनके कृतित्व तथा व्यक्तित्व का प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय अध्याय में विशालकाय 'रघुवीरचरितम्' के 17 सर्गों का संक्षिप्तीकरण है जिसके द्वारा इस महाकाव्य की कथा वस्तु का ज्ञान सुधिजन तथा सर्वसाधारण संस्कृत–काव्य–प्रेमियों को प्राप्त हो सके।

चतुर्थ अध्याय में इस महाकाव्य में कवि द्वारा प्रयुक्त विभिन्न स्थलों तथा प्रसंगों में अलंकार–योजना, छन्दोयोजना तथा रस एवं ध्वनि का काव्यशास्त्रीय विवेचन किया गया है। काव्य में प्रयुक्त अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों तथा उपमा, रूपक, सन्देह, दृष्टान्त, स्मरण, भ्रान्तिमान, उत्प्रेक्षा, अनुमान, अतिशयोक्ति, दीपक आदि अलंकारों का सम्यक् विश्लेषण है। छन्दों के सम्बन्ध में अनुष्टुप, वंशस्थ, वसन्ततलिका, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, शिखरिणी आदि का काव्यशास्त्रीय विवेचन है। रसों के सन्दर्भ में प्रस्तुत

काव्य का प्रधान रस शान्त है। श्रृंगार तथा करुण रस का प्रयोग यथावसर किया गया है। वीर, रौद्र तथा भयानक रसों का भी प्रयोग है। युद्ध में वीभत्स रस प्राप्त होता है। हास्य रस कम प्रयुक्त है। इस प्रकार रसों के विवेचन में कवि का प्रयास अभिनन्दनीय है।

पंचम् अध्याय में सूक्तियों के प्रयोग का तत्व है लेकिन सूक्तियों का न्यून प्रयोग किया गया है तथापि प्रयुक्त सूक्तियाँ समाज, धर्म, संस्कृति तथा व्यक्ति के लिए उपयुक्त तथा सटीकहैं।

षष्ठ अध्याय में महाकाव्य में प्रकृति का वर्णन है। मुनि आश्रमों, वन, वैभव, नदी, सरोवर, महासागर, सन्ध्या–वर्णन, प्रातः वर्णन भ्रमरगुंजन, पुष्प, पक्षी आदि द्वारा अभिवृद्ध की गयी प्राकृतिक सुषमा का कवि ने जीवन्त चित्रण किया है।

सप्तम् अध्याय में 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य के रामपक्षीय तथा रावणपक्षीय पात्रों का चरित्र–चित्रण काव्य–कला, कौशल से युक्त होकर कवि ने किया है। कवि नायक राम के दुष्ट–दलन, पौरुष प्रदर्शन, चमत्कारिक ईश्वरीय प्रभाव तथा लोक कल्याण के भावों का वर्णन करता है।

अष्टम् अध्याय में मल्लिनाथ 'रघुवीरचरितम्' में चित्रित धर्म, समाज, तथा संस्कृति की समन्वित व्याख्या की गयी है, जो समकालीन थी।

नवम् अध्याय में 'रघुवीरचरितम्' महाकाव्य पर पूर्ववर्ती रामकथाश्रित काव्यों के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है कवि

आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, अभिनन्द, भारवि आदि पूर्ववर्ती महाकवियों की रचनाओं से प्रभावित होकर उनसे अनप्रेरणा ग्रहण कर अपने मौलिक महाकाव्य में आत्मसात् करने तथा अपने निजत्व एवं मौलिकता को अक्षुण्य रखने का अप्रतिम प्रयास करता है।

संक्षेपतः 'रघुवीरचरितम्' रामकथाश्रित एक महान् तथा अद्भुत कृति है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

क्र0सं.	ग्रन्थ का नाम	:	ग्रन्थकार/सम्पादक, प्रकाशक
1.	काव्यप्रकाश	:	आचार्य मम्मट, बालबोधिनी प्रकाशन
2.	काव्यमीमांसा	:	राजशेखर, बिहार राष्ट्राभाषा परिषद् प्रकाशन
3.	काव्यादर्श	:	आचार्य दण्डी, चौखम्भा संस्करण, वाराणसी,
4.	काव्यानुशासन	:	आचार्य हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस
5.	काव्यालंकार	:	आचार्य रूद्रट, निर्णय सागर प्रेस
6.	काव्यालंकारसंग्रह	:	आचार्य उद्भट, पूना संस्करण
7.	किरातानुर्जुनीयम्	:	महाकवि भारवि, चौखम्भा संस्करण सीरीज, वाराणसी
8.	कुमारसम्भव	:	कालिदास, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
9.	कालिदास की कृतियों पर मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श	:	डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, वेदप्रकाश द्विवेदी, के 67/85–10ए, नाटी इमली, वाराणसी
10.	काव्य का स्वरूप	:	रामानन्द तिवारी, भारती मन्दिर, भरतपुर
11.	कालिदास ग्रन्थावली	:	आचार्य सीताराम , विक्रम परिषद, वाराणसी

12. कालिदास : डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
13. कृष्णचरित : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
14. काषिकावृत्ति : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
15. गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग–2 : वासुदेव उपाध्याय, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, इलाहाबाद
16. गीता रहस्य : लोकमान्य तिलक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
17. चीनी बौद्धधर्म का इतिहास : डॉ0 चाउ सिआंग, चीन, 1903
18. चिन्तामणिवृत्ति : हेमचन्द्राचार्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
19. छन्दोदर्पण : डॉ0 गौरीशंकर मिश्र द्विजेन्द्र, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
20. छन्दोमंजरी : श्री गंगादास, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
21. जैन साहित्य का इतिहास : बाबूराम प्रेमी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1956
22. जैन हितैषी : बाबूराम प्रेमी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
23. तार्किक रक्षा टीका की भूमिका : विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
24. तैत्तिरीयोपनिशद् : गीता प्रेस, गोरखपुर

25.	दक्षिण भारत का इतिहास	:	डॉ0 के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966
26.	ध्वन्यालोक	:	आनन्दवर्धन, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
27.	निघण्टु	:	
28.	नैषधचरित	:	श्रीहर्ष, विद्याविलास प्रेस, बनारस 1959
29.	निरूक्त	:	यास्क
30.	प्राचीन लेखमणि माला	:	बाबू श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1903
31.	प्राचीन साहित्य	:	रविन्द्रनाथ ठाकुर अनुवादक रामदहिन मिश्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई 1933
32.	प्रतापरूद्रीय	:	डॉ0 वी0 राघवन, 1970 संस्करण
33.	प्रतापरूद्रयशोभूषणम्	:	के0पी0 त्रिवेदी, 1909 भूमिका
34.	वाल्मिकीय रामायण	:	वाल्मिकी, निर्णय सागर संस्करण
35.	बुद्धचरित	:	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
36.	बालरामायण	:	राजशेखर, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, वाराणसी
37.	भारतीय कला ओर संस्कृति की भूमिका	:	डॉ0 बी0एस0 उपाध्याय रणजीत पब्लिशर्स, दिल्ली
38.	भारतीय साहित्य	:	आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

39.	भारतीय संगीत का इतिहास	:	उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन महन, फिरोजाबाद, 1957
40.	भोजप्रबन्ध	:	
41.	भागवत	:	
42.	मत्स्यपुराण	:	
43.	मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा	:	डॉ0 राधाकृष्ण वशिष्ठ, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर
44.	महाभारत	:	गीता प्रेस, गोरखपुर
45.	महाभाष्य प्रदीपोद्योत	:	निवाहिक, निर्णय सागर संस्करण,
46.	माधवीया धातुवृत्ति	:	काशी संस्करण
47.	मेघदूतम्	:	डॉ0 रामेश्वर प्रसाद मिश्र, मानस संध, रामभवन, सतना, म0प्र0, 1966
48.	मल्लिनाथ विषयक तथ्यों का संकलन	:	डॉ0 वी0 राघवन, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय
49.	रसगंगधर	:	पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
50.	रामकथा उद्भव और विकास	:	कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद
51.	रामचरितम्	:	अभिनन्द
52.	रामायण मीमांसा	:	करपात्रिजी महाराज, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी

53. रघुवंश संजीवनी : मल्लिनाथ

54. रघुवंश : कालिदास, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी

55. राजतरंगिणी : कल्हण, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

56. रघुवीरचरितम् : मल्लिनाथ सूरि, सं0टी0 गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1917

57. वक्रोक्ति काव्यजावितम् : कुन्तक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

58. वैदिक वाड्.मय का इतिहास : भगवदत्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

59. शोधग्रन्थ : डा0 शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

60. शिशुपालबध :

61. संस्कृत आलोचना : आचार्य बलदेव उपाध्याय, हि0स0 उ0प्र0

62. संस्कृत प्रयोग विज्ञान और कालिदासीय रूपक : डॉ0 पुरूदाविच, विन्दू प्रकाशन, उज्जैन

63. संस्कृत साहित्य का इतिहास : आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

64. सरस्वती कण्ठाभरण : भोज, निणर्यसागर प्रेस

65. साहित्यदर्पण : आचार्य विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

66.	सुकवि समीक्षा	:	आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
67.	संस्कृत कवि दर्शन	:	डॉ0 भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
68.	साप्ताहिक भारत	:	डॉ0 भाऊदाजी ओर मातृगुप्त, 6 जुलाई 1957
69.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, लीडर प्रेस प्रयाग, इलाहाबाद
70.	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	:	चन्द्रशेखर पाण्डेय, साहित्य निकेतन, कानपुर
71.	संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा और आलोचना (त्रैमासिक)	:	डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवैद्य निकेतन वाराणसी
72.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	पी0 वरदाचार्य, अनुवादक डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
73.	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	:	सीताराम जयराम जोशी तथा विश्वनाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
74.	सायण और माधव	:	आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
75.	स्कन्धपुराण	:	गीता प्रेस, गोरखपुर
76.	हिन्दू परिवार मीमांसा	:	हरिदत्त वेदालंकार, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

77.	हस्तलेख विषयक मल्लिनाथ	:	डॉ0 प्रभुनाथ द्विवेदी, रीडर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
78.	हस्तलेख संग्रहतालिका द्वितीय खण्ड	:	हस्तलेख, सं0 225/3816, गायकवाड़ लाइब्रेरी
79.	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप	:	डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
80.	श्रुतबोध	:	कालिदास, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी
81.	अमरकोष टीका	:	राजकीय हस्तलेख पुस्तकालय मद्रास में सुरक्षित
82.	अथर्ववेद	:	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
83.	अष्टाध्यायी	:	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

आंग्ल भाषा

84.	कन्ट्रीब्यूशन ऑफ आन्ध्रा टू संस्कृत लिटरवर	:	डॉ0 पी0 श्रीराममूर्ति, आन्ध्रा यूनिवर्सिटी प्रकाशन, 19/2
85.	रघुवंश ऑफ कालिदस	:	जी0आर0 नन्दगिरकर
86.	हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर	:	एम0 कृष्णामाचारियर, मोतीलाल ब़नारसी दास, 1970
87.	ओरिजिन ऑफ सिटी एण्ड एम्पायर	:	एन0 वैंकटारमनैय्या, लंदन
88.	कमेन्ट्रीज ऑफ मल्लिनाथ	:	एस0सी0बनर्जी, मोतीलाल, बनारसीदास 1971
89.	न्यू इण्डिया एन्टीक्वेरी	:	डॉ0 वी0 राधवन, मद्रास

90.	एकावली ऑफ विद्याधर	:	के0पी0 त्रिवेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
91.	कुमारसम्भव ऑफ कालिदास	:	एम0आर0 काले, मद्रास
92.	ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डिया	:	नीलकण्ठ शास्त्री, आन्ध प्रदेश, 1966
93.	हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर	:	ए0बी0 कीथ, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
94.	दी तमिल कन्ट्री अण्डर विजयनगर	:	डॉ0 ए0कृष्णास्वामी, आन्ध्र प्रदेश
95.	इंगलिश एपिक पोइट्री एण्ड हिरोयिक पोइट्री	:	डब्ल्यू0एम0डिक्शन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
96.	ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर	:	विन्टरनित्स, लन्दन
97.	दी ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया	:	हापकिन्स, आक्सफोर्ड
98.	ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर	:	मेकडोनल, लन्दन
99.	स्टडीज ऑफ संस्कृत पोइट्रीज	:	एस0के0डे, लन्दन
100.	मद्रास ट्रीनियल कैटलाग 4	:	आर0एन0 3488
101.	ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर	:	डॉ0 एम0 एन0 दासगुप्ता

102.	बुद्धिस्ट इण्डिया	:	रायस डेबिड्स, आक्सफोर्ड,
103.	कालिदास : ए स्टडी	:	जी0सी0 झाला
104.	दी डेट ऑफ कालिदास	:	के0एम0 सम्भवकेकर, कालिदास ग्रन्थावली
105.	जर्नल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी	:	रामनाथ अय्यर, 1955
106.	दी क्रानोलाजिकल आर्डर ऑफ कालिदासाज वर्क्स	:	आर0डी0 कर्मकर, कर्नाटक यूनिवर्सिटी, धाड़वार, 1966
107.	होम ऑफ भारवि	:	एन0सी0 चटर्जी, प्रोसिडिंग्स ऑफ ओरिएन्टल कान्फरेन्स, 1944
108.	आर्ट टिट – विट्स फाम रत्नाकर्स	:	सी0 वर्गमूर्ति हरविजय
109.	सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट	:	मैक्समूलर, लन्दन

अभिलाषा मिश्रा
शोधकर्त्री

अभिलाषा मिश्रा